

## प्रथम अध्याय

## डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व परिचय

## 1.1. प्रस्तावना

वीरप्रसूता बुन्देलखण्ड की पवित्रधरा पर ललितपुर जिले के छोटे से ग्राम बरौदास्वामी के एक मध्यम जैन परिवार में, सन् 1935 ई. में जन्में विद्वान मनीषी, आध्यात्मिकप्रवक्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एक दार्शनिक चिन्तक और सफल लेखक हैं। इनके चिन्तन में मौलिकता, तार्किकता और स्पष्टता का अद्भुत संगम देखते ही बनता है। ये नई पीढ़ी के विद्वानों में अग्रगण्य हैं। इनकी लेखनी को सरस्वती का वरदान है।

डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व बहुमुखी है। ये जैनसमाज के जाने-माने बहुश्रुतज्ञ हैं। ये वाणी और कलम के धनी हैं। इनके प्रतिपक्षी विद्वान इनका हमेशा विरोध करते रहे, परन्तु ये कभी किसी के विरोध में नहीं रहे। आगम के आधार पर ये युक्तियुक्त एवं न्यायसंगत उत्तर देते रहे हैं। ये जैनसमाज के ही नहीं; बल्कि देश-विदेश के भी प्रख्यात विद्वान हैं।

## 1.2 परिस्थितियाँ और प्रभाव

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना मानव जीवन का सर्वाङ्गीण विकास संभव नहीं है। समाज के वर्तमान वातावरण एवं परिस्थितियों के निर्माण में पूर्वकालीन परम्पराओं, मान्यताओं और परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पाया जाता है; जिसका प्रभाव साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी प्रत्यक्ष व परोक्षरूप से अवश्य पड़ता है।

प्रतिभाशाली साहित्यकार अपने युग की पूर्ववर्ती या समवर्ती परिस्थितियों से जहाँ एक ओर प्रभावित होते हैं, वहीं दूसरी ओर वे

तत्कालीन युग को भी अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से प्रभावित तथा अनुप्राणित करते हैं। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' ह्व इस उक्ति की सार्थकता प्रत्येक युग के साहित्य में देखी जा सकती है।

जनता की चित्तवृत्ति पर देश की राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः साहित्य की परम्परा को समझने के लिए इन सबका पर्याप्त ज्ञान आवश्यक है।

### 1.2.1 धार्मिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के जीवन से पूर्व तथा समकालीन धार्मिक परिस्थितियों का आकलन निम्नरूप में है ह्व

#### 1.2.1.1 पूर्वकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ

भारतदेश हमेशा धर्मप्रधान रहा है। मुख्यतः व्यक्ति जिस कुल व धर्म में जन्म लेता है, उस कुल में चलनेवाले धर्म से प्रभावित होता है। डॉ. भारिल्ल भी इसके अपवाद नहीं हैं, ये भी जैनधर्म से प्रभावित हुये।

विक्रम की प्रथम शताब्दी में जैनधर्म दो खण्डों में विभक्त हो चुका था ह्व दिगम्बर और श्वेताम्बर। प्रारम्भ में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय के साधु वनवासी और नग्न हुआ करते थे। पाँचवी-छठी शताब्दी के पश्चात् कुछ साधु चैत्यालयों में स्थायीरूप से निवास करने लगे।

15-16 वीं सदी में श्वेताम्बर सम्प्रदाय में एक मूर्ति पूजा की विरोधी क्रान्ति ने जन्म लिया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में लोकाशाह द्वारा मूर्तिपूजा विरोधी उपदेश प्रारम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप स्थानकवासी सम्प्रदाय की स्थापना हुई। यह सम्प्रदाय ढूँढिया धर्म के नाम से भी पुकारा जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में भी सोलहवीं शती में तारणस्वामी ने एक ऐसे ही पंथ की स्थापना की, जो 'तारणपंथ' कहलाता है। ये मूर्ति के स्थान पर मंदिर में वेदियों पर शास्त्र विराजमान करते हैं; परन्तु तारणस्वामी ने मूर्ति पूजा का विरोध कभी नहीं किया।

विक्रम की सोलहवीं-सत्रहवीं शती हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के रूप में जानी जाती है, जिसे हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा गया है। इस समय हिन्दू धर्म में अनेक मत-मतान्तर थे। वह वैष्णव, शैव और शाक्त नामक तीन मुख्य सम्प्रदायों में विभक्त होकर अनेक भेद-प्रभेद से गुजर रहा था। कबीर आदि सन्तों द्वारा प्रवर्तित धर्म भी थोड़े-बहुत भेद के साथ चल रहा था। हिन्दू धर्म बहुदेववादी था। इस्लाम धर्म में भी अन्य भारतीय धर्मों की तरह अनेक भेद-उपभेद बन गये थे। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण विभिन्न धर्मों में पारस्परिक समन्वय, प्रेम और भ्रातृत्व भावना दृष्टिगोचर होती थी। मुगलकाल में सिख धर्म का उदय हुआ था। इसी समय (भक्तिकाल) दिगम्बर सम्प्रदाय में बीसपंथ (भट्टारक) तथा तेरहपंथ अर्थात् अध्यात्मवाद आपस में टकरा रहे थे। उनके आचार व विचारों में समानता नहीं थी।

मुख्यरूप से विक्रम की 17वीं शती में दिगम्बर धर्म के बीसपंथ और तेरहपंथ के रूप में दो खण्ड हो गए थे। वहीं से परस्पर विरोध भी जोरों से चला। भट्टारकों के शिथिलाचार के विरुद्ध जो आध्यात्मिक क्रान्ति बनारसीदासजी के काल में आरम्भ हुई थी, वह क्रान्ति महापण्डित टोडरमलजी का संस्पर्श पाकर सम्पूर्ण उत्तरभारत में छा गई और उसने भट्टारकों के पैर उत्तर भारत से लगभग उखाड़ ही दिये। यही क्रान्ति 'तेरहपंथ' के नाम से जानी जाती है।

ईस्वी की 19 वीं शती में भी कुछ-कुछ विरोध था, परन्तु यहाँ आकर दोनों अपनी-अपनी पद्धति से कार्य करने लगे थे। यद्यपि डॉ. भारिल्ल का जन्म दिगम्बरों की उक्त तेरहपंथ परम्परा में हुआ था; तथापि उनका अध्ययन बीसपंथी विद्वान पंडित मखनलालजी के सान्निध्य में श्री गोपालदास दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, मुरैना (मध्यप्रदेश) में हुआ था। इसप्रकार हमारे कथानायक दिगम्बरों की दोनों परम्पराओं से जुड़े हुए थे।

इन्हीं परिस्थितियों में विक्रम की 20 वीं शताब्दी के ठीक मध्य में विक्रम संवत् 1946 अर्थात् सन् 1890 ईस्वी में वैशाख सुदी 2 के दिन एक महामना का जन्म हुआ; जिसने आगे चलकर विक्रम की बीसवीं शताब्दी के अन्त तथा विक्रम की 21वीं सदी के अर्धशतकीय भाग में जिनधर्म में एक नया शंखनाद किया। वे व्यक्ति थे आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी।

कानजी स्वामी का जन्म स्थानकवासी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हुआ था। इन्होंने 24 वर्ष की अल्पायु में श्वेताम्बरी मुनि दीक्षा ले ली। इन्हें विक्रम संवत् 1978 में दिगम्बर ग्रंथ 'समयसार' एवं विक्रम संवत् 1982 में 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ प्राप्त हुआ, जिनके गहन अध्ययन से उन्होंने यह निर्णय किया कि एक दिगम्बर जिनधर्म ही सत्यधर्म है। अतः कई वर्षों के अन्तर्द्वन्द्व के बाद विक्रम संवत् 1991 में महावीर जयंती के दिन अपनी मुँह पट्टी उतार फैंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया।

“यहीं से दिगम्बर जिनधर्म में पुनः एक नया शंखनाद फूँका गया तथा टोडरमल के समय जो एक आध्यात्मिक क्रान्ति उभरी थी और बीच में ठंडी हो गई थी। वह पुनः उभरना प्रारम्भ हुई।<sup>1</sup>”

“जिससमय स्वामीजी ने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया, उससमय दिगम्बरों का जैन धर्म जीवन रूढ़ि, अंधश्रद्धा, शुष्क क्रियाकाण्ड में तड़प रहा था। वहाँ धर्म जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। इसी महापुरुष (कानजी स्वामी) ने जिनागम का मंथन करके जीवन विरोधी तत्त्वों के समक्ष आज के निकृष्ट काल में शुद्धात्मतत्त्व की प्राणप्रतिष्ठा की। जैनसमाज को यह सूत्र दिया कि स्वावलम्बन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन ही धर्म है।<sup>2</sup>”

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की इस आध्यात्मिक क्रान्ति ने डॉ. भारिल्ल को भी प्रभावित किया। उनके द्वारा प्रतिपादित क्रमबद्धपर्याय

के सिद्धान्तों ने तो उनकी जीवनधारा ही पलट दी और वे पूरी तरह इस आध्यात्मिक क्रान्ति के लिए समर्पित हो गये। यह घटना सन् 1956 के अप्रैल-मई में घटित हुई। तब डॉ. भारिल्ल मात्र 21 वर्ष के थे।

समाज इससमय दो वर्गों में बंट गया था। जहाँ तेरहपंथ-बीसपंथ भेद तो पूर्व की तरह थे ही; पर कानजी स्वामी को स्वीकार करने के कारण दिगम्बरों में कुछ विरोधी लोग उन्हें 'कहानपंथी' कहने लगे। परिणामतः दिगम्बर जैनसमाज में 'मुनिभक्त' और 'कहानभक्त' दो वर्ग खड़े हो गये। यह स्थिति डॉ. भारिल्ल के पूर्वकाल में हो चुकी थी।

## 1.2. 1.2. डॉ. भारिल्ल के समकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ (अ) डॉ. भारिल्ल के समकालीन जैनधर्म की स्थिति

डॉ. भारिल्ल के काल में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार बहुत तेजगति से हुआ। इससमय निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय, निश्चय-व्यवहार, द्रव्यदृष्टि का विषय, भगवान आत्मा, चार अभाव, कारण-कार्य परमात्मा आदि दार्शनिक विषयों पर बहुत गंभीरता से विचार हुआ।

इस सदी में अनेकों बीस दिवसीय, पन्द्रह-दिवसीय, दस-दिवसीय, सप्त-दिवसीय, पंच-दिवसीय धार्मिक शिक्षण-शिविर व अड़तीस से अधिक प्रशिक्षण शिविर, सैंकड़ों पंचकल्याणक, वेदीप्रतिष्ठा, सिद्धचक्रविधान, पंचपरमेष्ठी विधान, इन्द्रध्वज विधान, एक सौ सत्तर तीर्थकर विधान, कल्पद्रुम महामंडल-विधान, गजरथ आदि कई प्रकार के धार्मिक आयोजन हुए और वर्तमान में भी हो रहे हैं।

इससमय लोगों में धर्म के प्रति अगाध प्रेम बढ़ा। वे अनेक तीर्थयात्रा करने लगे। तीर्थस्थलों के विकास में अपना धन लगाने लगे। कई नवीन दर्शनीय तीर्थ बने ह्व सोनगढ़, जयपुर (टोडमल स्मारक त्रिमूर्ति मंदिर), महावीरजी, पद्मपुरा, गोम्मतगिरी (इन्दौर)आदि। लोग व्यवसाय को छोड़कर भी शिविरों में भाग लेने लगे। धार्मिक साहित्य भी खूब प्रकाशित हुआ। अनेक धार्मिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं।

धर्मप्रचार हेतु अनेक धार्मिक संस्थाएँ बनीं। इस समय न मात्र भारत में ही धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ; अपितु विदेशों में भी जगह-जगह धर्म का प्रचार हुआ।

बीसवीं सदी के शुभारम्भ तक कोई भी दिगम्बर (मुनि) साधु नहीं बना था। “सर्वप्रथम बीसवीं सदी में (ईस्वी की) आचार्य शांतिसागर का नामोल्लेख मिलता है। जिन्होंने सर्वप्रथम नग्न दिगम्बरी दीक्षा (इस सदी में) ली और मुनिमार्ग का शुभारंभ किया।” धीरे-धीरे अनेक लोग मुनि बने, महिलाएँ आर्यिकाएँ बनीं और धीरे-धीरे अनेक संघ बन गए।

डॉ. भारिल्ल के काल में 200 मुनिराज तथा 350 आर्यिकाएँ वर्तमान में हैं। मुनिराज के जो वर्तमान संघ हैं, वे भी दो खण्डों में विभक्त हैं। एक पक्ष तेरापंथी मुनियों का है। दूसरा पक्ष बीसपंथी मुनियों का। जो शुद्धाम्नाय के पक्षधर हैं, वे तेरापंथी कहलाये। ये क्षेत्रपाल आदि को पूजने का निषेध करते हैं। बीसपंथी मुनिराज उक्त क्रियाओं का समर्थन करते हैं। वर्तमान साधुवर्ग की स्थिति को डॉ. मानमल जैन ने ‘नव भट्टारकवाद’ की संज्ञा से अभिहित किया है।

कानजी स्वामी का विरोध डॉ. भारिल्ल के पूर्व में ही प्रारम्भ हो गया था, जिसने डॉ. भारिल्ल के समय में और उग्र रूप धारण कर लिया; क्योंकि इस समय स्वामीजी का प्रभाव दिगम्बर जैनधर्म में बढ़ता ही जा रहा था। लोगों ने स्वामीजी की सत्य बात की अपेक्षा नहीं समझी, जिससे विशिष्ट बातों को लेकर विरोध शुरू हो गया। निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय, चतुर्थगुणस्थान में स्वानुभूति, कारणशुद्धपर्याय, पुण्य-पाप, दोनों का हेयत्व, उपादान से ही कार्य होता है; आदि विषयों को लेकर विरोध होता रहा। इसके अतिरिक्त समयानुसार और भी विषयों को लेकर विरोध हुआ हूँ जैसे संयम निरर्थक है हूँ ऐसा कहते हैं, मुनियों को नहीं मानते हैं, आचार्यों के ग्रंथों का अर्थ गलत करते हैं, समयसार ही पढ़ते हैं, निश्चयाभासी हैं, व्यवहार को उड़ा देते हैं इत्यादि अनेकप्रकार के आरोप

उनपर लगाए गये; परन्तु यह विरोध कुछ तो अपेक्षा नहीं समझने से था, कुछ पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण था।

ये विरोध मात्र कानजी स्वामी का ही नहीं करते; अपितु जिस पर कानजी स्वामी की मोहर लग गई अर्थात् उन्हें लगा कि कानजी स्वामी के अनुयायी हैं, प्रशंसक हैं तो उनका भी विरोध करते। चाहे वे मुनिराज ही क्यों न हों। कानजी स्वामी की आड़ लेकर उन्होंने जिनवाणी का भी बहिष्कार किया। “सोनगढ़ तथा जयपुर से प्रकाशित साहित्य मंदिर में नहीं रखा जाय।” ऐसी प्लेटें लिखवाकर जगह-जगह मंदिरों में लगा दीं, पत्रिकाओं में निकाला गया। जहाँ भी, जिसमें भी; उन्हें कानजी स्वामी की गंध लगती तो बिना सोचे-समझे ही विरोध करने लगते।

सचमुच में विरोध जितना अधिक हुआ; उतना ही प्रचार-प्रसार भी अधिक हुआ। फलतः डॉ. भारिल्ल के जैन धार्मिक काल को ‘कानजीयुग’ के नाम से पुकारा जा सकता है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के अनुयायियों में भी दो वर्ग हो गए। एक सोनगढ़ का पक्षधर तो दूसरा जयपुर का पक्षधर। सोनगढ़ के पक्षधर वे हैं, जो कानजी स्वामी को भावी सूर्यकीर्ति तीर्थकर के रूप में स्वीकार करते हैं। दूसरे (जयपुर) वे हैं जो सशक्त प्रमाणों के अभाव में कानजी स्वामी को भावी सूर्यकीर्ति तीर्थकर के रूप में चर्चित करने को उचित नहीं समझते और उन्हें आध्यात्मिकसत्पुरुष के रूप में स्वीकार कर उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को मानते हैं, उनके उपकारों को स्वीकार करते हैं। डॉ. भारिल्ल दूसरे वर्ग के पक्षधरों में प्रमुख भूमिका निभानेवालों में हैं।

### (ब) डॉ. भारिल्ल के समकालीन अन्य जैनेतर धर्मों की स्थिति

डॉ. भारिल्ल के काल में पूर्व प्रचलित सभी धर्म प्रचलित थे हूँ जैसे हिन्दू, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, मुस्लिम आदि। सभी धर्म के लोग

अपनी-अपनी पद्धति से धर्मप्रचार कर रहे हैं व धर्मसाधना कर रहे हैं; परन्तु इनमें भी काल के प्रभाव से विसंगतियाँ आई हैं। इन्होंने भी नये ढंग से अपने क्रिया-कलाप अपनाए हैं। हिन्दू धर्म में पूर्व की तरह शैव-वैष्णव इत्यादि धर्म हैं तो सही, पर ये सभी अब एक रूप हो गए हैं। पूर्व में शिवभक्त शिव की ही पूजा करता था, विष्णु की नहीं, यह बात आज समाप्त हो गई है। आज का शैव विष्णु की और अन्य सभी देवी-देवताओं की पूजा करता है। अब पहले जैसी कट्टरता वाली बात नहीं रही। हिन्दू-मुस्लिम आपस में धर्म के नाम पर झगड़ रहे हैं। इससमय जो मुख्य मुद्दा है, वह राममंदिर-बाबरी मस्जिद (अयोध्या) का है, जिसको लेकर लम्बे समय से विवाद चल रहा है। इसी के कारण 6 दिसम्बर 1992 को राममंदिर बनाने हेतु बाबरी मस्जिद गिराने के कारण बहुत साम्प्रदायिक दंगे हुए। आज भी यह विषय अत्यधिक विवादग्रस्त बना हुआ है।

दीपावली, होली आदि धार्मिक पर्व सभी मनाये जाते हैं, परन्तु उनमें भी दिखावा अधिक हो गया है, लोग वास्तविक धर्म से हट गए हैं। विश्व हिन्दू परिषद् एवं कुछ अन्य संस्थाओं द्वारा हिन्दू धर्म का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। जैन-हिन्दू मिलकर धर्म के नाम पर गौरक्षा हेतु अनेक प्रयास कर रहे हैं।

डॉ. भारिल्ल के काल में जहाँ पूर्व में प्रचलित दर्शन तो चल ही रहे थे, वहीं कुछ नवीन दर्शनों (धर्म) ने भी इस काल में जन्म लिया है। रजनीश ओशो ने भी अपना एक नया धर्म चला दिया, जो 'रजनीश दर्शन' के नाम से चलने लगा। महात्मा गांधी ने यद्यपि किसी धर्म की स्थापना तो नहीं की थी; परंतु वे सत्य-अहिंसारूपी मानवधर्म के पक्षधर थे। अतः 'गांधी दर्शन' भी प्रचलन में आ गया, जिसका प्रभाव भी साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। आज सम्पूर्ण देश में धर्मनिरपेक्षता का शंखनाद चल रहा है।

### 1.2. 1.3. डॉ. भारिल्ल पर धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव

यह सत्य है कि युगीन परिस्थितियाँ व्यक्ति को अवश्य प्रभावित करती हैं, परिणामतः डॉ. भारिल्ल को भी धार्मिक परिस्थितियों ने प्रभावित किया है। डॉ. भारिल्ल का जन्म दिगम्बर जैनधर्म की तेरापंथ परम्परा में हुआ है। इनके पिता ने धार्मिक शिक्षा दिलाकर इन्हें एक विद्वान बनाया। सन् 1956 तक ये अच्छे प्रवचनकार बन गए थे, परन्तु अध्यात्म से रीते थे। उससमय आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजी स्वामी ने अध्यात्म का तहलका मचा रखा था। अतः उसका प्रभाव इन पर भी पड़ा और ये उनके अनन्य शिष्य बन गए। जिस घटना ने उनके जीवन को आध्यात्मिक मोड़ दिया, वह घटना उन्हीं के शब्दों में इसप्रकार है ह

“मेरी समझ में यह कैसे आई ह उसकी भी एक कहानी है, इस प्रसंग पर जिसके उल्लेख करने का लोभ संवरण कर पाना मेरे लिए संभव नहीं हो पा रहा है।

बात यों हुई कि हम उत्तरप्रदेश के एक गाँव बबीना केन्ट (झांसी) में दुकान करते थे। बात ईस्वी सन् 1956 के दशहरे के आसपास की है। मेरे अग्रज पंडित रतनचंदजी शास्त्री दुकान का सामान लेने झांसी गये थे। वहाँ एक व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया कि जब केवली भगवान ने जैसा देखा-जाना-कहा है, वैसा ही होगा; उसमें कोई फेर-बदल संभव नहीं है, तो फिर हम कुछ करें ही क्यों ?

प्रश्न ने ही उनके हृदय को झकझोर डाला। वे स्तब्ध रह गये। उसके उत्तर में उन्होंने यद्वा-तद्वा कुछ भी कहकर पाण्डित्य-प्रदर्शन न करके यही कहा ह भाई ! तुम बात तो ठीक कहते हो, मैं अभी इसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकता, अगले शनिवार को आऊँगा तब बात करूँगा।

वह तो चला गया, पर वे रास्ते भर विचार करते रहे। आते ही कोई और बात किए बिना, मुझसे सीधा वही प्रश्न किया। मैं भी विचार में पड़

गया। परस्पर चर्चा होती रही, पर बात कुछ जमी नहीं।

शाम को प्रवचन में भी जब मैंने यही चर्चा की। तब एक अभ्यासी बाई बोली हू इसमें क्या है ? यह तो कानजी स्वामी की 'क्रमबद्धपर्याय' है। उस समय तक हमने कानजी स्वामी का नाम तो सुन रखा था, पर क्रमबद्धपर्याय का तो नाम भी नहीं सुना था। अतः जब अधिक जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने मंदिरजीमें से 'आत्मधर्म' के वे दो विशेषांक लाकर दिये जिसमें 'क्रमबद्धपर्याय' पर हुए स्वामीजी के तेरह प्रवचन प्रकाशित हुए थे। प्रथम अंक में आठ प्रवचन थे और दूसरे में पाँच। ये अंक ईस्वी सन् 54-55 में ही निकले थे। बाद में तो वे ही प्रवचन 'ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव' नाम से पुस्तकाकाररूप में भी प्रकाशित हुए थे। उनको पढ़कर तो हमारे हृदयकपाट खुल गये। ऐसा लगा कि हमें कोई अपूर्वनिधि मिल गई है। हम कृतकृत्य-से हो गये। फिर क्या था तभी से गंभीर अध्ययन, मनन, चिंतन, चर्चा-वार्ता आरम्भ हो गई। इसका रस कुछ ऐसा लगा कि चढ़ती उम्र के सभी रस फीके-से हो गये। 'क्रमबद्धपर्याय' की धुन में व्यापार का क्रम गड़बड़ा गया। ग्राहक आकर चला जाता, क्योंकि उसकी बात पर कोई ध्यान देनेवाला ही न रहा था। उसके जाने पर विचार आता कि इसतरह तो पूरा व्यापार ही चौपट हो जायेगा, पर उसी सकल क्रमबद्ध की याद आती और कह उठते हू जो क्रमबद्ध में होना होगा, वही तो होगा।<sup>47</sup>

डॉ. भारिल्ल सन् 1957 में स्वामीजी के सम्पर्क में आए और तब से ही ये उनके अनन्य शिष्य बन गए। आज स्वयं अध्यात्म का सही स्वरूप समझकर जगत के समक्ष स्पष्टरूप से रख रहे हैं। आज इनकी गिनती अग्रगण्य विद्वानों में है। भावी सूर्यकीर्ति का बवंडर चला; पर डॉ. भारिल्ल ने स्वयं को उससे असंपृक्त ही रखा, परंतु वे कानजी स्वामी को अपना

आध्यात्मिक विद्यागुरु स्वीकार करते रहे, उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते रहे और कर रहे हैं।

वर्तमान में धर्म निरपेक्षता का शंखनाद चल रहा है। इसने भी डॉ. भारिल्ल को प्रभावित किया। ये कभी भी किसी अन्य धर्म की निन्दा या अपमान नहीं करते हुए जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी रहे हैं।

वास्तव में डॉ. भारिल्ल के समय की धार्मिक परिस्थितियाँ अच्छी कही जा सकती हैं, क्योंकि जितना धर्मप्रचार इससमय हुआ; उतना पूर्व में भी नहीं हुआ था। अनेक गलत मान्यताएँ दूर हुईं। डॉ. भारिल्ल के इस समय को जैनधर्म की दृष्टि से अध्यात्मयुग, समयसार युग, कहानयुग कहकर पुकारा जा सकता है, इसमें डॉ. भारिल्ल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये युग को प्रभावित करनेवाले स्तम्भों में हैं। वस्तुतः इस कलयुग में भी यह धर्मयुग है।

### 1.2.2. सामाजिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के जीवन से पूर्व की एवं समकालीन सामाजिक परिस्थितियों का आकलन इसप्रकार है ह

#### 1.2.2.1. डॉ. भारिल्ल के पूर्वकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

19वीं सदी के आरम्भ तक भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता से आतंकित हो गया था। भारतीय अंग्रेजी भाषा, वेशभूषा, साहित्य और ज्ञान को श्रेष्ठ मानने लगे। शिक्षित भारतीय अपनी सभ्यता में विश्वास खोते जा रहे थे। उस समय भारतीय सभ्यता में विभिन्न कारणों से एक नवीन विचारधारा का जन्म हुआ; जिसने भारत के समाज, धर्म, साहित्य और राजनीतिक जीवन को गम्भीरता से प्रभावित किया।

19वीं शताब्दी में भारतीय समाज को परिष्कृत करने और नया सामाजिक धार्मिक दृष्टिकोण विकसित करने के जो प्रयास हुए; वे अपने

प्रभाव, प्रसार तथा परिणामों में अभूतपूर्व थे। इस सदी को भारतीय समाज के लिए पुनर्जागरण का काल कहा जा सकता है; क्योंकि उस समय भारतीय समाज को परिष्कृत करने हेतु अनेक सामाजिक व धार्मिक आन्दोलन चले।

उन्नीसवीं सदी के प्रथम सुधारक राजा राममोहनराय थे। जिन्होंने 20 अगस्त 1828 ईस्वी के 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर समाज सुधार का कार्य किया। तत्पश्चात् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बाल-विवाह, बहु-विवाह प्रथा का तीव्र विरोध तथा विधवा-विवाह का समर्थन कर 1856 ईस्वी में कानून बनवाया। विद्यासागर के अनन्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ईस्वी में बम्बई में 'आर्यसमाज' की स्थापना कर अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। सन् 1887 में विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना कर भारतीय समाज में राष्ट्रियता को जन्म दिया, हिन्दुओं को भी अपनी सभ्यता और संस्कृति तथा अपने राष्ट्र का सम्मान करना सिखाया। इन व्यक्तियों द्वारा किया गया सुधार कार्य 20वीं सदी में भी जारी रहा। सन् 1905 में गोखले ने 'भारत संघ' की, 1911 में नारायण मेहर जोशी ने 'समाज सेवा संघ', 1914 में श्री हृदयनाथ कुंजरु द्वारा 'सेवा समिति', 1922 में अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर ने 'भील-सेवा मण्डल' की स्थापना करके समाज सुधार का कार्य किया। हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान, सिक्ख, जैन, पारसी सभी समाजों में इस समय सुधार हेतु आन्दोलन हुए।

“इन सबका प्रभाव जैनसमाज पर भी पड़ा। हिन्दू समाज एक विशाल समाज है। उसके मध्य में रहनेवाले छोटे-से जैनसमाज के लोगों का उनके आचार-विचारों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। फिर जब जनता में ज्ञान की कमी हो और प्रतिद्वन्दी सम्प्रदायों में रात-दिन संघर्ष चलता

हो तब तो और भी अधिक इस बात संभावना रहती है। जैनसमाज अनेक जातियों में विभक्त हो गया। मराठी ज्ञान कोष में जैनों की 84 जातियाँ लिखी हैं और उनके निर्माण में बहुत छोटी-छोटी घटनाएँ भी सम्मिलित हैं।<sup>5</sup>”

जिसप्रकार हिन्दू समाज में अनेक समाज सुधारक हुए, उसीप्रकार जैन समाज में भी 19 वीं सदी में अनेक समाज सुधारक हुए। सेठ माणिकचन्द जे. पी. ने समाज में जागृति उत्पन्न करने के लिए पूरे देश का भ्रमण किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पण्डित गोपालदास बरैया ने समाज सुधार हेतु अनेक प्रयास किये। सेठ माणिकचन्द ने गोपालदास बरैया को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। ये प्रबुद्ध समाज सुधारक थे। आधुनिक युग में जैन जागृति के समर्थक पुरस्कर्ताओं में परिगणित हैं। बीसवीं सदी में यह कार्य अनेक विद्वानों द्वारा हुआ। वहीं कानजी स्वामी द्वारा भी जैनसमाज में सुधार कार्य स्वतः ही हुआ।

#### 1.2.2.2. डॉ. भारिल्ल के समकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के काल में देश की आजादी, सामाजिक क्रान्ति आदि कारणों से अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। चाहे कोई भी समाज क्यों न हो; उसमें आजादी के पूर्व छुआछूत तथा लिंगभेद भेदभाव पूर्ण व्यवहार के रूप में विद्यमान थे। अतः सरकार ने समाज में परिवर्तन हेतु कुछ अधिनियम समय-समय पर बनाए। फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन भी हुआ। फिर भी समाज की स्थिति बड़ी विचित्र है। जिसे देखकर ऐसा लगता है कि यह पतन के कगार पर पहुँच गई है। आज भारतीय समाज अनेक जातियों में बंटा हुआ है तथा प्रत्येक जाति ने अपनी-अपनी समाज बना ली है। इस समय में समाज में भौतिकवाद बढ़ता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति का रंग जोरों पर चढ़ रहा है। वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन सब बदल गये हैं। भारतीय समाज में जहाँ शिक्षा का विकास हुआ है। वहीं दहेज के दानवों की बढ़ोत्तरी हुई है। समाज में भ्रष्टाचार,

रिश्तखोरी बहुत बढ़ गई है। मांसाहारियों, शराबियों की संख्या बढ़ती जा रही है। शाकाहारी अंडे के नाम पर शाकाहारियों को भ्रमित कर उन्हें भी मांसाहारी बनाया जा रहा है।

धूम्रपान का प्रयोग भी शौक के नाम पर उग्र रूप ले चुका है। समाज में गुटखा खाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। गुटखा आज के युग का फैशन बन गया है। यह धूम्रपान की प्रवृत्ति महिलाओं में भी तेजी से बढ़ती जा रही है। आज समाज में महिला का स्तर पुरुष के समान है। वे भी व्यापार, उद्योग, राजनीति, नौकरियों में कार्य कर पुरुष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं।

सामाजिक भोज में एक मिठाई के स्थान पर अनेक मिठाईयाँ बनने लगी हैं। भोजन करने में 'बफर सिस्टम' खूब तेजी से पनप रहा है। शादी व अन्य कार्यक्रमों में शराब की बोतलें भी खुलने लगी हैं। पुराने राजाओं की तरह यहाँ भी नृत्यांगनाओं द्वारा नाच कराया जाने लगा है। सच कहा जाए तो इस समय हिन्दी साहित्य के इतिहास के रीतिकाल की तरह सुरा-सुन्दरियों का चलन बढ़ता जा रहा है। अभी स्थिति इतनी विस्फोटक तो नहीं हुई है, परन्तु, यदि यही क्रम जारी रहा तो निकट भविष्य में अवश्य विस्फोटक बन जायेगी।

अन्तर्जातीय विवाह तथा विधवा-विवाह का शुभारंभ कुछ अंशों में प्रारम्भ हो गया है। बढ़ती मंहगाई से समाज में सामूहिक विवाह का प्रचलन भी लगभग सब जातियों में प्रारम्भ हो गया है। जैन समाज में भी ये प्रारंभ हो गये हैं, समाज पर टी. वी., वीसीआर, सिनेमा, टेप, सीडी आदि का विशेष प्रभाव होता जा रहा है। यह एक नया रोग इस समय में उत्पन्न हुआ है; जिसका दुष्प्रभाव समाज पर बहुत पड़ रहा है। समाज में व्यक्तियों के पास अनेक प्रकार की भौतिक सामग्री पर्याप्त मात्रा में बढ़ गई है। वर्तमान समाज में युवावर्ग की स्थिति नाजुक है। वह पाश्चात्य-पाशविक प्रवृत्ति की ओर अधिक अग्रसर है।

आज भारतीय समाज में राष्ट्रीय भावना प्रबल है। समाज में अन्धविश्वास में भी कमी आई है, तार्किकता बढ़ी है, धार्मिक मान्यता की अपेक्षा वैज्ञानिक मान्यता को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है, धर्म को भी वैज्ञानिक तुला पर तोला जा रहा है।

अतः डॉ. भारिल्ल के समय की सामाजिक स्थिति का आकलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ समाज में अनेक कुप्रवृत्तियाँ नष्ट हुई हैं, वहीं नवीन कुप्रवृत्तियाँ भी बढ़ी हैं। आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। भौतिकता, वैज्ञानिकता और आधुनिकीकरण के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति की ओर भारतीय समाज अग्रसर हो रहा है।

### 1.2.2.3. डॉ. भारिल्ल पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव

डॉ. भारिल्ल सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए हैं। ये जातिगत भावना एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता से परे हैं। इनमें राष्ट्रीय भावना प्रबल है। जो इनके लेख 'मैं कौन हूँ' में तथा इनकी कविता 'तो दे देना कुछ ध्यान' में देखी जा सकती है। ये भौतिकता व आधुनिकता से भी अछूते नहीं रहे। घर में आधुनिक सामग्री सभी उपलब्ध है; परन्तु ये भारतीय वेशभूषा, धोती, कुर्ता, टोपी को संजोये हुए हैं। ये पाश्चात्य संस्कृति की ओर अग्रसर नहीं हो पाए हैं। इनमें अन्धविश्वास तो जैनधर्म के दृढ़श्रद्धालु होने से कोसों दूर है। इन्होंने सामाजिक परिस्थितियों को अपने उपन्यास 'सत्य की खोज' में अभिव्यक्त किया है। वहीं कुछ लेख भी लिखे हैं, जो इनके प्रभावित होने का सहज प्रमाण देते हैं।

### 1.2.3. राजनीतिक परिस्थितियाँ

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की पूर्वकालीन एवं समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख इसप्रकार है ह

#### 1.2.3.1. डॉ. भारिल्ल की पूर्वकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

आधुनिक युग में भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि सन् 1757 में अंग्रेजों के बंगाल और 1803 ईस्वी में दिल्ली जीतने से प्रारम्भ होती है। विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजों ने मनमाने ढंग से अपना शासन और आर्थिक व्यवस्था



लागू कर दी थी। सन् 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के परिणामस्वरूप देश में प्रथम राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ। 1857 की क्रान्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी के शासन का अन्त करके भारतीय शासन की बागडोर सन् 1858 में सीधी अपने हाथ में ले ली।

1885 ईस्वी में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से देश के प्रशासन में भारतीयों के योगदान की शुरुआत हुई। इस बीच बालगंगाधर तिलक ने स्वाधीनता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का गुरुमंत्र देश को दिया। सन् 1899 से 1905 तक के अपने शासन काल में लार्ड कर्जन ने अनेक अन्यायपूर्ण कानून बनाए। सन् 1905 में बंगाल का विभाजन किया। कर्जन ने शासन की सुविधा के नाम पर बंगाल को दो टुकड़ों में बांट दिया।

ब्रिटिश सरकार से प्रोत्साहन पाकर मुस्लिम नेताओं ने 30 सितम्बर, 1906 ई. को ढाका में 'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग' नामक संस्था की स्थापना की।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद देश में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए थे। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में ह "हिन्दू जाति के नाना भेद-प्रभेदों के बीच एक संगठित जातीयता का निर्माण, हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में एक अन्तर्व्यापी मानवसूत्र का अनुसंधान, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच खाईयाँ पाटना ह प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे।<sup>6</sup>"

सन् 1919 में जालियांवाला बाग हत्याकांड हुआ। ऐसे समय में महात्मा गाँधी भारतीय राजनीतिक मंच पर प्रगट हुए। महात्मा गाँधी के सक्रिय सहयोग से 20 अगस्त, 1920 ईस्वी को 'असहयोग आन्दोलन' तथा 'स्वदेशी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। असहयोग आन्दोलन में सभी वस्तुओं, नौकरियों, शिक्षा-संस्थाओं आदि का बहिष्कार किया गया। गाँधीजी के इस आन्दोलन से असंतुष्ट कुछ नेताओं ने 1922 ईस्वी

में स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। वहीं 4 फरवरी 1922 ईस्वी को चौरी-चौरा नामक काण्ड हुआ। 1927 ईस्वी में भारत में साइमन कमीशन आयोग आया, जिसका विरोध हुआ। लाहौर अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस के आदेश से 26 जनवरी, 1930 ईस्वी के दिन को सारे देश में 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में मनाया गया। 12 मार्च 1930 ईस्वी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। जिसे 'दाण्डी यात्रा' के रूप में जाना जाता है। सन् 1920 से 1934 ईस्वी के दरम्यान अंग्रेजों की फूट परस्ती-नीति का कुचक्र खूब साकार हुआ और हिन्दू-मुस्लिम का साम्प्रदायिक संघर्ष भी काफी जोरों से छिड़ा और पाकिस्तान की माँग की गई। इसप्रकार डॉ. भारिल्ल के पूर्व की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत उतार-चढ़ाव की रही हैं। जिसमें स्वतंत्रता की माँग मुख्य है।

### 1.2.3.2. डॉ. भारिल्ल की समकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के जन्मवर्ष सन् 1935 ईस्वी में भारतीय विधान पास हुआ। जिसके अनुसार प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली समाप्त कर दी गई, किन्तु केन्द्र में ही प्रारम्भ की गई। 3 सितम्बर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस की स्वीकृति के बिना अंग्रेजी सरकार ने भारत को शामिल कर लिया। अतः विरोधस्वरूप कांग्रेस मंत्रीमण्डलों ने अक्टूबर 1939 में त्याग-पत्र दे दिया। 1942 में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। जिसमें गाँधीजी ने 'करो या मरो' का नारा दिया। उस समय सारी भारतीय जनता आजादी की प्राप्ति के लिए एकजुट होकर अंग्रेजों से सत्ता हथियाने के लिए कूद पड़ी, फलतः 15 अगस्त, 1947 ई. को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिली और हम स्वतंत्र हो गये। सत्ता हमारे हाथ में आ गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही साम्प्रदायिक दंगे भड़के। महात्मा गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास किये। स्वतंत्रता के समय भारत का राजनैतिक मानचित्र दो भागों में विभाजित था ह ब्रिटिश राज्य और देशी राज्य। उस समय भारत में 562 देशी राज्य थे। लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई

पटेल ने इनका एकीकरण किया। देशी राज्यों के एकीकरण के बाद 26 जनवरी 1950 को नया संविधान लागू हुआ। इस संविधान के तहत राष्ट्रपति को देश का सर्वोच्च व्यक्ति माना गया।

“नेहरू के काल में राजनीति में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, कोटा-परमिट राज, चुनावों में धांधलियाँ सब प्रारम्भ हो गए थे। इंदिरा गांधी के समय की राजनीति नारेबाजी, नाटकीयता, ढोंग और स्टंट के जरिए लोगों के दिमागों पर छाने की रही, जिसने जाती-पांति और धार्मिक द्वेषभाव यथावत् रहे। इससमय कांग्रेस गुटबाजी की शिकार हो गई। जनता सरकार से खिन्न रहने लगी। कांग्रेस की सफेद खादी पर कुशासन के काले गहरे धब्बे साफ नजर आने लगे।” यही राजनीति आज सब राजनीतिक पार्टियों की है। जब विश्वनाथ प्रतापसिंह प्रधानमंत्री बने तो इन्होंने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा कर भारतीय समाज को अगड़ों और पिछड़ों के विवाद में भड़का दिया। उनके इस मंडलवाद से देश फिर एकबार जातिवाद घृणाओं में डूब गया। दूसरी तरफ उसी समय कुछ राजनीतिक दलों ने राममंदिर-बाबरी मस्जिद के विषय को उछाला, जिससे साम्प्रदायिक विवाद छिड़ा। तब से राजनीतिक अस्थिरता का दौर भी प्रारंभ हो गया, जो आज तक बराबर बना हुआ है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल के काल में लोकतंत्रात्मक राजनीति है, परन्तु अब वह भ्रष्टाचारों में लिप्त होती जा रही है। संसद व विधानसभाओं को युद्ध का अखाड़ा बना दिया है। दल-बदल की प्रवृत्ति अग्रसर है। क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का जोर बढ़ता जा रहा है। राजनीति में ईमानदारी प्रायः समाप्त हो गई है। राजनीतिक अस्थिरता है। राष्ट्रीय भावना के स्थान पर कुर्सी पकड़ की भावना प्रबल हो गई है।

### 1.2.3.3. डॉ. भारिल्ल पर राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव

डॉ. भारिल्ल पर राजनीति का प्रभाव अवश्य पड़ा है। सन् 1950 में

ग्राम पंचायत व न्याय पंचायत के चुनाव हुए। उससमय न्याय पंचायत के चुनाव में इनका अध्यक्ष बनने का विचार था। अतः ये गाँव के न्याय पंचायत प्रतिनिधि हेतु खड़े हुए। उससमय ये कांग्रेस पार्टी से खड़े हुए थे। इनके विरोध में कम्युनिस्ट पार्टी थी। इनकी विजय होने के बाद इनके विचारों में परिवर्तन आया और इन्होंने इस राजनीतिक जीवन को वहीं तिलांजलि दे दी और अपना जीवन धर्म के लिए समर्पित कर दिया; परन्तु राष्ट्रीय भावना हमेशा हृदय में व्याप्त रही। जो इनके आलेख ‘मैं कौन हूँ?’ में तथा कुछ कविताओं में स्पष्टरूप से देखी जा सकती है। अपने भाषणों में भी ये कभी-कभी वर्तमान राजनीतिक परिदृश्यों पर तीखी टिप्पणी करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि इन पर राजनीतिक प्रभाव पड़ा, परन्तु राजनीतिक प्रभाव पड़ने पर भी ये राजनीति से कोसों दूर रहें।

### 1.2.4. साहित्यिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के पूर्वकालीन एवं समकालीन साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन इसप्रकार है

#### 1.2.4.1. डॉ. भारिल्ल के पूर्वकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ

सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् ही हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग आरम्भ होता है। आरम्भ में खड़ी बोली में केवल गद्य विधा का ही विकास हुआ था; क्योंकि साहित्यकारों की धारणा थी कि कविता के लिए ब्रजभाषा ही उपयुक्त है। यह क्रम भारतेन्दु युग तक बराबर चलता रहा। वहीं एक ओर ब्रज-अवधी को छोड़कर खड़ी बोली का विकास आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर साहित्यिक उत्थान की ओर भी ध्यान गया। सन् 1900 से 1920 तक के काल को द्विवेदी युग कहा जाता है। “इस युग के प्रवर्तक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी थे।<sup>8</sup>” जिन्होंने खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में स्थिर किया। भाषा की शुद्धता तथा सरलता पर बल होने के कारण मातृभूमि और स्वदेशी के प्रति गौरव की भावना इस युग के साहित्य का प्राणतत्त्व कहा जा सकता है। नारी व्यक्तित्व के प्रति उच्च भावना प्रगट हुई और शोषित उत्पीड़ित वर्ग के प्रति व्यापक सहानुभूति के स्वर मुखरित हुए। द्विवेदीयुग के तदनन्तर साहित्य में छायावाद की

प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इस समय के कवियों में विषाद और निराशा की भावना जन्म लेने लगती है। हिन्दी साहित्य में 'कामायनी' जैसा महत्वपूर्ण महाकाव्य छायावाद युग की ही देन है। यही समय गद्य साहित्य में उत्कर्षकाल (शुक्लकाल) कहा जाता है। इस समय शुक्लजी ने गहन चिन्तन, विश्लेषण की प्रवृत्ति को विकसित किया। 'चिन्तामणि' के निबंध इसी श्रेणी के हैं। 'आलोचना' का विकास भी इसी युग में हुआ।

#### 2.4.2. डॉ. भारिल्ल के समकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ

डॉ. भारिल्ल के जन्मकाल में ही 'प्रगतिवाद' ने जन्म ले लिया था। यह प्रवृत्ति सन् 1936 से 1953 तक मानी जाती है। इस साहित्य की मूल प्रेरणा सामाजिक चेतना है। प्रगतिवाद शोषित वर्ग, किसानों एवं मजदूरों का पक्षधर है। प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद ने अवतार लिया। प्रयोगवाद के मूल में घोर वैयक्तिकता एवं अतिबौद्धिकता की प्रवृत्तियाँ काम करने लगी। सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' से इसका आविर्भाव माना जाता है। सन् 1953 से 1960 तक के समय में 'नई कविता' का दौर चला। जो प्रगति व प्रयोग की संतुलित कविता है। सन् 1960 के बाद की कविता को 'साठोत्तरी कविता' नाम दिया गया।

पद्य साहित्य के उक्त विविध वादों के साथ-साथ गद्य साहित्य ने भी विकास किया। गद्य साहित्य में अनेक नवीन विद्याएँ प्रारम्भ हुईं। पूर्व प्रचलित विधाओं में भी परिमार्जन हुआ। इस समय के गद्य साहित्य में गद्य की समस्त विधाओं में शिल्प एवं कथ्य का विशिष्ट परिवर्तन देखने को मिलता है। संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्टाज, रेडियोरूपक, यात्रावृत्त, डायरी, आत्मकथा, साक्षात्कार आदि नवीन विधाओं का सृजन हुआ। इस समय के साहित्य में निबंध, आचलिक उपन्यास, हास्य-व्यंग्य, नई कहानी आदि सभी गद्य विधाओं में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए। निर्मल वर्मा के द्वारा 'अकहानी' का विकास भी डॉ. भारिल्ल के समकाल में ही हुआ है।

इधर इस काल में जैन साहित्य में भी गद्य-पद्य की सभी प्रकार की रचनाएँ निर्मित हो रही हैं; परन्तु आध्यात्मिक शैली का पुट मुख्य हो गया है। उपन्यास, एकांकी, निबंध, आत्मकथा, काव्यरचना, महाकाव्य, खण्डकाव्य, समालोचना, यात्रावृत्त, पत्र, साक्षात्कार आदि सभी विधाओं पर साहित्य का सृजन हुआ। अनेक नवोदित लेखक तैयार हुए। अनुवाद कार्य भी बहुत हुआ। धवला, जयधवला, महाधवला जैसे संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद तथा टीकाएँ फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री ने कीं। वहीं अनेक विद्वानों ने अनेक ग्रन्थ लिखे। इस समय में सबसे अधिक जैन साहित्य पूर्ववर्ती आचार्यों तथा नवीन लेखकों का प्रकाशित हुआ। साहित्य लागत कीमत से भी कम कीमत पर उपलब्ध हुआ।

#### 1.2.4.3. डॉ. भारिल्ल पर साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पर तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। इनके समय में भी गद्य विद्याओं में अत्यधिक लेखन कार्य हो रहा था। इसका प्रभाव इन पर भी पड़ा। इन्होंने गद्य की प्रायः समस्त विधाओं में लेखन कार्य किया। 'सत्य की खोज' (उपन्यास), 'आप कुछ भी कहो' (कहानी संग्रह), 'धर्म के दशलक्षण' (निबंध), 'युग पुरुष कानजी स्वामी' (साक्षात्कार), 'आत्मा ही है शरण' (यात्रावृत्त), पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' (शोधकृति), वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं में एकांकी जैसी गद्य रचनाओं का निर्माण हुआ। काव्य के क्षेत्र में भी इन्होंने वैराग्य (महाकाव्य) पश्चात्ताप (खण्डकाव्य), जिनेन्द्र वन्दना, बारह भावना आदि लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत छन्दों का हिन्दी में पद्यानुवाद भी किया है।

इनके समय में कवियों ने उपेक्षित नारी को अपने काव्य में स्थान देकर नारी के सम्मान को भी ऊँचा उठाया है। इसका प्रभाव डॉ. भारिल्ल

पर भी पड़ा। इन्होंने भी नारी के स्वरूप का 'वैराग्य' महाकाव्य तथा 'पश्चात्ताप' खण्डकाव्य में व अन्य स्थान पर वर्णन कर उसका दर्जा बढ़ाया है।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्यिक परिस्थितियों का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। साहित्य के सम्बन्ध में उनका मत है ह्व "साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं दीपक भी है, मार्गदर्शक भी है। जो साहित्य प्रकाश न बिखरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे, मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे, वह साहित्य नहीं, साहित्य के नाम पर कलंक है।"<sup>१७</sup>

इसतरह कुल मिलाकर आलोच्य काल में राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ संतोषप्रद एवं उत्साहवर्द्धक कही जा सकती है। वहीं तत्कालीन राजनीति में अस्थिरता, समाज में पाश्चात्य प्रवृत्ति, धर्म के क्षेत्र में धर्मान्धता या मात्र प्रदर्शन और साहित्य के क्षेत्र में अनिश्चितता दिखाई देती है।

### 1.3. जीवन-परिचय

#### 1.3.1. जन्म

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी विक्रम संवत् 1992 तदनुसार शनिवार दिनांक 25 मई, 1935 ईस्वी को उत्तरप्रदेश राज्य के ललितपुर जिले के एक छोटे से गाँव 'बरौदास्वामी' में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का जन्म हुआ।

इनकी जन्म कुंडली का एक पृष्ठ शोधकर्ता को हाथ लगा; वह इसप्रकार है ह्व

“संवत् 1992 शाके 1857 मासोत्तम मासे ज्येष्ठ मासे, कृष्णपक्षे पखनुपुन्यतिथौ 8 शनिवासरे को घटी 49 पल 55 धनिया नक्षत्रे घटी 7 पल 58 एन्द्रनाम जोगे घटी 7 पल 38 इष्ट घटी 36 पल तत समये वृसीक लग्नोदयो जन्म। कुंभे नाम सनतकुमार शुभः।”

10 रा.	9	लग्न	7 गु.
		8	6 मं.
	श 11	चं.	5
12		2 शु.	4 के
	1	3 बु. सू.	

ज्योतिष शास्त्रानुसार इस जन्म काल में जन्मा व्यक्ति धर्मी, सुमार्गी, देवगुरुपूजक, सत्कर्मी, सेवाभावी, परोपकारी, विद्वान, गुणी, शौर्यवान्, सौम्य प्रकृतिवाला, विदेशगामी, ख्याति-कीर्ति युक्त, कुल में प्रधान होता है। उक्त विशेषताएँ डॉ. भारिल्ल में देखने को मिलती हैं।

#### 1.3.2. नाम

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का नाम जन्मकुंडली के अनुसार 'सनतकुमार' है, परन्तु इस नाम का उल्लेख जन्मकुंडली के अलावा और कहीं भी नहीं मिलता है, न ही बचपन में इस नाम से पुकारा गया। बचपन में ही पिताजी ने मुख्य नाम 'हुकमचन्द' रख दिया था, वही नाम लोक में प्रचलित हुआ।

जब से प्रवचनादि का कार्य करने लगे तो जगत में पण्डित हुकमचन्द भारिल्ल नाम प्रचलित हो गया। यहाँ तक कि डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल जब टेलीफोन पर बातचीत करते हैं और उधर से कोई पूछता है कि कौन तो इधर से डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कहते हैं ह्व "मैं पण्डित हुकमचन्द" पण्डित शब्द से उनकी इतनी आत्मीयता हो गई।

जब इन्होंने शास्त्री की डिग्री प्राप्त कर ली तो ये अपने नाम के साथ शास्त्री लगाने लगे। लोग शास्त्रीजी कहकर भी पुकारने लगे। अपने अध्यापकीय सेवाकाल में इन्हें स्टॉफ के साथी शास्त्रीजी कहकर ही पुकारते थे।

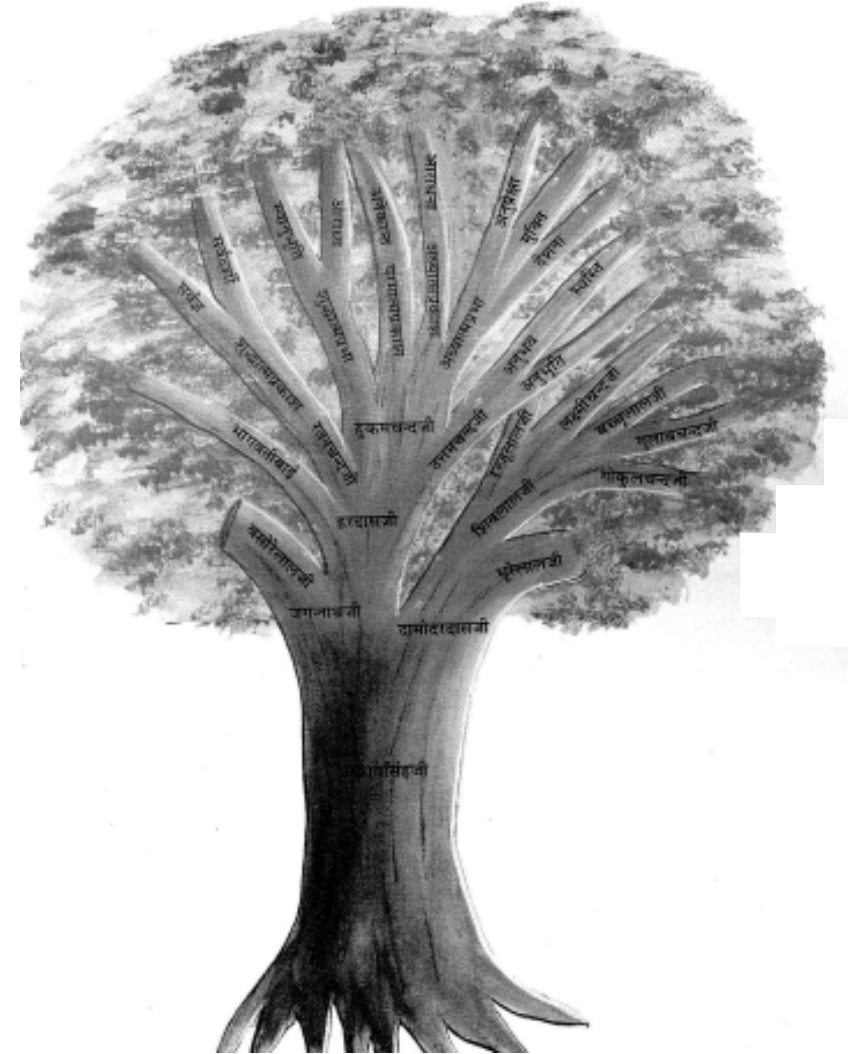
जब इन्होंने पीएच.डी.कर ली और डॉक्टर की उपाधि प्राप्त कर ली तो पण्डित डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल नामकरण हुआ। लोग डॉ. साहब कहने लगे। इनके लघुभ्राता डॉ. उत्तमचन्द भारिल्ल एवं इनकी पुत्र-पुत्रियाँ, अग्रज एवं अनुज भ्राताओं के बच्चे इनके अग्रज पण्डित रतनचन्दजी को बड़े दादा और इन्हें छोटे दादा कहते हैं। अतः टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय में अध्ययन करनेवाले सभी विद्यार्थी भी 'छोटे दादा' कहने लगे। इसतरह इनके हुकमचन्द, पंडितजी, डॉ. साहब, छोटे दादा नाम वर्तमान में प्रचलित हैं अर्थात् इन्हें इन नामों से पुकारा जाता है।

### 1.2.3. वंश परम्परा

उमरावसिंहजी के दो पुत्र थे। जगन्नाथजी और दामोदरप्रसादजी। जगन्नाथजी बड़े थे, जिनके दो पुत्र हुए ह वसोरेलालजी व हरदासजी। दामोदरप्रसादजी के भी दो पुत्र हुए ह भूरेलालजी व शिवलालजी। डॉ. हुकमचन्द के पिता हरदासजी थे। उनके बड़े भाई वसोरेलालजी अविवाहित थे। अतः उनका वंश तो यहीं पूर्ण हो गया; पर हरदासजी के चार संतानें उत्पन्न हुईं। जिसमें एक पुत्री व तीन पुत्र हैं। जिनके नाम क्रमशः भागवती बाई, रतनचन्द, हुकमचन्द और उत्तमचन्द हैं। भागवती बाई उनकी सबसे बड़ी संतान हैं। रतनचन्द भारिल्ल के एक मात्र पुत्र उत्पन्न हुआ; जिसका नाम शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल है। हुकमचन्द भारिल्ल के दो पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। पुत्र के नाम परमात्मप्रकाश भारिल्ल तथा अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल हैं। पुत्रियों के नाम शुद्धात्मप्रभा और अध्यात्मप्रभा हैं। उत्तमचन्द भारिल्ल, हुकमचन्द भारिल्ल के लघु भ्राता हैं। ये राजकीय सेवा में आयुर्वेद चिकित्सक हैं। इनके एक पुत्र व एक पुत्री है, जिनके नाम अनुभव व अनुभूति हैं। इनके वर्तमान परिवार के बच्चों के जो नाम हैं, उससे उनमें इनकी अध्यात्म के प्रति रुचि की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

इनके वंश परिवार का वंशवृक्ष इसप्रकार है ह

## वंशवृक्ष



### 1.3.4. माता-पिता और समागम

डॉ. भारिल्ल की माता का नाम नन्हीबाई या पार्वतीबाई था। पिता का नाम श्री हरदासजी भारिल्ल था। इनके पिता बरौदास्वामी ग्राम के ही मूलनिवासी थे। माता-पिता दोनों का स्वभाव सरल व धर्ममय था। पिता की रुचि अपने पुत्रों को पंडित बनाने की थी, जिसमें उन्हें सफलता मिली। डॉ. भारिल्ल की माँ लम्बे समय तक रोगग्रस्त रहीं। वह अपनी मृत्यु से 25 वर्ष पूर्व से रोग शय्या पर थीं। डॉ. भारिल्ल के माता-पिता डॉ. भारिल्ल जहाँ रहे, वहाँ उनके साथ अधिकांश समय रहे। अशोकनगर, इन्दौर, जयपुर भी साथ रहे।

डॉ. भारिल्ल ने मुझे बतलाया कि उनके लघु भ्राता उत्तमचन्द की बारात गुना जा रही थी। माँ को भी साथ ले गए। पर हृदयाघात हो जाने के कारण आगरा शहर में छोड़ना पड़ा। वहाँ पद्मचन्दजी सर्राफ के यहाँ रुके। पिताजी भी वहीं रुके। बारात गुना पहुँची। उधर उत्तमचन्दजी की शादी हो रही थी और इधर माँ की मृत्यु हो गई। मृत्यु का समाचार पाकर खुशी का सारा माहौल शोकमय हो गया। यह दिन था 18 फरवरी 1973 ईस्वी का। इस तरह 1973 तक माँ का समागम रहा।

पिताजी का समागम भी बराबर रहा। पिताजी की मृत्यु माँ की मृत्यु के उपरांत 25 अगस्त 1975 ईस्वी को विदिशा में हुई। इनके पिताजी मृत्यु के एक माह पूर्व जयपुर में ही थे। जयपुर से विदिशा रतनचन्दजी भारिल्ल के यहाँ गए थे। डॉ. भारिल्ल भी वहाँ पिताजी को मिलने गए और 15 दिन उनके पास ही रहे; परन्तु मृत्यु के समय ये वहाँ उपस्थित नहीं थे। कारण यह था कि इन्हें दिगम्बर जैन महासमिति की अत्यावश्यक मीटिंग में भाग लेने दिल्ली जाना था। अतः ये दिल्ली गए थे। दिल्ली से ये शीघ्र लौटकर विदिशा आए, क्योंकि इन्हें पिताजी की बीमारी का पूरा ज्ञान था। पर जब ये विदिशा पहुँचे, उसके ठीक एक घंटे पूर्व ही पिताजी का स्वर्गवास भाई रतनचन्दजी भारिल्ल के घर विदिशा में हो गया था।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. भारिल्ल के जीवन में 37 वर्षों तक माँ का तथा 39 वर्षों तक पिताजी का समागम रहा।

### 1.3.5. बचपन

डॉ. भारिल्ल का बचपन किसप्रकार व्यतीत हुआ ? इस संबंध में कहीं कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु मैं उनके बड़े भ्राता रतनचन्दजी भारिल्ल से मिला। उनसे वार्तालाप के आधार पर बचपन की कुछ जानकारी मुझे मिली है। जो इसप्रकार है ह

“मैं (रतनचन्द) व हुकमचन्द दोनों साथ ही रहते थे। खेलना, पढ़ना, खाना साथ में होता था। हुकमचन्द बड़ा नटखट था। यह बड़ा तेज था। मैं प्रारम्भ से ही शांत प्रकृति का था, जबकि वह उग्र स्वभाव का था। पढ़ने में हुकमचन्द तेज था, परन्तु दोनों भाई की जोड़ी राम-लक्ष्मण की तरह थी।”

बचपन में माता-पिता का पूरा प्यार मिला। घर के कार्यों में सहयोग देते थे। खेलने में रुचि ज्यादा नहीं थी। पढ़ने के प्रति ललक बचपन से ही अधिक थी। 5-6 वर्ष की उम्र में विद्यालय जाना प्रारम्भ कर दिया। बचपन सामान्य रूप से अच्छा व्यतीत हुआ।

### 1.3.6. शिक्षा और शिक्षा गुरु

डॉ. भारिल्ल की प्रारम्भिक शिक्षा मुख्यतः घर पर ही हुई। गाँव में एक व्यक्ति ट्यूशन पढ़ाते थे। कुछ दिन उनके पास भी पढ़े और एकाध वर्ष अपने गाँव चार-पाँच किलोमीटर दूर एक ननोरा नामक गाँव की प्राथमिक शाला में भी पढ़े। सन् 1946 की दीपावली के तत्काल बाद चार माह वीर विद्यालय पपौरा में अध्ययन किया। चूँकि इनके पिता अपने पुत्रों को पंडित बनाना चाहते थे; अतः सन् 1947 जुलाई में श्री गोपाल दिगम्बर जैन विद्यालय मुरैना में भर्ती करा दिया। इस संबंध में उल्लेख मिलता है ह

“निकट के अतिशय क्षेत्र श्री शांतिनाथ सेरोनजी में मेला के अवसर पर एक ओजस्वी वक्ता के प्रवचन सुनकर आपके पिताश्री ने आपको भी

ऐसा ही विद्वान बनाने का संकल्प किया था। तदनुसार आपकी शिक्षा मुरैना व राजाखेड़ा के विद्यालयों में सम्पन्न हुई।<sup>10</sup>”

वहाँ रहकर इन्होंने सन् 1954 में शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षा पास की। इसके बाद शिक्षक के रूप में रहते हुए प्राइवेट मैट्रिक, इन्टर, बी.ए. एवं साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में इन्दौर विश्वविद्यालय से नियमित रहकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। जयपुर टोडरमल स्मारक में कार्य करते हुए इन्दौर-विश्वविद्यालय, इन्दौर से सन् 1970-71 में पीएच.डी. की और डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इस तरह लौकिक शिक्षा पर एक तरह विराम लग गया, परन्तु यहीं शिक्षा का कार्य पूर्ण नहीं हुआ। वे निरन्तर शिक्षार्जन में लगे रहे। आजतक भी उनका अध्ययन क्रम जारी है। अध्ययन के फलस्वरूप ही वे अच्छे लेखक, वक्ता बन सके और मौलिक कृतियों का निर्माण कर सके।

डॉ. भारिल्ल के लौकिक विद्या गुरु अनेक रहे हैं, फिर भी जिनका विशेष लाभ मिला; उनमें श्री मखनलालजी तथा नन्हेंलालजी हैं; धर्म में विद्यागुरु और जिनके कारण अध्यात्म का लाभ मिला है वे हैं श्री कानजीस्वामी। जिनका डॉ. भारिल्ल ने हमेशा ही अपने आपको ऋणी माना है।

डॉ. भारिल्ल के पिता का ओजस्वी वक्ता बनाने का जो स्वप्न था, वह डॉ. भारिल्ल ने पूर्ण कर दिखाया।

### 1.3.7. वेशभूषा

डॉ. भारिल्ल की वेशभूषा जीवनभर भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही रही है। इन्होंने धोती-कुर्ता ही पहना। पंडित बनने के बाद टोपी भी पहनने लगे। जब मैं डॉ. भारिल्ल से मिला और उनसे उनकी वेशभूषा के बारे में पूछा तो इन्होंने बतलाया हूँ “मैंने पढ़ने से लेकर आजतक धोती-कुर्ता ही पहना है। हाँ, जब एम.ए. कर रहा था। इन्दौर विश्वविद्यालय के कॉलेज में पढ़ने जाता था; तब पहली बार दो पेंट-शर्ट सिलवाए थे। वे

भी जब कॉलेज जाता था, तभी पहनता था। शेष समय में वही अपनी धोती-कुर्ता वाली वेशभूषा में रहता था, इसीप्रकार एक बार सूट भी पहना। जब पहली बार विदेश यात्रा पर निकला, तब पहना; क्योंकि लोगों ने कहा कि वहाँ बहुत सदी पड़ती है। अतः आपको सूट पहनना ही पड़ेगा तो सूट सिलवाया। प्लेन में बैठे तब पहना भी, पर जब वहाँ गए और देखा कि जैसा कह रहे थे, वैसा कुछ भी नहीं है; तब मैं वापस वही अपनी धोती-कुर्ता वाली वेशभूषा पर आ गया। वह सूट प्लेन में पहना जो पहना, उसके बाद आजतक वापस नहीं पहना। वह सूट अब कहाँ गया, यह भी मालूम नहीं।”

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. भारिल्ल की वेशभूषा धोती-कुर्ता और कभी-कभी टोपी ही रही है। वे एक सोने की अंगूठी भी पहना करते हैं।

### 1.3.8. शादी

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की शादी अल्पायु में ही सन् 1954 में अक्षय तृतीया के दिन पण्डित चुन्नीलालजी चंदेरीवालों की सुपुत्री गुणमाला से हो गई थी। जो प्रवेशिका तक पढ़ी-लिखी है। वह सुशील, सुंदर व नाटे कदवाली हैं। दोनों का स्वभाव एक जैसा है। अतः पारिवारिक शांति है।

### 1.3.9. परिवार

डॉ. भारिल्ल की शादी 1954 ईस्वी में हुई। उसके बाद उनकी पहली पुत्री का जन्म 31 जनवरी, 1958 को हुआ। जिसका नाम शुद्धात्मप्रभा रखा। फिर एक पुत्र का जन्म 30 सितम्बर, 1959 को हुआ, जिसका नाम परमात्मप्रकाश रखा। 10 अप्रैल, 1962 को एक और पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम अध्यात्मप्रकाश रखा। 23 सितम्बर 1963 को एक और पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम अध्यात्मप्रभा रखा। इसप्रकार इनका परिवार दो पुत्र दो पुत्री का हुआ। चारों के नाम धार्मिक दृष्टिकोण से रखे जो डॉ. भारिल्ल की धार्मिक रुचि के परिचायक हैं। डॉ. भारिल्ल की

धार्मिक रुचि का प्रभाव इनके पूरे परिवार पर पड़ा। इनके पुत्र व्यापार के साथ-साथ प्रवचन का कार्य भी करते हैं। दोनों पुत्रियाँ भी धार्मिक कक्षाएँ लेती हैं। पूरे परिवार में अध्यात्म का वातावरण ही नहीं है, अपितु विषय-वस्तु की पकड़ भी है।

### 1.3.10. आर्थिक स्थिति

डॉ. भारिल्ल के पिता ने अनेक कठिनाइयों और विषमताओं का सामना किया; क्योंकि आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ नहीं थी। एक सामान्य साहूकारी का व्यवसाय बरौदा स्वामी गाँव में ही था। जिससे उनका सामान्य खर्च ही चल पाता था। वहीं उनकी धर्मपत्नी लंबे समय से बीमार ही रहती थीं। उसमें अधिकांश राशि खर्च होती थी। इधर बच्चों के अध्ययन कार्य को करवाना भी बहुत जरूरी था। वे इन्हें पंडित बनाना चाहते थे। अतः विषम परिस्थितियों के बावजूद भी उन्होंने अध्ययन कार्य करवाया और अपने पुत्रों को योग्य बनाया। इस संबंध में डॉ. भारिल्ल ने अपनी शोध-प्रबंध की भूमिका में लिखा है ह

“इस शोधकृति प्रकाशन के अवसर पर पूज्य पिताजी साहब के प्रति भी मैं गद्गद् हृदय से श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने अनेक कठिनाइयों और विषमताओं के बीच मुझे इस योग्य बनाया तथा स्वर्गीय माताजी, जिनका वरदहस्त छह माह पूर्व तक 8 अगस्त, 1973 ईस्वी से छह माह पूर्व तक प्राप्त था, जो पच्चीस वर्ष तक रोग शैथ्या पर रहने पर भी मेरे अध्ययन में सदा साधक ही बनी रहीं, उनके प्रति मैं विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।<sup>11</sup>” पिता की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। अतः डॉ. भारिल्ल व बड़े भ्राता रतनचंद ने पढ़ाई पूरी कर नौकरी की। धीरे-धीरे आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होता गया। वर्तमान में उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है। इनके पुत्रों की स्थिति तो बहुत अधिक सुदृढ़ है। वे जवाहरात के व्यापारी हैं। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने पर भी धर्म से विचलित नहीं हैं।

### 1.3.11. कार्यक्षेत्र

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। इन्होंने अनेक क्षेत्रों में कार्य किया है। अपने जीवनकाल में अध्यापन के क्षेत्र में, व्यापार के क्षेत्र में, प्रवचन (वक्ता) के क्षेत्र में, पत्रिका के संपादक के क्षेत्र में, प्रशासन के क्षेत्र में (टोडरमल स्मारक भवन के निर्देशक के रूप में) साहित्य के क्षेत्र में आदि विविध क्षेत्रों में कार्य कर अपनी प्रतिभा की स्पष्ट छाप छोड़ी है।

डॉ. भारिल्ल का कार्यक्षेत्र संपूर्ण भारत के साथ-साथ विदेश भी रहा है।

इस संबंध में विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में डॉ. भारिल्ल के कृतित्व के अंतर्गत किया जायेगा।

### 1.3.12. समाज में स्थान व अभिनन्दन

शोधकर्ता ने डॉ. भारिल्ल के घर पर संपर्क किया। जहाँ अभिनन्दन-पत्र सैकड़ों की तादात में एक अटाले में पड़े हुए थे। जिन्हें इनके नौकर के सहयोग से शोधकर्ता ने निकाले और झाड़-झंकाड़ कर उनका पूर्णतः अवलोकन किया। शोधकर्ता को इनके अभिनन्दन-पत्रों में सबसे पुराना अभिनन्दन-पत्र 1962 का प्राप्त हुआ है। यह अशोकनगर की जैनसमाज द्वारा दशलक्षण पर्व के अवसर पर दिया गया है। इसीतरह दिगम्बर जैन समाज जयपुर, इंदौर, सीकर, बड़ौत (मेरठ), खुरई, दाहोद, रूड़की, मेरठ, केकड़ी, भोपाल, फिरोजाबाद, ग्यारसपुर, विदिशा, शिकोहाबाद समाज ने भी अभिनन्दन-पत्र भेंट किये हैं। दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल गोहाटी, प्रशिक्षण शिविर समिति विदिशा, दिगम्बर जैनधर्म शिक्षण समिति गुजरात, दिगम्बर जैन शिक्षण समिति सागर, दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल खनियांधाना, मुमुक्षु मंडल उदयपुर, उत्तरप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल आगरा, जैननगर फिरोजाबाद, दिगम्बर जैन तत्त्वप्रेमी समाज साबली, ईडर, प्रबंध कारिणी कमेटी पपौराजी, मुमुक्षु मंडल फिरोजाबाद, सहारनपुर, भिण्ड,



शाहगढ़, ऑल इण्डिया दिगम्बर भगवान महावीर 2500 निर्वाण महोत्सव सोसायटी, गुजरात प्रदेश, प्रशिक्षण शिविर समारोह समिति प्रांतिज, जैन अध्यात्म व्याख्यानमाला, बंबई, पार्श्वनाथ नवयुवक मंडल, बापूनगर जयपुर, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा बिजौलिया, दिगम्बर जैन पोरवाल सार्वजनिक न्यास भोपाल, चंदप्रभ अतिशय क्षेत्र, फिरोजाबाद पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समिति अशोकनगर आदि ने भी डॉ. भारिल्ल को सम्मान-पत्र भेंटकर विविध विशेषणों से अलंकृत किया है।

ये सम्मान-पत्र इनकी विशिष्ट प्रतिभा को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। इन्हें शोधकार्य हेतु दिगम्बर जैन समाज, जयपुर ने सम्मान-पत्र देकर अभिनंदन किया था। इनके 61वें जन्मवर्ष के उपलक्ष्य में पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट द्वारा इन्हें 61 हजार की राशि भेंट कर सम्मानित किया गया है। बेलगांव सर्वोदय समिति कर्नाटक द्वारा इनके लिए अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी। यह ग्रंथ वर्तमान में प्रकाशित हो चुका है।

इसप्रकार डॉ. भारिल्ल का जैनसमाज ने सैकड़ों बार अभिनन्दन किया है। उक्त विवरण में डॉ. भारिल्ल का जैनसमाज में जो विशिष्ट स्थान है उसका स्वतः ही ज्ञान हो जाता है।

### 1.3.13. खान-पान

डॉ. भारिल्ल का खान-पान सादा व सहज है। ये अभक्ष्य पदार्थों के त्यागी हैं। आलू, प्याज आदि जमीकंद का त्याग है। शराब, अंडा, मांस का त्याग तो कुल परम्परा से ही था, पर नियम भी बना लिया। रात्रि भोजन के त्यागी हैं। दूध ये नियमित पीते हैं। ये वर्तमान में प्रचलित गोल्डस्पॉट, लिम्का, थम्सअप आदि पेय पदार्थों को स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं मानते हैं। ये इनसे कोसों दूर हैं। ये पूर्णतः शाकाहारी एवं शाकाकार के प्रति प्रबल प्रचारक हैं। ये शाकाहार के विषय में स्पष्ट करते

हैं ह “लौकिक सुख-शांति के अभिलाषियों को भी शाकाहारी तो होना ही होगा, अन्यथा उनका जीवन एवं परिकर भी विकृत हुए बिना नहीं रहेगा। अतः यह सुनिश्चित ही है कि लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टि से शाकाहारी श्रावकाचारी होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।<sup>12</sup>”

### 1.3.14. संपर्क और साहचर्य

डॉ. भारिल्ल का संपर्क बहुत ही विस्तृत है। सारा जैन समाज इनका संपर्क केन्द्र रहा है। परंतु कुछ नामों को उल्लेख यहाँ किया जा रहा है, जिनके संपर्क से डॉ. भारिल्ल पर प्रभाव पड़ा था, इन्होंने डॉ. भारिल्ल के साथ-साथ कार्य किया था।

डॉ. भारिल्ल का 1957 में श्री कानजीस्वामी से संपर्क हुआ; जिसके कारण इनकी सारी काया-कल्प हुई। ये उन्हें अपना आध्यात्मिक धार्मिक विद्यागुरु के रूप में स्वीकार करते हैं। कानजीस्वामी के साथ अनेक विद्वान रहते थे। उन सबसे भी इनका संपर्क हुआ, जिनमें रामजी भाई (वकील) हिम्मतभाई, खेमचंदभाई, हरिभाई, लालचन्दभाई मोदी राजकोट, नेमीचंद काका रखियाल, बाबू जुगलकिशोरजी कोटा, शांताबेन, चंपाबेन आदि से संपर्क हुआ।

पण्डित नेमीचन्दजी पाटनी व बाबूभाई का नाम कभी भी नहीं भुलाया जा सकता है। बाबूभाई (मोटा फतेहपुर, गुजरात) का संपर्क डॉ. भारिल्ल से सन् 1958 से लेकर अपने जीवन पर्यन्त तक रहा। इन्होंने साथ-साथ धर्म प्रचार-प्रसार का कार्य किया। इनकी तो राम-लक्ष्मण जैसी जोड़ी थी। धर्मचक्र में, शिविरों में, पंचकल्याणकों, विधानों में साथ ही रहते थे। इसीप्रकार नेमीचन्दजी पाटनी आगरावालों का संपर्क भी सोनगढ़ में हो गया था। पर जब से (1967 में) श्री टोडरमल स्मारक भवन में डॉ. साहब आए, तब से आजतक बराबर संपर्क है। डॉ. भारिल्ल ने बताया कि पाटनीजी मैनेजमेन्ट का सारा कार्य देख लेते थे, जिससे उन्हें कोई

चिंता नहीं रहती है, पाटनीजी के मन में एक तमन्ना रहती थी कि डॉ. साहब की प्रतिभा का लाभ अधिक से अधिक समाज को मिले हूँ लेखन से, प्रवचन से, धर्म प्रचार से। पाटनीजी का भरपूर सहयोग डॉ. साहब को मिला।

डॉ. साहब के संपर्क में पूरनचन्दजी गोदीका के नाम का उल्लेख भी अत्यावश्यक है। इन्होंने टोडरमल स्मारक भवन बनाया था और डॉ. भारिल्ल को अपने इस रोपे हुए नव पौधे को पल्लवित करने के लिए लाए थे। गोदीकाजी ने संस्था को चलाने में पूर्ण आर्थिक सहयोग दिया। उन्होंने कभी भी डॉ. साहब के कार्य में व्यवधान नहीं डाला, जिसके कारण ही सब काम सहज व सही होते रहे। उन्होंने अपने धन का कभी मद नहीं किया। गोदीकाजी ने अपनी पोती का ब्याह भी डॉ. भारिल्ल के सुपुत्र के संग किया।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी से भी इनका संपर्क रहा है। डॉ. भारिल्ल की अनेक कृतियों पर उन्होंने अपने अभिमत व्यक्त किये हैं।

डॉ. भारिल्ल का संपर्क करोड़पति सेठों से रहा है तो निम्न से निम्न आर्थिक स्तरवालों से भी रहा है। जयपुर प्रिंटर्स के मालिक सोहनलालजी जैन डॉ. साहब के अच्छे मित्रों में से थे। उनका डॉ. साहब की पुस्तकों के प्रकाशन में, पत्रिका प्रकाशन में पूरा-पूरा सहयोग मिला। गुजराती समाज, हिन्दी समाज, मराठी समाज आदि समाजों से भी इनका अच्छा संपर्क है।

भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी से निकट का संपर्क रहा है। पूर्व के व वर्तमान के राजनीतिक नेताओं से भी संपर्क है। टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के समस्त छात्रों से डॉ. साहब का संपर्क सहज ही है। शोधकर्ता को भी सन् 1985 से निरंतर संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

### 1.3.15. विविध स्थानों पर विरोध

यह सत्य ही है कि जब भी कोई अच्छा कार्य करता है तो उसका विरोध भी होता ही है। विरोध से उसका प्रचार-प्रसार भी शीघ्र ही हो जाता है। डॉ. भारिल्ल का समाज में कई जगह विरोध हुआ। कई स्थानों पर काले झंडे दिखाए गए। प्रवचन नहीं करने दिया, गद्दी से उठाया गया। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी विरोध किया। अनर्गल झूठे आरोप भी लगाए गए। जब डॉ. भारिल्ल से मैंने मुलाकात की और उनसे विरोध संबंधी जानकारी चाही तो उन्होंने बतलाया हूँ

“जयपुर में आने के बाद जयपुर में तो मेरा कोई विरोध नहीं हुआ, परंतु मिशन का प्रमुख प्रतिनिधि बन जाने के कारण देश में अनेक जगह विरोध हुआ। सबसे अधिक विरोध जयपुर में आने से पूर्व अशोकनगर में हुआ। गद्दी से उठा दिया गया। समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। मंदिर बंद करा दिया। ऐसा उग्र विरोध वहाँ हुआ, परंतु मैं कर भी क्या सकता था; क्योंकि तत्त्व की डोर हाथ में आ गई थी। अतः जो हो रहा था, उसको क्रमबद्ध रूप जानकर सहज स्वीकार कर लेता।”

जयपुर में आने के बाद एक बार ललितपुर में बहुत जोरदार विरोध हुआ। वहाँ मेरा रोज प्रवचन होता था। 8-10 हजार की जनता रोज प्रवचन सुनने आती थी; पर कुछ विरोधियों ने जुलूस निकाला और बहुत विरोध किया, काले झंडे दिखाए। मेरी टोपी भी हाथों से उछाल दी।

जबलपुर में भी विरोध हुआ। वहाँ अहिंसा पर व्याख्यान के लिए बुलाया गया था। सभा खचाखच भरी थी। कलेक्टर साहब खुद मंच पर बैठे थे। 100 पुलिस वाले लगाए गये थे; परंतु विरोधियों ने व्याख्यान नहीं होने दिया। डेढ़ घंटे तक गद्दी पर बैठा रहा। उनके विरोध को देखकर कलेक्टर साहब ने कहा हूँ “आप कहो तो मैं इन सबको गिरफ्तार करवा देता हूँ और आपका व्याख्यान हो जायेगा।” पर मैंने मना कर दिया और कहा कि पुलिस के सहयोग से व्याख्यान नहीं करना है। हमें तो अहिंसा

पर ही व्याख्यान देना है तो हम एक घंटे तक शांत रहकर बिना बोले अहिंसा का जो संदेश दे पायेंगे, वह एक घंटा बोलकर भी नहीं दे पायेंगे। मेरा व्याख्यान नहीं हुआ। शांति से बैठा रहा। वे ऊधम मचाते रहे। हम बिना व्याख्यान किये शांति से उठकर चले आए।

नागपुर में भी जोरदार विरोध हुआ। वहाँ सारा साहित्य मंदिर से निकाल दिया गया, फैंका गया। बाजार से जब वे निकले तो भारिल्ल वापिस जाओ, भारिल्ल मुर्दाबाद के नारे लगाते थे। दो-चार लोगों के साथ बैठकर निकलना पड़ता था।”

डॉ. भारिल्ल का कभी भी कैसा भी विरोध हुआ हो तो भी वे ऐसी परिस्थितियों में सामान्य ही रहते थे। कोई विरोध नहीं करते थे। शांति से प्रतिकार करते थे। इन्होंने विरोध का प्रत्युत्तर रचनात्मक तरीके से ही दिया है।

### 1.3.16. एक विशिष्ट संस्मरण

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के एक लघु भ्राता हैं, जिनका नाम डॉ. उत्तमचन्द है। इन्होंने नर्सिंग होम खोला, क्योंकि इनकी पत्नी भी डॉक्टर ही थी। जब डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल विदिशा इनके घर पहुँचे और नर्सिंग होम को देखा तो इनका माथा ठनक गया। इन्होंने कहा हूँ “यह तो प्रसूतिग्रह है। जब घर में बच्चा जन्मे तो 12 दिन तक सूतक होता है। यहाँ तो रोज बच्चे जन्मते हैं। अतः हमेशा ही सूतक वाली स्थिति है। अतः मैं तुम्हारे यहाँ खाना नहीं खाऊँगा।” इन्होंने बंद करने का वादा किया। डॉ. भारिल्ल जयपुर आ गए। यहाँ आकर इन्होंने तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री त्रिलोकचंदजी से बातचीत की और यहाँ राजस्थान सरकार की सेवा में दोनों को लगा दिया। 1979 में दोनों यहाँ आ गए। डॉ. साहब ने इन्हें प्रतिबंधित किया कि तुम दोनों प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं करोगे। यदि तुम्हें आर्थिक तंगी रहे तो मुझसे ले जाना। इसलिए आज तक भी ये दोनों प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं करते हैं। डॉ. साहब ने इन्हें धर्म की रुचि की ओर अग्रसर कर दिया। अतः ये धार्मिक रुचिवंत भी हो गए।

उत्तमचंदजी से मैंने मुलाकात की तो उन्होंने बतलाया हूँ

“मेरे भाईसाहब ( डॉ. साहब) की एक बात आज तक मुझे याद है और वह मेरे लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। छोटे दादा (डॉ. भारिल्ल) जिस स्कूल में पढ़ाते थे, उसी स्कूल में मैं पढ़ता था। जब मैं 9वीं कक्षा में पढ़ता था, उसी वर्ष विद्यालय में छात्रों के चुनाव हो रहे थे। मैं भी चुनाव में खड़ा होना चाहता था। अतः दादा से पूछने गया कि मैं चुनाव लड़ना चाहता हूँ। दादा ने तत्काल उत्तर दिया हूँ ‘मेरा भाई इस स्कूल में अध्यापक है। इस भरोसे तुम चुनाव मत लड़ना। अपने खुद के भरोसे ही रहना, मेरे भरोसे मत रहना। इस बात को मैंने सदा याद रखा और 1985 तक किसी भी चुनाव में कहीं भी खड़ा नहीं हुआ। 1986 में अपने भरोसे ही चिकित्सा के क्षेत्र में चुनाव लड़ा और निर्विरोध विजित हुआ।

### 1.3.17. व्यक्तित्व, स्वभाव एवं विशेषताएँ

“व्यक्तित्व का अर्थ इसप्रकार है कि जीवन के विविध प्रसंगों में व्यक्ति जिसप्रकार अपने को प्रस्तुत करता है, अपने व्यवहार या आचरण का जो प्रतिमान दूसरों के समक्ष रखता है तथा जिस विशिष्ट एवं अद्वितीय शैली में एक-दूसरे से अंतर्क्रिया निष्पन्न करता है, उसे उसका व्यक्तित्व कहा जाता है।”<sup>13</sup>

उक्त संदर्भ में हम डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व का विश्लेषण करेंगे तो उनके स्वभाव व विशेषताओं को स्वयमेव स्पष्टीकरण हो जायेगा।

डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व एक विरल व्यक्तित्व है। इस युग में डॉ. भारिल्ल दिगम्बर जैन समाज के विशेष ख्याति प्राप्त अकेले विद्वान हैं, जो ‘जैनतत्त्व’ के प्रचार-प्रसार के लिए वर्षों से प्रतिवर्ष विदेश जाते रहे हैं। संभवतः इस क्षेत्र में (विदेशों में जैनधर्म के प्रसार-प्रचार में) भी इनका कीर्तिमान स्थापित होगा।

डॉ. भारिल्ल का शारीरिक गठन बहुत अच्छा है, इनकी लंबाई 5 फुट 9 इंच है, शरीर से दुबले-पतले हैं; पर अधिक नहीं। गोल चपटाकर

मस्तक, सादे बाल ( न धुंधराले न आज की तरह हिप्पीकट), चौड़ा ललाट, लंबे कान, सुन्दर नेत्र-कान, लंबे हाथ-पैर, गेहुँआ वर्णीय सुंदर शरीर है।

डॉ. भारिल्ल इस युग की आधुनिकता के साथ होते हुए भी भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही हैं। ये घर के कामों की व्यवस्था में कभी नहीं उलझे। ये हर समय चिंतन, मनन, अध्ययन, लेखन और धर्मोपदेश की क्रिया में संलग्न रहते हैं। घर की व्यवस्था उनकी श्रीमती या पुत्रादि ही देखते हैं। वैसे भी घर पर रहने का अवसर ही कम रहता है। वर्ष भर ही देश-विदेश में विविध स्थानों पर विविध धार्मिक क्रियाओं में व्यस्त रहते हैं।

डॉ. भारिल्ल जब से स्मारक भवन में आए, तब से टोडरमल स्मारक के भवन में ही रहे। इन्होंने अपना निजी मकान बनाने को उचित नहीं समझा, इन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि मेरे पुत्रों का क्या होगा ? न तो उनके लिए धन संचय किया, और कुछ इस संबंध में निम्न सूक्ति इन पर चरितार्थ होती है ह

**पुत्र सुपुत्र तो क्यों धन संचय ।**

**पुत्र कुपुत्र तो क्यों धन संचय ॥**

ऐसे संत-सा विचार रखनेवाले डॉ. भारिल्ल का बाह्य व्यक्तित्व भी उतना ही प्रभोवात्पादक है, जितना कि उनका आंतरिक व्यक्तित्व।

डॉ. भारिल्ल के जीवन परिवर्तन में क्रमबद्धपर्याय रूपी अद्भुत तत्त्व औषधि का मिलना है, जिससे मानो इन्हें नया जीवन ही मिल गया हो। ये स्वयं इस विषय में लिखते हैं ह “क्रमबद्धपर्याय की समझ मेरे जीवन में मात्र मोड़ लाने वाली ही नहीं, अपितु उसे आमूलचूल बदल देनेवाली संजीवनी है।”<sup>14</sup>

जहाँ ‘क्रमबद्धपर्याय’ इनके जीवन के लिए परिवर्तनकारी है; वहाँ इनके व्यक्तित्व को ऊँचाइयों के शिखर पर ले जाने में टोडरमल स्मारक संस्था का भी पूर्ण हाथ है। यानि स्मारक में शुभागमन होते ही डॉ.

भारिल्ल की सुप्त प्रतिभा मचल उठी और स्मारक के पावन संयोग से तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की विविध धाराएँ बह निकलीं।

डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रदर्शित करनेवाले कतिपय उल्लेख इसप्रकार हैं ह

(1) **कलम के धनी ह** “भारिल्ल उच्चकोटि के वक्ता होने के साथ-साथ कलम के धनी भी हैं। इन्हें शास्त्रगत सिद्धान्त की गहराई तक पहुँच कर उसे नई रीति से प्रस्तुत करने में सफलता मिली है।”<sup>15</sup>

(2) **साहित्य में डॉक्टरी ह** “नई पीढ़ी के विद्वानों में डॉ. भारिल्ल अग्रगण्य हैं। इनकी लेखनी को सरस्वती का वरदान है ह ऐसा लगता है। डॉ. साहब ने साहित्य के क्षेत्र में सचमुच डॉक्टरी का प्रयोग किया है।”<sup>16</sup>

(3) **तर्कणा एवं प्रतिभा का संगम ह** “नई पीढ़ी में पंडितजी जैसे तलस्पर्शी तत्त्वज्ञ विद्वानों की अत्यंत आवश्यकता है, खाली पदवीधारियों की नहीं। यद्यपि पंडितजी में और भी अनेक विशेषताएँ हैं, तथापि जो तत्काल आवश्यक है, वह तर्कणा और प्रतिभा का संगम है, जो सोने में सुगंध है, वह भारिल्लजी में है।”<sup>17</sup>

(4) **सुलझे हुए विचारक ह** “डॉ. भारिल्ल सुलझे हुए विचार के विद्वान हैं। उनका तत्त्वज्ञान संबंधी अध्ययन तलस्पर्शी है। साथ ही वे अच्छे कवि भी हैं।”<sup>18</sup>

(5) **सहृदय कवि ह** “डॉ. भारिल्ल तार्किक एवं विचारक ही नहीं, अपितु आकर्षक शैली के प्रवचनकार होते हुए वे एक सहृदय कवि भी हैं।”<sup>19</sup>

(6) **पांडित्य के अभिमान से मुक्त ह** “सत्य मोक्षमार्ग एवं जिनशासन की महती प्रभावना में आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी के बाद आदरणीय पूज्यश्री कानजी स्वामी का योगदान स्मरणीय है। उनकी ही छटा के दर्शन आज की पीढ़ी के विद्वानों में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित पुस्तकों में हो रहे हैं। जो भविष्य के विद्वानों का

पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। डॉ. भारिल्ल का पांडित्य शब्दार्थों तक सीमित नहीं है, उसमें भावार्थ को सरल, सुबोध भाषा में व्यक्त करने की सामर्थ्य भी है। इतने बड़े विद्वान होकर भी पांडित्य का अभिमान देखने में नहीं आता।”<sup>20</sup>

**(7) विरोधों का न्यायसंगत उत्तरदाता हूँ** “डॉ. भारिल्ल जैन समाज के जाने-माने बहुप्रसिद्ध एवं बहुश्रुतज्ञ हैं, वे वाणी और कलम के धनी हैं। इनके प्रतिपक्षी विद्वान इनका हमेशा विरोध करते रहे, परंतु वे किसी के विरोध में नहीं रहे, अपितु आगम के आधार पर ही उन्हें युक्तियुक्त एवं न्यायसंगत उत्तर दिया।”<sup>21</sup>

**(8) अध्यात्म विशेषज्ञ हूँ** “डॉ. भारिल्ल अध्यात्म जैसे रूक्ष और दुरुह विषयों को इतना सरल, सुबोध एवं रोचक बना देते हैं कि अध्यात्म में प्रवेश पाने के लिए सर्वसाधारण के लिए बिलकुल सुगम बन जाता है। कारण यह कि ये अध्यात्म के विशेषज्ञ हैं।

**(9) धर्मप्रचार के वीर योद्धा हूँ** “डॉ. भारिल्ल धर्मप्रचार के क्षेत्र में आशातीत वीर योद्धा की तरह महान कार्य कर रहे हैं। आने वाले युग में धर्म प्रचार की बहुमुखी उन्नति के लिए भारिल्लजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।”<sup>22</sup>

**(10) सरल प्रस्तुतीकरण में सफल हूँ** “डॉ. भारिल्ल बेजोड़ चिंतक एवं प्रवचनकार हैं। ये साहित्य की सभी विधाओं के सिद्धहस्त लेखक हैं। प्रतिपाद्य विषय कितना ही दुरुह एवं गंभीर क्यों न हो, उसकी तार्किक स्वनिर्मित उदाहरणों से युक्त प्रवचनकला में वह सरल, सरस एवं सुगम बनकर हर स्तर के श्रोता के लिए बोधगम्य हो जाता है।”<sup>23</sup>

**(11) क्षयोपशम के धनी हूँ** “आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी, जिन्हें सोनगढ़ का संत भी कहा जाता है। उन्होंने डॉ. भारिल्ल के शोधकार्य पण्डित टोडरमलजी व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व हेतु मंगल आशीर्वाद देते हुए कहा था हूँ “पण्डित टोडरमलजी तो महान आत्मा थे। उनका मोक्षमार्ग

प्रकाशक अपूर्व ग्रंथ है। उसमें सब शास्त्रों का सार भर दिया है। उसकी बात क्या कहें ? वह हमें विक्रम संवत् 1982 की साल में मिला था। उसका सातवाँ अधिकार तो हमने हाथ से लिख लिया था।

और पण्डित हुकमचन्द, हुकमचन्द के बारे में तो हमने कहा था कि इसका क्षयोपशम बहुत है, बहुत है। वर्तमान तत्त्व की प्रभावना में उसका बड़ा हाथ है। इसने बहुत काम किया है। कहा न कि इसका तत्त्व की प्रभावना में बड़ा हाथ है। स्वभाव का भी नरम है। हम तो मन में जो भाव आता है, कह देते हैं। हम तो किसी के उसमें तो कहते नहीं।

अच्छा मिल गया, टोडरमल स्मारक को अच्छा मिल गया। गोदीका के भाग्य से मिल गया। गोदीका भी पुण्यशाली है न, सो मिल गया। बहुत अच्छा रहा। तत्त्व की बारीक से बारीक बात पकड़ लेता है, पंडित हुकमचन्द बहुत ही अच्छा है।”<sup>24</sup>

इस समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व सचमुच ही बहुमुखी प्रतिभा वाला आकर्षक व्यक्तित्व है।

### संदर्भ सूची

1. भारिल्ल हुकमचन्द : युगपुरुष श्री कानजी स्वामी, पृष्ठ-12
2. दफ्तरी शांतिलाल रायचंद : लेख ‘पूज्य कानजी स्वामी का जीवन दर्शन’, जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक पत्रिका विशेषांक अंक 16), 1990 ई., पृष्ठ-45
3. आमंत्रण पत्रिका : कल्पद्रुम महामंडल विधान, उदयपुर, नवम्बर, 1993 ई.
4. भारिल्ल हुकमचन्द : क्रमबद्धपर्याय (अपनी बात) पृष्ठ-10-11
5. सिद्धान्त शास्त्री प. कैलाशचंद : दक्षिण भारत में जैनधर्म, पृष्ठ-170
6. वाजपेयी नंददुलारे : हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ-21
7. चावला जगदीश : लेख ‘महात्मा गांधी से सोनिया गांधी तक 50

वर्षों की राजनीति, सरिता (पाक्षिक पत्रिका),  
अक्टूबर (प्रथम), 1997, पृष्ठ-22

8. शर्मा डॉ. हरिचरण : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ-20
9. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-7
10. जैन पं. गुलाबचंद : लेख डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं कानजी स्वामी, अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-124
11. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : पं. टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, अपनी बात, पृष्ठ-27
12. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : शाकाहार, पृष्ठ-16
13. माहेश्वरी जे.ए.के. : व्यक्तित्व प्रकृति, विकास तथा सिद्धान्त, पृष्ठ-140
14. भारिल्ल हुकमचंद : क्रमबद्धपर्याय, अपनी बात, पृष्ठ-9
15. स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति : अभिमत, क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-135
16. शास्त्री पं. जगमोहनलालजी : अभिमत, धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-186
17. ब्र. पं. मुन्नालालजी : अभिमत, धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-187
18. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचंद : अभिमत, धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-170
19. बंसल डॉ. राजेन्द्रकुमार : अभिमत, धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-172
20. ब्र. पं. मुन्नालालजी : अभिमत, परमभाव प्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-375
21. सिद्धान्तशास्त्री पं. नन्हेलालजी : अभिमत, गागर में सागर, पृष्ठ-97
22. शास्त्री पं. प्रकाशचंद : अभिमत, गागर में सागर, पृष्ठ-97-98
23. बंसल डॉ. राजेन्द्रकुमार : अभिमत, गागर में सागर, पृष्ठ-99
24. आध्यात्मिक संत  
श्री कानजी स्वामी : मंगल आशीर्वाद : पं. टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-1

## द्वितीय अध्याय

# डॉ. भारिल्ल का बहुमुखी कृतित्व

### 2.1. कृतित्व का परिचय

डॉ. भारिल्ल के समग्र कृतित्व को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ह पहला साहित्यिक कृतित्व और दूसरा साहित्येतर कृतित्व।

#### 2.1.1. साहित्यिक कृतित्व

डॉ. भारिल्ल की विश्वस्तर पर प्रसिद्धि में इनके द्वारा लिखित साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके साहित्यिक कृतित्व को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं ह (1) मौलिक गद्य साहित्य (2) मौलिक पद्य साहित्य (3) अनुवादित पद्य साहित्य (4) संपादित साहित्य एवं पत्रिकाएँ।

##### 2.1.1.1. मौलिक गद्य साहित्य

डॉ. भारिल्ल ने गद्य के रूप में अनेक कृतियाँ लिखी हैं, जिनका प्रकाशन होकर लाखों की संख्या में न मात्र भारत में अपितु विदेशों में भी पहुँची हैं। कृतियों के अतिरिक्त कुछ लेख, पहेलियाँ, कहानियाँ, प्रस्तावनाएँ भी हैं। जिनका नामोल्लेख इसप्रकार है ह

ह परमभावप्रकाशक नयचक्र

ह पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व

ह समयसार अनुशीलन भाग-1, 2, 3, 4, 5

ह समयसार का सार

ह तीर्थकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

ह सत्य की खोज (उपन्यास)

ह बारह भावना : एक अनुशीलन

- ह धर्म के दशलक्षण
- ह आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम
- ह क्रमबद्धपर्याय
- ह वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका
- ह गागर में सागर
- ह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
- ह निमित्तोपादान
- ह अहिंसा : महावीर की दृष्टि में
- ह आप कुछ भी कहो
- ह द्रव्य दृष्टि का विषय
- ह चैतन्यचमत्कार
- ह मैं कौन हूँ
- ह प्रवचनसार अनुशीलन (प्रकशाधीन)
- ह शाश्वत तीर्थधाम सम्मेलन शिखर
- ह शाकाहार : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में
- ह तीर्थंकर भगवान महावीर
- ह सार-समयसार
- ह आत्मा ही है शरण
- ह गोम्मटेश्वर बाहुबली
- ह बालबोध पाठमाला भाग-2
- ह बालबोध पाठमाला भाग-3
- ह वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-1
- ह वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-2
- ह वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर
- ह पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य
- ह अनेकांत और स्याद्वाद

- ह बिखरे मोती (40 लेखों का संकलन)
- ह विशिष्ट कृतियाँ
  1. चिंतन की गहराइयाँ, 2. सूक्ति-सुधा, 3. बिन्दु में सिन्धु,
  4. मैं स्वयं भगवान हूँ, 5. गोली का जवाब गाली से भी नहीं,
  6. रीति-नीति।
 इसके अतिरिक्त कुछ फुटकर रचनाएँ इसप्रकार हैं ह
- ह कहानियाँ
  1. एक केतली गर्म पानी, 2. प्रेम क्या है ?, 3. अभिमान,
  4. उद्धार, 5. मेरा साम्राज्य (प्रथम प्रकाशित है ह
  - शेष चार अप्रकाशित हैं)
- ह पहेली
  1. ये हैं मेरी परम पूज्य माताएँ, 2. ये हैं मेरी नारियाँ (अप्रकाशित)
- ह नाटक ह गरीब की दीवाली (अप्रकाशित)
- ह प्रस्तावनाएँ
  1. समयसार, 2. प्रवचनसार, 3. नियमसार, 4. पंचास्तिकाय,
  5. अष्टपाहुड, 6. मोक्षमार्गप्रकाशक, 7. रत्नकरण्डश्रावकाचार,
  8. कविवर भूधरदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 9. सहज सुख
  - साधन, 10. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन।
- ह आलेख
  1. अध्यात्म के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द और आध्यात्मिक-सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी 2. दो वर्ष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के चिर वियोग के, 3. आत्मधर्म और वीतराग-विज्ञान, 4. आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह : समाप्ति की ओर, 5. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का स्वरूप, 6. भारत की भावात्मक एकता (अप्रकाशित), 7. सुख कहाँ है? (अप्रकाशित), 8. पूज्य श्री कानजी स्वामी और उनके महत्त्वपूर्ण संस्मरण, 9. आज वे हमारे बीच नहीं हैं, 10. मुमुक्षु समाज के नेता - पं. बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता।

## 2.1.1.2. मौलिक पद्य साहित्य

<b>कृतियाँ</b>	बारह भावना जिनेन्द्र वंदना अर्चना पश्चात्ताप (खण्डकाव्य अप्रकाशित) वैराग्य (महाकाव्य, अप्रकाशित) कविता-संग्रह (अप्रकाशित)
<b>रचनाएँ</b>	मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ महावीर वंदना श्री कान (कहान) गुरु जाते रहे ?

## 2.1.1.3. अनुवादित साहित्य

कुन्दकुन्द शतक	अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद
शुद्धात्मशतक	योगसार पद्यानुवाद
समयसार पद्यानुवाद	समयसार कलश पद्यानुवाद
द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	प्रवचनसार पद्यानुवाद

## 2.1.1.4. सम्पादित साहित्य एवं पत्रिकाएँ

<b>कृतियाँ</b>	प्रवचनरत्नाकर भाग 1 से 9 ज्ञानगोष्ठी मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन परमार्थवचनिका प्रवचन नयप्रज्ञापन वृहज्जिनवाणी संग्रह वृहद् आध्यात्मिक पाठ संग्रह अष्टपाहुड़ युगपुरुष श्री कानजी स्वामी
----------------	--

<b>पत्रिकाएँ</b>	कारणशुद्धपर्याय वीतराग-विज्ञान पाठमाला-3 बालबोध पाठमाला भाग-1 समयसार नाटक आत्मानुशासन तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1, 2 प्रवचनसार आत्मधर्म (मासिक) वीतराग-विज्ञान (मासिक)
------------------	--

इसप्रकार डॉ. भारिल्ल हिन्दी जैन साहित्य जगत में एक सफल साहित्यकार हैं। वर्तमान साहित्यकारों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

## 2.1.2. साहित्येतर कृतित्व

डॉ. भारिल्ल ने मात्र साहित्य लेखन का कार्य ही नहीं किया, अपितु अनेक अन्य कार्य भी किए हैं, जो इनके बहुमुखी कृतित्व को उजागर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इनके साहित्येतर कृतित्व का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उन सब कार्यों का ही सुपरिणाम है कि डॉ. भारिल्ल को इतनी ख्याति मिली कि ये जीवन की सफलता रूपी ऊँचाइयों को छू सकें। इनके साहित्येतर कृतित्व का उल्लेख इसप्रकार है

## 2.1.2.1. अध्यापन

डॉ. भारिल्ल एवं इनके अग्रज श्री रतनचंद भारिल्ल ने सन् 1953 में मुरेना विद्यालय से शिक्षा पूरी कर अध्यापन कार्य करना तय किया। अतः सन् 1953, जुलाई से द्वय भ्राताओं ने अध्यापन कार्य का श्रीगणेश किया। श्री रतनचंद भारिल्ल ने भीलवाड़ा के अर्द्धशासकीय विद्यालय में अध्यापन कार्य किया और डॉ. भारिल्ल ने भीलवाड़ा के पास 'महुआ' नामक गाँव में चार माह कार्य करके पारोली (भीलवाड़ा) के माध्यमिक विद्यालय



(मिडिल स्कूल) में प्रधानाध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य आरंभ किया। यहाँ जून 1955 ईस्वी तक कार्य किया। वहाँ से नवम्बर, 1955 ईस्वी में ये मुरैना चले गये। जहाँ उनके बड़े भ्राता भीलवाड़ा से नौकरी छोड़कर पहले से ही नौकरी कर रहे थे। वहाँ ये दो माह रहे। वहाँ बड़े भ्राता पंडित रतनचंद के साथ रहकर पंचाध्यायी आदि ग्रंथों का अध्ययन किया, नौकरी नहीं की।

सन् 1957 की 31 मार्च को अशोकनगर पहुँचे। वहाँ इन्होंने एक हायर सैकेण्ड्री विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। वहाँ ये 9वीं 10वीं 11वीं कक्षाओं को हिन्दी, संस्कृत पढ़ाते थे। वहाँ पर नौ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। सन् 1966 तक अशोकनगर रहे। तत्पश्चात् जुलाई, 1966 ईस्वी में इंदौर जैन समाज के अनुरोध पर वहाँ गये। वहाँ त्रिलोकचंद जैन हायर सैकेण्ड्री स्कूल में अध्यापन कार्य किया। यहाँ सन् 1967 दशहरा पूर्व तक कार्य किया। फिर सन् 1967 में दशहरे के दिन श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में आ गए। तब से आज तक यहीं हैं। यहाँ भी अध्यापन कार्य छात्रावास के छात्रों को कराया। इसके अतिरिक्त आज भी आप श्री वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। यदि ऐसा कहा जाए कि डॉ. भारिल्ल का संपूर्ण जीवन एक अध्यापकीय जीवन रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

### 2.1.2.2. व्यापार

डॉ. भारिल्ल एवं इनके अग्रज ने नौकरी की पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए क्रमशः पारोली (भीलवाड़ा) व मुरैना में नौकरी छोड़कर बबीना कैन्ट (झांसी) में जनवरी, 1955 में व्यापार प्रारंभ कर दिया। यहाँ ये पुस्तकें एवं जनरल मर्चेन्ट की दुकान चलाते थे। यहाँ व्यापार ठीक चल रहा था। सन् 1956 में ही इन्हें 'आत्मधर्म' के दो विशेषांक 'क्रमबद्धपर्याय' पर स्वामीजी के तेरह प्रवचनों के प्राप्त हुए, जिन्हें पढ़कर इनके हृदय में एक नई क्रांति उत्पन्न हुई। श्री कानजी स्वामी के प्रति श्रद्धा भी उत्पन्न हुई।

व्यापार के प्रति रुचि कम हुई। सन् 1957 में जब श्री कानजीस्वामी शिखरजी और बुन्देलखण्ड की यात्रा पर निकले थे; तब कोटा में जाकर इन्होंने उनके प्रवचन सुने, जिनका अद्भुत प्रभाव इन दोनों पर पड़ा। तब से अध्यात्म की रुचि और बढ़ गई। व्यापार में रुचि कम हो गई। परिणामस्वरूप मार्च, 1957 में व्यापार बंद कर दिया। इसतरह 14 माह ही व्यापार कार्य किया। 31 मार्च, सन् 1957 को अशोकनगर आ गए। जहाँ अध्ययन-अध्यापन का क्रम पूर्ववत् जारी हो गया।

### 2.1.2.3. वक्ता

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने 17 वर्ष की अल्पायु में ही समाज के समक्ष व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया था। सर्वप्रथम 1952 में 'दशलक्षण पर्व' के अवसर पर धौलपुर (राजस्थान) में प्रवचन किए। 20-21 वर्ष की अल्प उम्र में ही लोकप्रिय व्याख्याता हो गये थे, तथापि अध्यात्मरस से शून्य थे। इस संबंध में डॉ. भारिल्ल ने स्वयं लिखा है कि "क्रमबद्धपर्याय की बात समझ में आने के पूर्व हमने आचार्य कुन्दकुन्द का नाम तो सुन रखा था, पर उनका कोई ग्रंथ पढ़ने की बात तो बहुत दूर, देखा भी नहीं था। यद्यपि इस समय कोई उम्र भी नहीं थी, 20-21 वर्ष के ही थे, पर शास्त्री, न्यायतीर्थ और साहित्यरत्न तो हो ही गये थे। पंडित कहलाते थे, व्याख्यान भी खूब देते थे, लोकप्रिय व्याख्याता थे, पर जिनधर्म के मर्म से अपरिचित ही थे।"<sup>1</sup>

"जब सन् 1957 में सर्वप्रथम स्वामीजी के संपर्क में आया। मैं कोटा उनके साथ गया। उनका वहाँ तीन दिन का कार्यक्रम था। उनके प्रवचनों का लाभ लेने के लिए मैं भी वहाँ तीन-चार दिन रहा। वहाँ की विशाल सभा में उनके समक्ष मेरा भी 15 मिनट का व्याख्यान हुआ, जिसमें मैंने अनन्तानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ की व्याख्या की थी, जिसकी बाद में बहुत सराहना की गई। स्वामीजी ने भी प्रसन्नता व्यक्त की थी।"<sup>2</sup>

इन कथनों से स्पष्ट होता है कि ये एक प्रतिभा सम्पन्न और प्रभावशाली वक्ता थे। इन्होंने अपनी छाप मात्र 15 मिनट के व्याख्यान में ही छोड़ दी।

क्षयोपशम अच्छा था, अतः किसी बात को सरलता से स्पष्ट करना तथा शास्त्रों को समझना सरल था। इस संबंध में ये लिखते हैं कि ह्व “आरंभ से ही क्षयोपशम विशेष था ही, सो कोई भी व्याख्यान बिना चैलेंज के पूरा नहीं होता था। समझ में शास्त्रों का मर्म तो नहीं, पर मान तो आ ही गया था। यदि क्रमबद्धपर्याय की बात ध्यान में न आती तो न जाने क्या होता ? होता क्या सब कुछ ऐसे ही चलता रहता और बहुमूल्य मानव भव यों ही चला जाता; पर जाता कैसे जबकि हमारी पर्याय के क्रम में “क्रमबद्धपर्याय’ की बात समझ में आने का काल पक गया था।”<sup>3</sup>

आपके अध्ययनकाल की पूर्णता से (मुरेना विद्यालय से) लेकर आज तक प्रतिदिन व्याख्यान कहीं न कहीं अवश्य होता ही रहा है। आप महुआ रहे, पारोली रहे, अशोकनगर में रहे, इंदौर में रहे या जहाँ भी रहे वहाँ आपका प्रवचन प्रतिदिन होता ही था। जब से टोडरमल स्मारक भवन में आए हैं, तब से तो व्याख्यान का क्रम बहुत ही बढ़ गया। जयपुर के अतिरिक्त भारत के विविध स्थानों पर वर्षभर ही कहीं न कहीं आपका कार्यक्रम रहता है। जहाँ दिन में दो व्याख्यान तो अनिवार्य रूप से होते ही हैं। सन् 1984 से विविध देशों में ग्रीष्मकाल में दो माह के लिए धर्म प्रचारार्थ जाते हैं, जहाँ आपके व्याख्यान होते ही हैं। प्रथमबार में ही वहाँ के लोगों पर इनके व्याख्यानों का बहुत प्रभाव पड़ा। जिसके कारण वहाँ की समाज ने इन्हें ‘जैनरत्न’<sup>4</sup> की उपाधि से अलंकृत किया था।

इसप्रकार कह सकते हैं कि डॉ. भारिल्ल एक सफल वक्ता हैं। जिनका प्रभाव बालक से लेकर वृद्ध सब पर पड़ता है। नये श्रोताओं के लिए तो डॉ. भारिल्ल का व्याख्यान भी प्रभावी होता है, जिसे सुनकर वे धर्ममार्ग में अग्रसर होते हैं।

#### 2.1.2.4. धर्म प्रचारक

डॉ. भारिल्ल ने जगह-जगह जाकर धर्म का प्रचार किया है। जब से आप टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में आये हैं, तब से तो धर्म प्रचार का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। जब सन् 1967 में स्मारक में आए। उसके बाद प्रारंभ के कुछ वर्षों तक निरन्तर श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर तेरापंथियान, जयपुर में प्रातः और श्री टोडरमल स्मारक भवन में सायंकाल प्रवचन होता रहा। जिसमें काफी संख्या में तत्त्वप्रेमी समाज लाभ लेता रहा है। फिर स्मारक में ही दोनों समय प्रवचन प्रारंभ हो गए।

पण्डित नेमीचन्दजी पाटनी टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियों के परिचय में सन् 1973 में लिखते हैं ह्व

“बाहर से इनके (डॉ. भारिल्ल) प्रवचनार्थ बहुत आमंत्रण आते हैं, पर समयाभाव के कारण बहुत कम जा पाते हैं। फिर भी बंबई, दिल्ली, कलकत्ता, गोहाटी, अहमदाबाद, उज्जैन, नागपुर, सोलापुर, कोल्हापुर, इंदौर, अशोकनगर, ललितपुर, शिरपुर, अलवर, आगरा, खण्डवा, कुचामन, अशोकनगर, महावीरजी, गुना, सीकर आदि कई स्थानों पर पंडितजी गये हैं और इनके द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई है।”<sup>5</sup>

यह स्थिति सन् 1973 अर्थात् आज से 27 वर्ष पूर्व की है। उसके बाद स्मारक का कार्य बढ़ता ही गया है। डॉ. भारिल्ल के सहयोगियों की संख्या भी कार्य बढ़ने के साथ बढ़ती गई। अतः स्मारक के कार्यभार से कुछ हल्के होते गए तो बाहर विविध क्षेत्रों में प्रवचन का क्रम बढ़ता गया। आज यह स्थिति है कि ये कठिनाई से वर्षभर में कुल मिलाकर दो-तीन माह ही जयपुर रहते हैं। शेष समय तो पूरे देश में कहीं न कहीं निमंत्रण पर धर्मप्रचार में ही रहते हैं। अब तक भारत के हजारों स्थानों पर जाकर तत्त्वप्रचार किया है। यह तत्त्वप्रचार धर्म के दशलक्षण पर्व, अष्टाह्निका पर्व, शिविर, विधान, पंचकल्याणक अन्य धार्मिक कार्यक्रमों पर जाकर एवं धर्मचक्र, ज्ञानचक्र, शाकाहार रथ आदि के माध्यम से

किया है। वहीं सन् 1984 से प्रतिवर्ष दो माह विदेश के विविध देशों में जाकर धर्मप्रचार कर रहे हैं। अब तक इन्होंने, चीन, अमरीका, कनाडा, जिनेवा, इंग्लैण्ड, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, जापान, कीनिया, अफ्रीका, दुबई आदि देशों के विविध नगरों में जाकर वहाँ धर्म प्रभावना की है और कर रहे हैं।

देश-विदेश में अनेक स्थानों पर तो ये कई बार गए हैं तथा प्रतिवर्ष कई नये स्थानों पर आगमन होता है। इसप्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल द्वारा वर्तमान समय में महती धर्म प्रभावना हुई है एवं हो रही है। अतः ये एक सच्चे धर्म प्रचारक कहे जा सकते हैं।

#### 2.1.2.5. लेखन

डॉ. भारिल्ल ने अपना लेखन 18 वर्ष की उम्र में प्रारंभ कर दिया था। सर्वप्रथम एक पूजन 'देव-शास्त्र-गुरु' सन् 1957 में प्रकाशित हुई। जैन जगत में डॉ. भारिल्ल ने अब तक छोटी-बड़ी 62 पुस्तकें लिखी हैं। अनेक ग्रंथों का संपादन किया है। अबतक आठ भाषाओं में प्रकाशित इनकी कृतियाँ 37 लाख से भी अधिक की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी हैं। अब तक आपने पाँच हजार से अधिक पृष्ठों का लेखन कार्य किया है और इससे दुगुना अर्थात् दस हजार पृष्ठों का संपादन किया है। आपने लेखक के रूप में भी अच्छा स्थान बनाया है। डॉ. भारिल्ल ने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। उपन्यास, कहानी, काव्य, निबंध, यात्रावृत्त, साक्षात्कार आदि विधाओं में इनकी कलम चली है। पूर्वोल्लिखित कृतियों के अलावा इनके अनेक फुटकर निबंध व काव्य जो विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

#### 2.1.2.6. पत्रिका संपादक

डॉ. भारिल्ल की लेखन क्षमता को देखकर सोनगढ़ से प्रकाशित होनेवाले आत्मधर्म (पत्रिका-मासिक) जो कई वर्षों से निकल रहा था; उसके संपादन का भार आपको जून-जुलाई सन् 1976 से दिया गया।

जिसका संपादन जुलाई सन् 1984 तक निरन्तर करते रहे। इसके बाद सन् 1984 अगस्त से 'आत्मधर्म' सोनगढ़ से पूर्ववत् प्रकाशित होने लगा पर संपादन कार्य आपने नहीं किया। उसके ही स्थान पर 'वीतराग-विज्ञान' पत्रिका का प्रारंभ जयपुर टोडरमल स्मारक भवन से हुआ और इसका संपादन कार्य प्रथम संस्करण के प्रथम अंक से लेकर आजतक आप ही कर रहे हैं।

सर्वाधिक बिक्री वाले जैन आध्यात्मिक मासिक 'वीतराग-विज्ञान' हिन्दी तथा मराठी के आप संपादक हैं। आपने इन पत्रिकाओं के विशेषांकों का भी संपादन कार्य बखूबी निभाया है तथा कोई अंक किसी माह का प्रकाशित न हुआ हो वह ऐसा कभी नहीं हुआ। यह आपके संपादन की उपलब्धि रही है।

#### 2.1.2.7. निर्देशक

'टोडरमल स्मारक भवन' गुलाबीनगरी, जयपुर के बापूनगर में स्थित है। इस स्मारक में ट्रस्ट बना हुआ है। इसके तो आप निर्देशक हैं ही साथ ही यहाँ की समस्त गतिविधियों के भी निर्देशक हैं। यहाँ से होनेवाला हर कार्य इनके मार्गदर्शन में ही होता है। जैसे वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड, साहित्य बिक्री विभाग, टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय, छात्रावास, भोजनालय, जिन मंदिर की स्थापना (त्रिमूर्ति के रूप में) अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना, शिविरों का संचालन, प्रशिक्षण शिविर आदि इन्हीं की देन है।

#### 2.1.2.8. छात्रावास की स्थापना

जब डॉ. भारिल्ल सन् 1967 में जयपुर आये। उस समय स्मारक भवन एक तरह से खाली ही था। अतः इन्होंने इस भवन के सदुपयोग हेतु तथा जैन छात्रों के सहयोग हेतु 2 जुलाई, 1968 को छात्रावास की स्थापना की। जिसमें 32 विद्यार्थी रहते थे। ये छात्र विश्वविद्यालय के पढ़नेवाले थे। यहाँ उन्हें जैनधर्म का शिक्षण भी एक घंटा करना पड़ता था। जैनधर्म का अध्यापन कार्य उन्हें डॉ. भारिल्ल ही कराते थे। भोजन

व्यवस्था छात्र स्वयं ही करते थे। आवास व्यवस्था निःशुल्क थी। छात्रावास में रहनेवाले छात्रों की उद्वण्डता देखी तो मैनेजमेण्ट व इनका यह विचार हुआ कि यदि हमें छात्रों को कोई आर्थिक सहयोग करना है तो वैसे ही कर दें। यह छात्रावास बंद कर दिया जाए। यह निर्णय होने पर सन् 1970 में यह छात्रावास सदा के लिए बंद हो गया।

### 2.1.2.9. जैन बाल साहित्य का निर्माण

डॉ. भारिल्ल के मन में हमेशा ही यह प्रबल भावना रही है कि बालकों में धर्म के संस्कार सबलरूप से पड़ जाने चाहिए। अतः वे इस संबंध में हमेशा जागरूक रहे। इन्होंने अशोकनगर में रहकर अध्यापन कार्य करके भी पाठशाला खोली और पढ़ाने का कार्य किया। जब स्मारक (जयपुर) में आ गए तो इनके मन में 'आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ न कुछ होना चाहिए' वह यह बात सताती रहती थी। इन्होंने देखा कि वर्तमान में स्वामीजी के पुण्य-प्रताप से समाज में धर्म के प्रति सहज जागृति हुई है। बड़े लोगों के लिए धार्मिक खुराक शिविरों के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से, पत्रिका के माध्यम से, विद्वानों के माध्यम से मिल जाती है; पर बालकों को नहीं। बालकों में धर्म संस्कार पड़ें वह इस हेतु आपने बाल साहित्य का निर्माण किया। मनोवैज्ञानिक स्थिति को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक पद्धति से सरल, सुबोध भाषा में बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3, वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 1, 2, 3 और तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1, 2 का निर्माण किया।

### 2.1.2.10. वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना

जब बाल साहित्य तैयार हो गया तो जगह-जगह वीतराग-विज्ञान पाठशाला खोलने का उपक्रम किया गया, जो 1968 ईस्वी से प्रारंभ हुआ। आज तक संपूर्ण देश-विदेश में लगभग 400 वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ चल रही हैं तथा प्रतिवर्ष कहीं न कहीं नवीन वीतराग-

विज्ञान पाठशालाएँ खुलती रहती हैं। इन पाठशालाओं में 23,000 छात्र-छात्राएँ अध्ययन कर रहे हैं।

इन पाठशालाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जो इसप्रकार हैं वह

“(1) वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा स्वीकृत बालबोध, प्रवेशिका, विशारद परीक्षाओं का पाठ्यक्रम एवं अन्य फुटकर ग्रंथों की शिक्षा।

(2) प्रशिक्षण-शिविरों में प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा रोचक शैली में अध्यापन।

(3) नन्हें-मुन्ने बालकों पर धार्मिक पढ़ाई के गृहकार्य का कम से कम बोझ।

(4) समिति द्वारा नियुक्त निरीक्षकों द्वारा समय-समय पर पाठशालाओं का निरीक्षण एवं उचित मार्गदर्शन।

(5) परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करनेवाले छात्रों को विविध माध्यमों द्वारा विशेष प्रोत्साहन।

(6) अनुदान-इच्छुक प्रत्येक पाठशाला को 100 रुपये मासिक की अनुदान व्यवस्था। इस समय मात्र 168 पाठशालाएँ अनुदान लेती हैं, अन्य नहीं लेती हैं।”<sup>6</sup>

### 2.1.2.11. श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की स्थापना

उपर्युक्त पाठ्य-पुस्तकों की पाठशालाओं में पढ़ाई का कार्य प्रारंभ हो गया। तब इनकी सुनियोजित तरीके से परीक्षा लेने की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप सन् 1969 में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की स्थापना जयपुर टोडरमल स्मारक भवन में ही की गई। इस परीक्षा बोर्ड में 1969 में मात्र 571 छात्र-छात्राओं ने परीक्षाएँ दी थीं। जबकि सन् 2004 तक 4,01,720 छात्र-छात्राओं ने विविध विषयों की परीक्षाएँ दी हैं।

परीक्षा बोर्ड के संचालन हेतु एक कार्यकारिणी समिति बनाई गई, जिसके रजिस्ट्रार डॉ. भारिल्ल स्वयं हैं। इस समिति में डॉ. भारिल्ल समेत 22 सदस्य हैं। इस कार्यकारिणी समिति के अंतर्गत तीन समितियाँ और हैं (1) व्यवस्था समिति (2) प्रश्न-पत्र निर्माण समिति (3) भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला व्यवस्था समिति।

यह परीक्षा बोर्ड प्रतिवर्ष दो बार परीक्षाएँ आयोजित करता है। उन विषयों की पाठ्यक्रम पूर्ण की अवधि छह माह हैं। यह परीक्षा बोर्ड प्रतिवर्ष बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3, वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 1, 2, 3, तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1, 2, बालपोथी भाग 1, 2, छहढाला, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, द्रव्य संग्रह, पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय, तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक, परमभावप्रकाशक नयचक्र, क्रमबद्धपर्याय, समयसार, गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, समयसार नाटक, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका आदि ग्रंथों की परीक्षा लेता है। यही परीक्षा बोर्ड सफल होने वाले छात्र-छात्राओं को प्रमाण-पत्र प्रदान करता है।

यह परीक्षा बोर्ड मात्र परीक्षा की व्यवस्था ही नहीं करता है, अपितु समस्त पाठशालाओं के निरीक्षण की व्यवस्था भी करता है। जो पाठशालाएँ अनुदान प्राप्त करना चाहती हैं, उन पाठशालाओं को प्रतिमाह 25 छात्रों पर 100 रुपये अनुदान दिया जाता है। 400 पाठशालाओं में मात्र 168 पाठशालाएँ ही अनुदान प्राप्त कर रही हैं। शेष पाठशालाएँ बिना अनुदान पर चल रही हैं। इन पाठशालाओं में कुछ अध्यापक तो निःशुल्क रूप से अध्यापन कार्य करा रहे हैं, तो कहीं समाज इन्हें मासिक वेतन देती है। इसप्रकार डॉ. भारिल्ल द्वारा स्थापित यह परीक्षा बोर्ड एक महत्त्वपूर्ण कार्य निभा रहा है।

### 2.1.2.12. प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू हो जाने और उत्तर पुस्तिकाओं के अवलोकन करने पर, विद्यालयों में (पाठशाला) निरीक्षण करने पर डॉ. भारिल्ल ने अनुभव किया कि अध्यापन शैली में पर्याप्त सुधार हुए बिना इन पुस्तकों को तैयार करने का उद्देश्य सफल नहीं हो सकेगा; क्योंकि वे अध्यापक वही पुरानी रटन विद्या से पढ़ा रहे थे; जबकि आज पढ़ाने की विधियों में बहुत परिवर्तन हो गया था। बालकों के मनोविज्ञान को पहिचानना बहुत जरूरी था। धार्मिक अध्यापन में जो अध्यापन पूर्व में चल रहा था; उसके कारण छात्रों को पढ़ने में आनंद नहीं आता था। इन्हीं बातों ने डॉ. भारिल्ल को झकझोर दिया और सुंदर प्रशिक्षण की योजना बनाने के लिए बाध्य कर दिया। इसी बाध्यता ने सैद्धान्तिक और प्रायोगिक प्रक्रिया में अध्यापक बंधुओं को प्रशिक्षित करने के लिए बी.एड. की तरह प्रशिक्षण देने के लिए ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय में 20 दिवसीय प्रशिक्षण शिविर लगाये जाने की योजना बनवा दी।

सर्वप्रथम 1969 ईस्वी में उक्त योजना को मूर्त रूप दिया गया। जयपुर में पहला प्रशिक्षण शिविर प्रारंभ हुआ। ये ही 20 दिवसीय शिविर विगत कुछ वर्षों से 18 दिवसीय के रूप में लगाये जा रहे हैं। अब तक कुल 39 प्रशिक्षण शिविर लग चुके हैं। अब तक बालबोध में कुल 6172 से अधिक तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण में 1382 से अधिक कुल 7554 से अधिक अध्यापक प्रशिक्षित हो चुके हैं। सर्वप्रथम सन् 1969 में जयपुर में, 70 में विदिशा, 71 में जयपुर, 72 में विदिशा, 73 में आगरा, 73 के शीतकाल में मलकापुर, 74 में छिन्दवाड़ा, 75 में कोटा, 75 के शीतकाल में सोलापुर, 76 में ललितपुर, 77 में प्रांतिज, 78 में उदयपुर, 79 में अजमेर, 80 में वाशिम, 81 में फिरोजाबाद, 82 में इन्दौर, 83 में भीलवाड़ा, 84 में भिण्ड, 85 में सागर, 86 में अहमदाबाद, 87

में बम्बई (मलाड), 88 में मवाना, 89 में देवलाली, 90 में राजकोट, 91 में इन्दौर, 92 में भीण्डर, 93 में भोपाल, 94 में बीना, 95 में देवलाली, 96 में जयपुर, 97 में जयसिंगपुर, 98 में देवलाली, 99 में इन्दौर, 2000 में देवलाली में लगे। यह शोधकार्य पूर्ण के पश्चात् 2001 में बीना, 2002 में देवलाली तथा 2003 में जयपुर 2004 में देवलाली तथा 2005 में कोल्हापुर में लगे।

उक्त शिविरों की व्यापक माँग देखकर शीतकाल में भी शिविर लगाने के प्रयास हुए, परंतु वे ज्यादा सफल नहीं हो पाए; क्योंकि इतने दिनों का अवकाश कर्मचारियों को शीतकाल में होता नहीं है तथा कॉलेज के छात्रों, स्कूल के छात्रों को भी नहीं होता है। व्यापारी वर्ग के भी व्यापार का मौसम होता है। अतः ग्रीष्मावकाश में ही शिविर सफल रहे हैं। अतः सन् 1975 के बाद हमेशा ग्रीष्मावकाश में ही शिविर लगे। मलकापुर और सोलापुर के शिविर ही शीतकाल में लगे, शेष शिविर ग्रीष्मकाल में ही लगे हैं। इसप्रकार अब तक 39 प्रशिक्षण शिविर लगा चुके हैं।

इन शिविरों में सैद्धान्तिक प्रशिक्षण (पाठ्यवस्तु का) पण्डित रतनचन्द भारिल्ल देते हैं तथा सिद्धान्त के प्रयोग हेतु प्रायोगिक प्रशिक्षण डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल देते हैं। पण्डित अभयकुमार शास्त्री भी प्रवेशिका का प्रशिक्षण देते हैं। मध्यान्तर में इसी प्रशिक्षण की अभ्यास कक्षाएँ प्रशिक्षण प्राप्त विद्वान अध्यापकों द्वारा ली जाती हैं।

इस प्रशिक्षण में पाठ योजनाएँ, पाठ निर्देश बनवाए जाते हैं। अध्यापन का विधिवत् प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें दो प्रकार की परीक्षाएँ ली जाती हैं ह्व सैद्धान्तिक और प्रायोगिक, सफल प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं।

उक्त प्रशिक्षण शिविरों की एक विशेषता यह भी रही है कि शिविर के प्रारंभ में ही प्रथम दिन प्री बी.एड.की तरह सैद्धान्तिक पक्ष की प्रवेश

परीक्षा भी आयोजित की जाती है। जो उसमें सफल होते हैं, उन्हें ही प्रशिक्षण दिया जाता है।

शिविर में भोजन व आवास व्यवस्था निःशुल्क होती है। जहाँ ये प्रशिक्षण की कक्षाएँ लगती हैं, वहीं बालकों के लिए तथा प्रौढ़ों के लिए भी कक्षाएँ चलती हैं। प्रवचन, पूजन, सांस्कृतिक कार्यक्रम तो प्रतिदिन होते ही हैं।

इन प्रशिक्षण शिविरों में मैंने (शोधकर्ता) 1985 में सागर, 1986 में अहमदाबाद में प्रशिक्षण लिया है; 78 में उदयपुर में, 79 में अजमेर में बाल कक्षा में लाभ प्राप्त किया है और 1987 में मुम्बई, 88 में मवाना, 92 में भीण्डर में अभ्यास कक्षाएँ लेने का एवं सन् 2000 में देवलाली में, 2001 में बीना में मुझे प्रवचन देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इसप्रकार डॉ. भारिल्ल द्वारा अंकुरित यह पौधा निरन्तर पल्लवित व पुष्पित हो रहा है।

### 2.1.2.13. शिक्षण शिविरों की स्थापना

प्रशिक्षण शिविर की भांति शिक्षण शिविरों का क्रम भी डॉ. भारिल्ल ने प्रारंभ किया, प्रतिवर्ष जयपुर में अगस्त एवं अक्टूबर माह में 10 दिवसीय शिक्षण शिविर का आयोजन होता है; जिसमें डॉ. भारिल्ल के दोनों समय प्रवचन होते हैं तथा दोपहर में प्रश्नोत्तर होते हैं, जिसमें डॉ. भारिल्ल समागत मुमुक्षुओं की शंकाओं का समाधान करते हैं। तत्त्वगोष्ठी का भी आयोजन होता है। अब तक 32 शिक्षण शिविर लग चुके हैं। इस शिक्षण शिविर में लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, नयचक्र, निमित्त-उपादान, गुणस्थान प्रवेशिका की प्रौढ़ कक्षाएँ चलती हैं तथा बच्चों के लिए भी सायंकाल एक कक्षा चलती है।

इस शिक्षण शिविर के अतिरिक्त भी वर्ष भर कहीं न कहीं अनेक शिक्षण शिविर चलते हैं। जिसमें डॉ. भारिल्ल प्रमुख वक्ता होते हैं।

इसीप्रकार प्रतिवर्ष दिसम्बर माह में 25 दिसम्बर से 31 दिसम्बर तक युवा फैडरेशन का वार्षिक अधिवेशन एवं आध्यात्मिक शिविर लगाया जाता है। जिसमें डॉ. भारिल्ल का ही नेतृत्व व मार्गदर्शन होता है एवं प्रमुख वक्ता भी ये ही होते हैं। अब तक 27 शिविरों का आयोजन कुराबड, जयपुर, बेलगांव, फिरोजाबाद, देवलाली, मुम्बई आदि विविध स्थानों पर हो चुका है। वर्तमान में तो शिक्षण-शिविरों की बाढ़-सी आ चुकी है।

#### 2.1.2.14. धर्मचक्र/ज्ञानचक्र/शाकाहार रथ का प्रवर्तन

भगवान महावीर के 2500 सौं वे निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर संपूर्ण देश में धर्मचक्र प्रवर्तन की योजना बनाई गई थी। उस धर्मचक्र के माध्यम से भगवान महावीर के संदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य करना था। इस धर्मचक्र में डॉ. भारिल्ल तथा पण्डित बाबूभाई मेहता फतेहपुर (मोटा) दोनों विद्वानों ने संपूर्ण देश में जगह-जगह जाकर महावीर वाणी को जन-जन तक पहुँचाया। इस धर्मचक्र का सभी जगह अत्यधिक भावभीना स्वागत हुआ। इन दोनों विद्वानों के अतिरिक्त जगह-जगह अन्य विद्वान भी साथ रहे। इस धर्मचक्र के साथ अनेक गाड़ियाँ साथ चलती थीं। लोगों के मन में अत्यधिक उत्साह पैदा हुआ। इस धर्मचक्र का मुख्य दारोमदार डॉ. भारिल्ल और पण्डित बाबूभाई मेहता पर ही था। इन दोनों के नेतृत्व में संपूर्ण देश में धर्म का शंखनाद हुआ था। इसीतरह ज्ञानचक्र, शाकाहार रथ का भी प्रवर्तन कर धर्मप्रचार की गंगा बहाई।

#### 2.1.2.15. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की स्थापना

डॉ. भारिल्ल ने प्रारंभ में जो छात्रावास खोला था, वह सन् 1970 में बंद हो गया था; पर डॉ. भारिल्ल के मन में निरन्तर यह खलता रहता था। अतः इनके मस्तिष्क में एक योजना आई कि इस भवन का सदुपयोग हो तथा हम जैन विद्वान तैयार करें। इस हेतु पूरी रूपरेखा बनाकर कमेटी

को प्रस्तुत की। यह योजना सबने स्वीकार्य कर ली। टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय की स्थापना होना तय हुआ। प्रारंभ में 13 छात्रों को प्रवेश देना तय हुआ। इसके लिए एक विज्ञप्ति जैनपथप्रदर्शक 16 मार्च, 1977 के अंक में प्रकाशित हुई जो इसप्रकार थी ह

“जुलाई 1977 में टोडरमल स्मारक भवन में ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि जिसमें आत्मार्थी छात्र, डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर जैनधर्म का सैद्धान्तिक अध्ययन चारों अनुयोगों के माध्यम से कर सकें। साथ ही आवश्यक संस्कृत, व्याकरण, न्याय आदि विषयों का भी उनको ज्ञान हो सके तथा उन्हें राजस्थान विश्वविद्यालय से शास्त्री व आचार्य की डिग्री प्राप्त होगी। आवास, भोजन, निःशुल्क होगा। शास्त्री कोर्स करने पर 300/- तथा आचार्य कोर्स करने पर 500/- की मासिक सर्विस की गारंटी दी जायेगी। उसे 5 वर्ष का बांड भरकर देना होगा कि वे 5 वर्ष तक उक्त वेतन पर जहाँ संस्था कहे वहाँ सेवा करने को तत्पर रहेंगे।

प्रतिमाह विविध विद्वान आकर स्मारक में रहेंगे तथा अध्यापन कार्य करायेंगे, जिसमें पण्डित खीमचन्दभाई, पण्डित फूलचन्दजी, पण्डित नेमीचंदजी पाटनी, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल आदि। छात्रों को एक-दो बार सोनगढ़ भी ले जाया जायेगा जहाँ स्वामीजी का सान्निध्य प्राप्त होगा।”

उक्त विज्ञप्ति के अनुसार ही प्रारंभ में टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय चलता रहा। बाद में विद्वानों का क्रम अवश्य बंद हो गया; क्योंकि अब स्मारक से तैयार विद्वानों द्वारा उनकी कक्षाएँ ली जाने लगी थीं। अन्य कतिपय कारण और भी थे।

प्रारंभ में हुकमचन्द भारिल्ल ने प्राचार्य के रूप में कार्य संभाला तथा कक्षाएँ लेते रहे। न्याय ग्रंथों की कक्षाएँ आप लेते थे तथा संस्कृत व्याकरण हेतु परमेष्ठीदासजी मिश्र को रखा, जो लघुसिद्धान्त कौमुदी पढ़ाते थे। जब डॉ. भारिल्ल पर कार्यभार बढ़ता गया तो बाबूभाई ने पण्डित रतनचन्दजी

भारिल्ल को प्राचार्य पद हेतु अनुरोध किया। इन्होंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। “रतनचन्द भारिल्ल डॉ. भारिल्ल के बड़े भ्राता हैं और ये विदिशा में शासकीय सेवा में थे। उस नौकरी को छोड़कर सन् 1979 में महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में आ गए।”<sup>8</sup>

इस सिद्धान्त महाविद्यालय से 360 विद्वान बनकर निकल चुके हैं तथा 171 छात्र अभी अध्ययनरत हैं। प्रतिवर्ष 13 विद्वान निकलते थे। अब उसके स्थान पर 35 विद्वान प्रतिवर्ष तैयार हो रहे हैं।

समाज के प्रसिद्ध विद्वान सिद्धान्ताचार्य पण्डित श्री कैलाशचन्दजी शास्त्री वाराणसी ने कहा था ह

“यहाँ के छात्रों को देखा, उनसे वार्तालाप किया। सब छात्र किसी आर्थिक प्रलोभन से नहीं आये हैं और विद्वान बनकर समाजसेवा की भावना से आये हैं, सबमें उत्तम भावना है, पढ़ने के प्रति अभिरुचि है। व्यवस्था सब उत्तम है। पण्डित हुकमचन्दजी भारिल्ल का प्रयत्न अभिनन्दनीय है। हम शुभकामना करते हैं कि यहाँ के छात्र विद्वत्परम्परा को अनुरूप रखने में सहायक होंगे।”<sup>9</sup>

इस महाविद्यालय की स्थापना ने समाज में एक नई क्रान्ति उत्पन्न की। जगह-जगह महाविद्यालय से निकले हुए छात्रों द्वारा शास्त्रसभाएँ, पाठशालाएँ संचालित हो रही हैं तथा विविध धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन किया जा रहा है। डॉ. भारिल्ल द्वारा लगाया गया यह पौधा समाज के लिए धर्म के क्षेत्र में सर्वाधिक उपयोगी रहा है। इससे डॉ. भारिल्ल की ख्याति में वृद्धि हुई है। समाज को जो चिंता थी कि विद्वान एक के बाद एक खत्म होते जा रहे हैं, आगे क्या होगा? उस चिंता पर विराम लग गया। आज इस महाविद्यालय से जो विद्वान निकल रहे हैं, उनमें कई केन्द्रीय सेवा में, कई राजकीय सेवा में, कई प्रशासनिक सेवा में सेवारत हैं तो कई अपने व्यक्तिगत व्यवसाय में संलग्न हैं। इसके बावजूद वे

सभी समाज में धर्म कार्य में सजग हैं और निःशुल्क धर्म प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहे हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल की यह अनूठी देन है। (शोधकर्ता भी इसी महाविद्यालय का भूतपूर्व छात्र है।)

### 2.1.2.16. पुस्तकालय की स्थापना

अध्ययन व स्वाध्याय के लिए श्री टोडरमल स्मारक भवन में सर्वप्रकार का साहित्य उपलब्ध हो ह इस दिशा में पुस्तकालय की स्थापना की। जिसमें अब तक 3750 ग्रंथों का संग्रह किया जा चुका है। अब इसके लिए एक विशेष भवन भी तैयार हो गया है, साहित्य की सुरक्षा हेतु विशेष अलमारियाँ बनवाई गई हैं। इस पुस्तकालय की स्थापना के पीछे डॉ. भारिल्ल का उद्देश्य स्वयं का अध्ययन-अध्यापन मात्र न रहा, अपितु यह रहा कि यहाँ रहनेवाले विद्वानों, छात्रों तथा शोधार्थियों को अध्ययन हेतु सहज साहित्य उपलब्ध हो सके।

### 2.1.2.17. वाचनालय की स्थापना

डॉ. भारिल्ल ने जयपुर स्मारक में वाचनालय की स्थापना भी की। जिसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञान की वृद्धि हेतु धार्मिक, सामाजिक और लौकिक सभी प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ वाचनालय में मँगाई जाती हैं। वर्तमान में इनकी संख्या 30 के लगभग हैं। इस वाचनालय का लाभ महाविद्यालय के छात्र तथा स्मारक में रहनेवाले सभी लोग लेते हैं।

### 2.1.2.18. अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के संरक्षक

आपकी योजनानुसार 1 जनवरी, 1977 को खुरई (मध्यप्रदेश) में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का गठन हुआ। डॉ. भारिल्ल युवा फैडरेशन के संरक्षक व सलाहकार हैं। इस गठन का उद्देश्य युवाओं में तत्त्वरुचि पैदा करना है। युवावर्ग धर्म के मार्ग से हटता जा रहा है। यह सबकी चिंता थी। इस चिंता के समाधान हेतु इस फैडरेशन की स्थापना



की। सर्वप्रथम अधिवेशन 17 मई, 78 को कुराबड में हुआ। इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व पण्डित बाबूभाई ने फैडरेशन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

आज युवा फैडरेशन की संपूर्ण भारत में 378 शाखाएँ हैं। विदेशों में भी इसकी शाखाएँ डॉ. भारिल्ल के यात्रा प्रवास के समय इनके प्रभाव से हो गई हैं। इस फैडरेशन के बल से अनेक धार्मिक कार्यक्रम संपन्न किए जा रहे हैं। युवा फैडरेशन के माध्यम से टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर द्वारा अनेक गतिविधियाँ संचालित की जा रही हैं। विधान, पंचकल्याणक शिविर, बालसंस्कार ग्रुप शिविर, टेप विभाग, पुस्तक प्रकाशक विभाग, अष्टाह्निका पर्व पर विद्वान व्यवस्था, दशलक्षण पर्व पर संपूर्ण देश में स्थान-स्थान से आये आमंत्रणों पर विद्वानों को भेजना आदि अनेक कार्य किए जा रहे हैं। पचास स्थानों पर युवा फैडरेशन के माध्यम से प्रतिष्ठा कार्य करवा चुके हैं। इसमें 66 पंचकल्याणक कानजीस्वामी के प्रभाव में हुए हैं। वे सम्मिलित नहीं हैं। इन पंचकल्याणकों में से आये आमंत्रणों पर डॉ. भारिल्ल प्रमुख वक्ता होते हैं। ये पंचकल्याणक भी डॉ. भारिल्ल द्वारा स्थापित टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के भूतपूर्व व वर्तमान छात्र जो प्रतिष्ठाचार्य के रूप में तैयार किए हैं उनके द्वारा ही कराये जाते हैं। वे ही जगह-जगह जाकर आमंत्रण पर पंचकल्याणक व विधान कार्य संपन्न कराते हैं।

सन् 1988 का वर्ष कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी वर्ष के रूप में मनाया तथा 'कुंदकुंद ज्ञानचक्र' रथ का प्रवर्तन हुआ। इस ज्ञानचक्र में कई स्थानों पर डॉ. भारिल्ल आए और कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी का मंगल उद्घोष किया।

डॉ. भारिल्ल की नीति के अनुसार ही यह ज्ञानचक्र फैडरेशन ने चलाया। 10 मई, 1988 से 22 जून, 1990 तक गुजरात के हिम्मतनगर से प्रारंभ होकर विविध स्थानों पर कुल 252 स्थानों पर भ्रमण किया।

जिसमें गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र राज्यों के विविध स्थान सम्मिलित हैं। इस ज्ञानचक्र के माध्यम से तीन लाख तैंतीस हजार छह सौ तीन रुपये का साहित्य बिका था। ज्ञानचक्र संचालन के ध्रुवफंड में 4,33,147 रुपये आये।

सन् 1991 में शाकाहार-श्रावकाचार वर्ष के रूप में युवा फैडरेशन के द्वारा मनाया गया। इस वर्ष में शाकाहार के प्रचार-प्रसार हेतु शाकाहार-श्रावकाचार रथ की योजना बनाई गई। ज्ञानचक्र की तरह ही शाकाहार रथ की योजना भी डॉ. भारिल्ल के निर्देशन में बनाई गई। यह शाकाहार रथ 23-3-91 इन्दौर (मध्यप्रदेश) से प्रारंभ हुआ। जो 31-5-95 तक चलता रहा। यह रथ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, मुम्बई, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक, दिल्ली आदि राज्यों में कुल 592 स्थानों पर भ्रमण किया। इसके माध्यम से 5,45,533 रुपये का साहित्य विक्रय हुआ तथा ज्ञानचक्र ध्रुवफंड में 2,07,904 रुपये प्राप्त हुए।

युवा फैडरेशन ने टेप विभाग सन् 1986 से प्रारंभ किया। जिसमें विभिन्न विद्वानों के प्रवचनों की 1,98,695 कैसिटों की बिक्री कर चुका है। इसमें शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद, कुन्दकुन्द शतक पद्यानुवाद, बारह भावना, समयसार पद्यानुवाद, समयसार कलश (सभी डॉ. भारिल्ल की कृतियों के ही कैसिट हैं।) तथा कुछ भजन की कैसिट भी सम्मिलित हैं। ये कैसिटें बिना लाभ-हानि के बेची जाती हैं।

युवा फैडरेशन द्वारा 46 पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। जिसकी 7 लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं सन् 1981 से 31 मार्च, 2004 तक कुल बिक्री 37 लाख, 16 हजार 694 रुपये की हुई है।

युवा फैडरेशन ने अब वीडियो फिल्म व सी.डी. कैसिट प्रवचन बनाने का कार्यक्रम ही हाथ में लिया है। जिसमें विद्वानों के प्रवचन, कोई धार्मिक कथा की कैसिट तैयार की जाती है।

इसप्रकार आज युवा फैडरेशन अपनी अनेक गतिविधियों से अपना जाल फैलाए जा रहा है। इसके वर्तमान अध्यक्ष पण्डित जतीशचंद शास्त्री हैं। जो टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के भूतपूर्व प्रथम बैच के छात्र हैं। इसप्रकार डॉ. भारिल्ल के नीति-निर्देशन में यह फैडरेशन सक्रिय रूप से धार्मिक गतिविधियों के संचालन में अग्रसर है।

### 2.1.2.19. प्रचार विभाग की कल्पना

डॉ. भारिल्ल स्वयं धर्म का प्रचार-प्रसार कर ही रहे थे, परन्तु वे अपने अकेले के प्रचार-प्रसार से संतुष्ट नहीं थे। अतः जो भी विद्वान समाज में है, उन सबको इस कार्य में जोड़ना चाहते थे, क्योंकि एक तो इन विद्वानों की विद्वत्ता का लाभ समाज को मिलेगा ही, वहीं समाज में धर्म प्रचार भी होगा। सोनगढ़ से दशलक्षण पर्व में विद्वानों को भेजने का क्रम चल ही रहा था। वही कार्य स्मारक भवन में डॉ. भारिल्ल ने अपने सहयोगियों के सहयोग से प्रारंभ किया। स्मारक में अब विद्वानों की फैक्ट्री प्रारंभ हो गई थी। इन विद्वानों का सदुपयोग करना भी जरूरी था। अतः इन्होंने प्रचार विभाग की स्थापना की। इसके माध्यम से वर्षभर ही किसी न किसी रूप में धर्म का प्रचार का कार्य होता रहता है। इसके तहत विद्वानों को, दशलक्षण पर्व में, अष्टाह्निका में, विविध शिविरों में, विधानों में, पंचकल्याणकों में भेजा जाता है। साथ ही पाठशालाओं के निरीक्षण के रूप में विद्वानों को निरीक्षण हेतु भेजा जाता है। जो निरंतर विभिन्न पाठशालाओं का निरीक्षण करते हैं तथा वहाँ स्वाध्याय करते हैं। युवा फैडरेशन की शाखा हो तो उसकी जानकारी गतिविधियों की भी लेते हैं एवं जहाँ पाठशाला बंद हो उसे पुनः चालू करवाते हैं, कहीं नवीन पाठशाला खुलवाते हैं, इसीतरह निष्क्रिय फैडरेशन शाखा को सक्रिय करते हैं, जहाँ शाखा नहीं हो वहाँ नवीन शाखा खोलने का प्रयास कर खोलते हैं एवं समाज में धर्म की रुचि पैदा करते हैं। प्रतिवर्ष दशलक्षण पर्व के शुभ अवसर पर सैकड़ों विद्वान देश में विविध स्थानों पर भेजे

जाते। जिसमें 200 विद्वान तो टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय से तैयार हुए विद्वान ही होते हैं।

उक्त सब रणनीति डॉ. भारिल्ल की ही है जो उनके कृतित्व को प्रकाशित करती है।

### 2.1.2.20. साहित्य प्रकाशन विभाग

डॉ. भारिल्ल के आने से पूर्व टोडरमल स्मारक भवन में 'टोडरमल ग्रंथमाला' के नाम से प्रकाशन विभाग बन गया था। 'खानियाँ तत्त्वचर्चा भाग 1,2' 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' प्रकाशित हो चुके थे, पर डॉ. भारिल्ल के आने के बाद इस प्रकाशन विभाग में एक नई जान आई तथा टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ही एक मुख्य प्रकाशक बन गया। अब जो भी साहित्य प्रकाशित होता है वह डॉ. भारिल्ल के निर्देशन में तथा नेमीचंदजी पाटनी की सलाह से ही प्रकाशित होता है। अब तक इस ट्रस्ट से लगभग 300 से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी कुल प्रतियाँ लाखों में हैं। एक-एक कृति के अनेक संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशन विभाग का कार्य निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। प्रकाशन के साथ ही बाइण्डिंग का कार्य भी स्मारक में ही प्रारंभ किया; क्योंकि डॉ. साहब व पाटनीजी की यह इच्छा रहती है कि साहित्य जन-जन तक सस्ती दर पर पहुँचे तथा समय पर साहित्य भी उपलब्ध हो जाए व सही बाइण्डिंग हो, इसलिए बाइण्डिंग कार्य स्मारक में प्रारंभ किया; बाइण्डिंग का कार्य भी प्रकाशन के साथ-साथ बढ़ गया है। जिससे अनेक लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है।

### 2.1.2.21. साहित्य बिक्री विभाग

डॉ. भारिल्ल ने जहाँ साहित्य प्रकाशन विभाग की ओर ध्यान दिया। वहीं इन्होंने बिक्री विभाग की भी स्थापना की। जिसके माध्यम से विविध स्थानों से प्रकाशित ग्रंथ बिक्री में उपलब्ध होते हैं। टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, युवा फैडरेशन, कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, विविध मुमुक्षु

मंडल, सोनगढ़, सोलापुर, दिल्ली आदि विविध स्थानों से विविध प्राचीन आचार्यों तथा विद्वानों के ग्रंथ बिक्री में उपलब्ध हैं। वर्तमान में लगभग हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में मिलाकर लगभग 365 प्रकार के ग्रंथ बिक्री में उपलब्ध हैं। प्रतिवर्ष साहित्य बिक्री विभाग द्वारा लागत से कम मूल्य में लाखों रुपये का साहित्य विक्रय किया जाता है। अब तक चार करोड़ 14 लाख रुपयों से अधिक राशि का साहित्य बिक्री कर एक उपलब्धि प्राप्त की है।

### 2.1.2.22. त्रिमूर्ति जिनमंदिर की स्थापना

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट में एक सीमंधर चैत्यालय था। प्रतिवर्ष दर्शन, पूजन करनेवालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी तथा स्मारक में भी समय-समय पर कुछ न कुछ कार्यक्रम होते रहते थे। उस समय यह स्थान बहुत ही कम पड़ता था, तब एक मूर्ति प्रवचन हॉल में रखकर व्यवस्था करनी पड़ती थी। मंदिर में स्थान की कमी डॉ. भारिल्ल को निरंतर खलती रहती थी। ये बात नेमीचंदजी पाटनी जो स्मारक के मंत्री थे, उनसे कहा करते थे। तब पाटनीजी व डॉ. साहब ने यह मानस बनाया कि क्यों नहीं 'त्रिमूर्ति मंदिर' का निर्माण किया जाए और स्मारक पर्यटक स्थल बन जाए। यह बात सभी ट्रस्टियों के सामने रखी। यह प्रस्ताव सबने सहर्ष स्वीकार कर लिया और त्रिमूर्ति मंदिर की योजना साकार रूप लेकर सामने आई। जो आज एक भव्य जिनालय बन गया। सन् 1990 में दिसंबर माह के अंत में इस जिनालय का भव्य पंचकल्याणक हुआ था। जिसमें 25 हजार से अधिक लोगों ने कड़कड़ाती सर्दियों में भी भाग लिया था। पंचकल्याणक का कार्यक्रम सवाई मानसिंह स्टेडियम में आयोजित किया गया था। विदेशों से भी अनेक लोगों ने भाग लिया था। यह 'त्रिमूर्ति जिनालय' अब दर्शनीय स्थलों में बन गया है। जयपुर आनेवाले कोई भी जैन तीर्थयात्री अब यहाँ दर्शन किए बिना नहीं लौटते हैं। दर्शन कर इसकी प्रशंसा मुख से स्वतः ही फूट पड़ती है।

### 2.1.2.23. प्रवचनकार प्रशिक्षण

दशलक्षण पर्व में विद्वान बाहर जाते थे। उन्हें नयादि का पूर्ण ज्ञान नहीं होने के कारण समाज में कई बार विवाद उत्पन्न हो जाया करते थे। अतः उन्हें दशलक्षण में भेजने के पूर्व प्रशिक्षण देने की योजना डॉ. भारिल्ल तथा नेमीचंदजी पाटनी ने बनाई, "सर्वप्रथम प्रवचनकार प्रशिक्षण 31-8-77 से 13-9-77 को सोनगढ़ में हुआ। जिसमें 95 विद्वानों ने भाग लिया। प्रशिक्षण डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, नेमीचंद पाटनी, रतनचंद भारिल्ल ने दिया।"<sup>10</sup> विशेषरूप से मोक्षमार्ग प्रकाशक व दशलक्षण धर्मों पर प्रशिक्षण हुकमचंद भारिल्ल ने दिया। यह प्रवचनकार प्रशिक्षण कुछ वर्षों तक चला। उसके बाद काल में समाहित हो गया, पर आज भी डॉ. भारिल्ल अपने महाविद्यालय के छात्रों को दशलक्षण पर्व में भेजने के पूर्व आवश्यक बातों का ज्ञान (प्रशिक्षण) समय-समय पर अवश्य देते रहते हैं।

### 2.1.2.24. जैनपथप्रदर्शक का प्रकाशन

'आत्मधर्म' का प्रकाशन विगत कई वर्षों से हो रहा था, पर इस पत्र में स्वामीजी के प्रवचनों, डॉ. भारिल्ल के संपादकीय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रकाशित नहीं किया जाता था, हाँ कुछ समाचार अवश्य दिये जाते थे। अतः विगत वर्षों से एक ऐसे पत्र की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, जिससे देश में विभिन्न भागों में चल रही आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों को पर्याप्त रूप से मुखरित किया जा सके। अतः 'जैनपथप्रदर्शक' पत्र के शुभारंभ की योजना बनाई। "इसका शुभारंभ" 2 अप्रैल, 1977 को विदिशा से किया गया।"<sup>11</sup> जिसका संपादक डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के अग्रज पण्डित रतनचन्द भारिल्ल को बनाया गया। विदिशा से ही प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल इस पत्र के प्रकाशन समिति के सदस्य हैं। इस पत्र के प्रकाशन के सलाहकार, रीति-नीति के निर्धारक आप ही रहे हैं। 3

जुलाई, 1979 तक यह पत्र विदिशा में छपता रहा। जब रतनचंद भारिल्ल जयपुर आ गए तो उनके साथ यह पत्र भी जयपुर में ही प्रकाशित होने लगा। 1 अगस्त 1979 से जयपुर टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से ही यह पत्र प्रकाशित होने लगा। डॉ. भारिल्ल आत्मधर्म मासिक पत्रिका के संपादक थे एवं अन्य अनेक कार्यभार इनके पास थे। अतः यह कार्यभार इन्होंने अग्रज को ही सौंपा। ये इस पत्र के संपादक कभी नहीं रहे, पर वे इसके निर्देशन व मार्गदर्शन में अवश्य सक्रिय रहे हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल का साहित्येतर कृतित्व भी बहुमुखी है। उक्त कृतित्व के अतिरिक्त भी अनेक छोटी-मोटी योजनाएँ आपने बनाईं और उन्हें समय-समय पर लागू किया। वस्तुतः आपका कृतित्व चिरस्मरणीय रहेगा।

### संदर्भ सूची

1. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : अपनी बात, क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-12
2. वही, पृष्ठ-12-13
3. वही, पृष्ठ-13
4. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-4
5. पाटनी नेमीचन्द : प्रकाशकीय, पं. टोडरमल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ-21
6. नियमावली तथा पठनक्रम : वी.विज्ञान परीक्षा बोर्ड, जयपुर, पृष्ठ-16
7. जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक पत्रिका), 1 अगस्त, 1977
8. वही, 1 दिस. 1979
9. सिद्धान्तचार्य : अभिमत हूँ (जैनपथ प्रदर्शक), (पाक्षिक पं. कैलाशचन्दजी पत्रिका), दिस. 1979
10. जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक), 1 अगस्त, 1977
11. वही, 1 अप्रैल, 1977

### तृतीय अध्याय

## डॉ. भारिल्ल की साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन

### 3.1. प्रस्तावना

डॉ. भारिल्ल जितने सफल वक्ता एवं धर्मप्रचारक हैं, उतने ही सिद्धहस्त तथा गंभीर मौलिक साहित्य निर्माता भी हैं। इनकी समस्त कृतियों में अध्यात्म का अमृत छलकता है। ये अध्यात्मरसिक, दार्शनिक विद्वान हैं। इनकी समस्त कृतियों का सामान्य परिचय पूर्व में दिया गया है। यहाँ इनकी साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन है। यह अनुशीलन दो रूपों में किया गया है हूँ (1) प्रकाशित कृतियों का अनुशीलन और (2) अप्रकाशित रचनाओं का अनुशीलन।

### 3.2. डॉ. भारिल्ल की प्रकाशित कृतियों का अनुशीलन

डॉ. भारिल्ल की गद्य-पद्य दोनों प्रकार की कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। अतः यहाँ गद्य और पद्य का अनुशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

#### 3.2.1. गद्य कृतियों का अनुशीलन

##### ● परमभावप्रकाशक नयचक्र

नामकरण हूँ प्रस्तुत कृति के पूर्वार्ध भाग का नाम 'जिनवरस्य नयचक्रम्' रखा गया था। इस संबंध में लेखक ने लिखा है कि एक तो यह नयचक्र जिनेन्द्र भगवान का है, इसमें उनका कुछ भी नहीं है, दूसरा कारण यह है कि आचार्य अमृतचंद्र के श्लोक का 'जिनवरस्य नयचक्रम्' यह अंश उनके मन में अत्यधिक पसंद आने से उक्त नाम रखा; परंतु पूर्वार्ध सहित उत्तरार्ध भाग प्रकाशित करते समय इसका नाम परिवर्तित कर 'परमभाव प्रकाशक नयचक्र' रखा। इस नाम के परिवर्तन का कारण यह रहा कि लोग

इस कृति का नाम संस्कृत में देखकर इसे संस्कृत की कृति जानकर छोड़े देते थे। अतः नाम परिवर्तन किया गया। लोग इसे 'नयचक्र' ही कहकर पुकारते थे। अतः नयचक्र तो नाम रखना तय ही रहा, पर अन्य नयचक्रों से भिन्न दिखाने के लिए कोई विशेषण जोड़ना था तो वह परमभाव जोड़ा गया; क्योंकि लेखक की आध्यात्मिक रुचि के अनुसार इसमें सर्वाधिक प्रकाश परमभाव पर डाला गया है एवं मोक्षमार्ग का मूल 'परमभाव' ही है, अतः इसका नाम 'परमभाव प्रकाशक नयचक्र' रखा गया।

यह कहा जा सकता है कि इस कृति में नयों की चर्चा होने से तथा नयों की चर्चा का मूल प्रयोजन 'परमभाव' की प्राप्ति होने से इसका नाम 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' सार्थक है।

**आधार स्रोत** ह्य प्रस्तुत कृति का आधार स्रोत तत्कालीन परिस्थितियाँ ही हैं। उक्त संदर्भ में डॉ. भारिल्ल स्वयं लिखते हैं कि ह्य

“इसी बीच एक समय ऐसा भी आया जब आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा संचालित आध्यात्मिक क्रान्ति एवं उनका विरोध अपने चरम बिन्दु पर था। विरोध का स्तर बहुत ही नीचे उतर आने से समाज में सर्वत्र उत्तेजना का वातावरण था। गौहाटी, नैनवा और ललितपुर काण्डों ने समाज को झकझोर दिया था।

इन सबके कारणों की जब गहराई से खोज की गई तो अन्य अनेक कारणों के साथ-साथ यह भी प्रतीत हुआ कि समाज और समाज के विद्वानों में नयों के सम्यक्ज्ञान की कमी भी इसमें एक कारण है।

फलस्वरूप सन् 1977 में सोनगढ़ में प्रवचनकार प्रशिक्षण शिविर प्रारंभ हुआ। जिनमें नय प्रकरणों को विस्तार से समझाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।”<sup>1</sup>

इससे प्रभावित होकर नेमीचंदजी पाटनी ने 'आत्मधर्म' के संपादकीय के रूप में नयों पर एक लेखमाला चलाने का अनुरोध किया। सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचंदजी वाराणसी ने भी पत्र लिखकर यही अनुरोध किया।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी ने फरवरी, 1980 में संपन्न बड़ौदा पंचकल्याणक के अवसर पर बीच प्रवचन में जब इन्हें सभा में से उठाकर अपने पास बुलाया, पीठ ठोकी और अपने पास ही बैठा दिया तथा अनेकप्रकार से संबोधित किया, उत्साहित किया तो इनमें यह शक्ति जाग्रत हो गई कि घर आते ही इन्होंने 'जिनवरस्य नयचक्रम्' लिखना प्रारंभ कर दिया और अप्रैल, 1980 ईस्वी के अंक से 'आत्मधर्म' में इसे प्रारंभ कर दिया। अतः कहा जा सकता है कि उक्त प्रेरणा ही इस कृति के निर्माण में निमित्त बनी। लेखक ने इस कृति के निर्माण में जिनागम के 47 ग्रंथों का प्रत्यक्ष रूप से तथा कुछ ग्रंथों का अप्रत्यक्ष रूप से आधार लिया है।

**विषयवस्तु** ह्य 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' की विषयवस्तु निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त है ह्य (1) विषयप्रवेश (2) निश्चय और व्यवहार (3) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक (4) नैगमादि सप्त नय (5) सैंतालीस नय (6) सप्तभंगी (7) अनेकांत और स्याद्वाद।

ग्रंथ के आरंभ में मंगलाचरण लिखा गया है। जिसमें प्रथम से चतुर्थ छंद तक क्रमशः परमपारिणामिक भाव, देव, शास्त्र और गुरु को नमस्कार किया गया है। अंतिम पाँचवें छन्द में निज भावों की निर्मलता के प्रयोजन से नयचक्र लिखने की प्रतिज्ञा की गई है। संपूर्ण मंगलाचरण नयचक्र की छटा से ओतप्रोत है।

प्रथम अध्याय में नयज्ञान की आवश्यकता, नय का सामान्य स्वरूप, प्रामाणिकता, मूलनय कितने, इन पर विचार किया गया है। इसमें कहा गया है “जिनागम के मर्म को समझने के लिए नयों का स्वरूप समझना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है क्योंकि समस्त जिनागम नयों की भाषा में निबद्ध है। नयों को समझे बिना जिनागम का मर्म जान पाना तो बहुत दूर उसमें प्रवेश भी संभव नहीं है।”<sup>2</sup>

**सामान्य स्वरूप** ह्य “स्यात् पद से मुद्रित परमागम रूप श्रुतज्ञान के भेद नय हैं। यद्यपि श्रुतज्ञान एक प्रमाण है। तथापि उसके भेद नय हैं। इसीकारण श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहा गया है। ज्ञाता के अभिप्राय

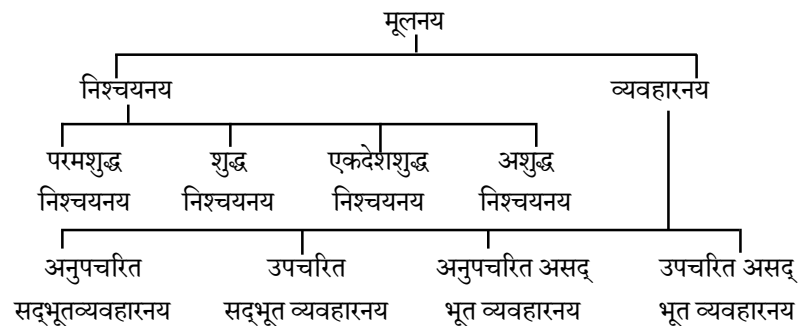
को भी नय कहा जाता है। प्रमाण सर्वग्राही होता है और नय अंशग्राही तथा नय, प्रमाण द्वारा प्रकाशित पदार्थ के एक अंश को अपना विषय बनाता है।”<sup>3</sup>

**प्रामाणिकता** ह नय प्रमाण से भिन्न हैं, तथापि उनकी प्रामाणिकता में कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है। वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन में वे प्रमाण के समान ही प्रमाण (प्रामाणिक) हैं।

**मूलनय** ह “अध्यात्म शैली के मूलनय निश्चय-व्यवहार हैं और आगमशैली के मूलनय द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक हैं अथवा मूलनय निश्चय-व्यवहार ही हैं, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक को तो निश्चय-व्यवहार के हेतु होने से मूलनय कहा गया है।”<sup>4</sup>

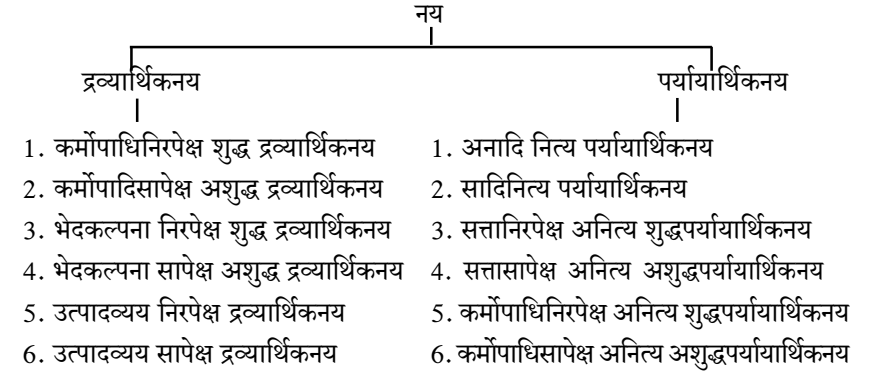
द्वितीय अध्याय में निश्चय-व्यवहार का स्वरूप, विषय-वस्तु तथा इनके भेद-प्रभेद के साथ ही पाठकों के मन में उपस्थित होनेवाले प्रश्नों को उपस्थित कर उनका समाधान प्रस्तुत किया है। तथा पंचाध्यायी के अनुसार व्यवहारनय के भेद-प्रभेद को भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। विविध प्रश्नोत्तर खण्ड में 41 प्रश्नों के उत्तर सप्रमाण उद्धरणों व दृष्टान्तों से प्रस्तुत किए हैं।

यहाँ कहा है कि “निश्चयनय का कार्य पर से भिन्नत्व और निज में अभिन्नत्व स्थापित करना है तथा व्यवहार का कार्य अभेदवस्तु को भेद करके समझाने के साथ-साथ भिन्न-भिन्न वस्तुओं के संयोग व तन्निमित्तक संयोगीभावों का ज्ञान करना है। मूलनयों के भेद इसप्रकार हैं ह



इन सबका विवेचन भी सुंदर रीति से किया गया है।

तृतीय अध्याय में द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयों के स्वरूप और विषय-वस्तु, भेद-प्रभेद एवं प्रश्नोत्तर दिये गये हैं। इसमें कहा गया है कि वस्तु के सामान्य अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान के अंश को द्रव्यार्थिकनय और विशेष अंश को ग्रहण करनेवाले ज्ञान के अंश को पर्यायार्थिकनय कहा जाता है तथा दोनों अंशों को एक साथ ग्रहण करनेवाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। यहाँ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय के भेद-प्रभेद का भी विस्तृत विवेचन किया है। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयों के भेद निम्न हैं ह



चतुर्थ अध्याय में नैगमादि सातनयों का विश्लेषण किया गया है और कहा गया है कि वैसे तो सभी सम्यक् श्रुतज्ञान के अंश होने से ज्ञानात्मक ही होते हैं, तथापि यहाँ विषय-वस्तु की अपेक्षा उनके तीन भेद किये गये हैं। उनमें ज्ञान को जाननेवाले नय ज्ञाननय, शब्दों को जाननेवाले नय शब्दनय एवं अर्थ को जाननेवाले नय अर्थनय कहे जाते हैं।

यहाँ इन नयों का विवेचन अनेक उदाहरणों से किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में द्रव्यनय, पर्यायनय, अस्तित्वनय आदि प्रवचनसार में दिये गये आध्यात्मिक 47 नयों का विश्लेषण किया गया है। इसमें निज भगवान आत्मा का गहराई से परिचय प्राप्त करने के लिए सम्यक्श्रुतज्ञान के अंशरूप 47 नयों द्वारा यहाँ भगवान आत्मा के 47 धर्मों का प्रतिपादन किया गया है।

षष्ठम् अध्याय में सप्तभंगी के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। सप्तभंगी दो प्रकार की है ह्य प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी। यहाँ नय सप्तभंगी का विवेचन किया है तथा यहाँ कहा गया है कि इन (अस्तित्व, नास्तित्व, अस्तित्व-नास्तित्व, अवक्तव्य, अस्तित्व अवक्तव्य, नास्तित्व अवक्तव्य, अस्तित्व-नास्तित्व अवक्तव्य) सप्तभंगों का प्रयोग वस्तुस्वरूप समझने-समझाने में अत्यंत उपयोगी है, परमावश्यक है। अन्यत्र अनुपलब्ध यह सप्तभंगी न्याय जैनदर्शन का अनुपम अनुसंधान है।

सप्तम अध्याय में अनेकांत और स्याद्वाद का स्वरूप बतलाया है। अंत में उपसंहार देकर विषय-वस्तु की समाप्ति की है।

### वैशिष्ट्य ह्य

(1) नय जैसे दुरुह विषय को भी अत्यंत सरलता से निरूपित किया गया है।

(2) आगम-अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में निश्चय-व्यवहार, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयों एव उनके भेद-प्रभेदों का विश्लेषण व समन्वय सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

(3) जिनागम के विविध ग्रंथों में उपलब्ध समस्त नयों की विशद प्ररूपणा इस नयचक्र में समाहित है, जो अभी तक किसी अन्य 'नयचक्र' में ऐसा संकलन व वर्णन उपलब्ध नहीं है।

(4) पंचाध्यायी के नयों व नयाभासों के हार्द, व्यवहारनयों की खींचतान जैसी दिखने वाली उलझन को कुशाग्रता से सुलझा दिया गया है।

(5) शतरंज के खिलाड़ी, बादाम, साबुन, फिल्मांकन, नाव आदि विविध उदाहरणों को देने से विषय-वस्तु को समझने में सरलता हो गई है।

(6) प्रश्नोत्तर खंड के माध्यम से विशेष ऊहापोह से विषय स्पष्ट हो गया है।

(7) जिनागम के समस्त नयों का अध्ययनकर्ताओं के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

### ● पंडित टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

(1) नामकरण ह्य उक्त कृति का नामकरण सार्थक है, क्योंकि इस कृति में पंडित टोडरमलजी के व्यक्तित्व एवं उनके कर्तृत्व का समुचित शोधपूर्ण लेखन है।

(2) आधार स्रोत ह्य श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में डॉ. सत्येन्द्र, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में मार्च सन् 1968 ईस्वी में आयोजित टोडरमल जयंती समारोह के अवसर पर पंडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ ने पंडित हुकमचंदजी भारिल्ल से आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी पर शोधकार्य करने का आग्रह किया। उस अनुरोध को इन्होंने तत्काल सहर्ष स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप इन्दौर विश्वविद्यालय में डॉ. डी. के. जैन, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, के निर्देशन में उक्त शोध प्रबंध मई, सन् 1972 ईस्वी में प्रस्तुत किया गया।

इस कृति के निर्माण में अनेक ग्रंथों (प्रकाशित-अप्रकाशित), पत्र-पत्रिकाओं को आधार बनाया गया है।

(3) विषयवस्तु ह्य प्रस्तुत शोधप्रबंध सात अध्यायों में विभक्त है ह्य प्रथम अध्याय में पंडित टोडरमलजी के पूर्व व समकालीन धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों तथा विचारधाराओं पर विचार किया गया है। साथ ही समकालीन राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों की भी चर्चा है।

द्वितीय अध्याय पंडितजी के जीवन और व्यक्तित्व से संबंधित है ह्य इसके अंतर्गत उनके नाम, निवास, जन्म, मृत्यु, परिवार, गुरु, शिक्षा, व्यवसाय, कार्यक्षेत्र, प्रचारकार्य, संपर्कसाहचर्य, प्रतिभा, प्रभाव, प्रामाणिकता और स्वभाव पर प्रामाणिक प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय में उनकी रचनाओं का वर्गीकरण एवं परिचयात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक रचना का नाम, परिमाण, रचनाकाल, प्रेरणा, उद्देश्य, वर्ण्यविषय और रचनाशैली का प्रामाणिक परिशीलन प्रस्तुत कर अंत में उनके पद्य साहित्य का परिचय एवं उसकी विशेषताओं पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में जैनदर्शन एवं जैनागम परम्परा के परिप्रेक्ष्य में उनके द्वारा वर्णित वर्ण्यविषय एवं दार्शनिक विचारों का अनुशीलन किया गया है।

पंचम अध्याय में उनकी गद्य शैली पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर आदि शैलीगत विशेषताओं पर सोदाहरण विवेचन किया है।

षष्ठ अध्याय में पंडितजी की भाषा पर विचार किया गया है। अंत में निष्कर्ष रूप से उनकी भाषा की प्रकृति का विश्लेषण किया गया है।

सप्तम अध्याय में हिन्दी भाषा और साहित्य को पंडितजी के योगदान का मूल्यांकन करते हुए विषय का उपसंहार किया है।

अंत में तीन परिशिष्ट दिए गए हैं। प्रथम परिशिष्ट में पण्डित टोडरमलजी के अनन्य सहयोगी साधर्मि ब्र. रायमलजी द्वारा लिखित जीवन-पत्रिका एवं इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका दी गई है। दूसरे परिशिष्ट में संदर्भ-ग्रंथों की सूची एवं तीसरे में नामानुक्रमणिका दी गई है।

### वैशिष्ट्य ह

(1) प्रस्तुत कृति संदर्भित विषय पर पहला मौलिक और प्रामाणिक शोधप्रबंध है।

(2) प्रस्तुत कृति में पण्डित टोडरमलजी के संबंध में कई महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित हुए हैं ह

जैसे उम्र 27 के बजाय 47 वर्ष सिद्ध की है।

(3) पण्डित टोडरमलजी के संपूर्ण साहित्य का भाषा और शैली की दृष्टि से एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(4) पंडितजी के दार्शनिक और सैद्धान्तिक पक्षों का भी उनके पूर्ववर्ती समग्र दिगम्बर जैन साहित्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

### ● अनेकांत और स्याद्वाद

1. नामकरण ह प्रस्तुत कृति में जैनदर्शन के महान सिद्धान्त 'अनेकांत और स्याद्वाद' को स्पष्ट किया है। अतः इसका नामकरण पूर्णतः सार्थक है।

2. आधार स्रोत ह प्रस्तुत कृति की विषय-वस्तु 'तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ' कृति का ही एक अंश या लेख है, पर अत्यंत उपयोगी जानकर इसे पृथक् से भी प्रकाशित किया गया। यही निबंध तदन्तर "मैं कौन हूँ?" कृति रूप में तथा 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' के छठवें अध्याय के रूप में भी प्रकाशित हुआ है।

विषयवस्तु ह वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक है। प्रत्येक वस्तु अनेक गुणधर्मों से युक्त है। अनंत धर्मात्मक वस्तु ही अनेकांत है और वस्तु के अनेकांत स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं। अनेकांत और स्याद्वाद में द्योत्य-द्योतक संबंध है।

जिन गुणों में परस्पर कोई विरोध नहीं है, एक वस्तु में उनकी एक साथ सत्ता तो सभी वादी-प्रतिवादी सहज स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु जिनमें विरोध-सा प्रतिभासित होता है, उन्हें स्याद्वादी ही स्वीकार करते हैं। इतरजन उनमें से किसी एक पक्ष को ग्रहण कर पक्षपाती हो जाते हैं। अतः अनेकांत की परिभाषा में परस्पर विरुद्ध शक्तियों के प्रकाशन पर विशेष बल दिया गया है।

कुछ विचारक कहते हैं कि स्याद्वाद शैली में 'भी' का प्रयोग है, 'ही' का नहीं। उन्हें 'भी' में समन्वय की सुगंध और 'ही' में हठ की दुर्गन्ध नजर आती है, पर यह उनका बौद्धिक भ्रम ही है। स्याद्वाद शैली में जितनी आवश्यकता 'भी' के प्रयोग की है, उससे कम आवश्यकता 'ही' के प्रयोग की नहीं। 'भी' और 'ही' का समान महत्त्व है।



‘भी’ समन्वय की सूचक न होकर ‘अनुक्त’ की सत्ता की सूचक है और ‘ही’ आग्रह की सूचक न होकर ‘दृढ़ता’ की सूचक है। इनके प्रयोग का एक तरीका है और वह है जहाँ अपेक्षा न बताकर मात्र यह कहा जाता है कि ‘किसी अपेक्षा’ वहाँ ‘भी’ लगाना जरूरी है और जहाँ अपेक्षा स्पष्ट बात की जाती है वहाँ ‘ही’ लगाना अनिवार्य है। जैसे ह्र प्रत्येक वस्तु के कथंचित् नित्य भी है और कथंचित् अनित्य भी है। यदि इसी को हम अपेक्षा लगाकर कहेंगे तो इसप्रकार कहना होगा कि प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य ही है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य ही।

प्रमाण वाक्य में मात्र स्यात् का प्रयोग होता है, किन्तु वाक्य में स्यात् पद के साथ-साथ एक ‘ही’ का प्रयोग भी आवश्यक है ‘ही’ सम्यक् एकांत की सूचक है और ‘भी’ ‘सम्यक्’ अनेकांत की। यद्यपि जैनदर्शन को अनेकांतवादी दर्शन कहा जाता है, तथापि यदि उसे सर्वथा अनेकांतवादी माने तो यह भी तो एकांत हो जायेगा। अतः जैनदर्शन में अनेकांत में भी अनेकांत को स्वीकार किया गया है। जैनदर्शन सर्वथा न एकांतवादी है न सर्वथा अनेकांतवादी। वह कथंचित् एकांतवादी और कथंचित् अनेकांतवादी है। इसी का नाम अनेकांत में अनेकांत है।

अनेकांत और स्याद्वाद का प्रयोग करते समय यह सावधानी रखना बहुत आवश्यक है कि हम जिन परस्पर विरोधी धर्मों की सत्ता वस्तु में प्रतिपादित करते हैं, उनकी सत्ता वस्तु में संभावित है भी या नहीं, अन्यथा कहीं हम ऐसा भी न कहने लगे कि कथंचित् जीव चेतन है व कथंचित् अचेतन भी। अचेतनत्व की जीव में संभावना नहीं है; अतः यहाँ अनेकांत बताते समय अस्ति-नास्ति के रूप में घटाना चाहिए। जैसे जीव चेतन ही है, अचेतन नहीं।

अनेकांत और स्याद्वाद का प्रयोग करते समय यह सावधानी रखना बहुत आवश्यक है कि हम जिन परस्पर विरोधी धर्मों की सत्ता वस्तु में प्रतिपादित करते हैं, उनकी सत्ता वस्तु में संभावित है भी या नहीं, अन्यथा कहीं हम ऐसा भी न कहने लगे कि कथंचित् जीव चेतन है व कथंचित्

अचेतन भी। अचेतनत्व की जीव में संभावना नहीं है, अतः यहाँ अनेकांत बताते समय अस्ति-नास्ति के रूप में घटाना चाहिए। जैसे जीव चेतन ही है, अचेतन नहीं।

अनेकांत और स्याद्वाद सिद्धान्त इतना गूढ़ व गंभीर है कि इसे गहराई से और सूक्ष्मता से समझे बिना इसकी तह तक पहुँचना असंभव है, क्योंकि ऊपर-ऊपर से देखने पर यह एकदम गलत-सा प्रतीत होता है। इस संबंध में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के दर्शनशास्त्र के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्री फणिभूषण अधिकारी ने लिखा है कि जैनधर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त को जितना गलत समझा गया है, उतना किसी अन्य सिद्धान्त को नहीं। यहाँ तक कि शंकराचार्य भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं, उन्होंने भी इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि प्राचीन दर्जों के हिन्दू धर्मावलंबी बड़े-बड़े शास्त्री अब तक भी नहीं जानते कि जैनियों का स्याद्वाद किस चिड़िया का नाम है ?

लेखक का मानना है कि यह सिद्धान्त वस्तुस्वरूप के सही रूप का दिग्दर्शन करनेवाला होने से आत्मशांति के साथ-साथ विश्वशांति का भी प्रतिष्ठापक सिद्धान्त है।

### वैशिष्ट्य ह्र

(1) अनेकांत और स्याद्वाद जैसे गूढ़ सिद्धान्त को अत्यधिक सरल भाषा में स्पष्ट किया गया है।

(2) अपनी बात की पुष्टि के लिए अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं।

(3) जैनेतर विद्वानों के उद्धरणों को प्रस्तुत कर ‘अनेकांत और स्याद्वाद’ सिद्धान्त की सार्वभौमिकता को सिद्ध किया गया है।

### ● शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर

नामकरण ह्र प्रस्तुत कृति में शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर (बिहार राज्य में स्थित) के विषय में प्रकाश डाला गया है। अतः उक्त कृति का नामकरण शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर रखा गया।

आधार स्रोत हू सम्मेदशिखरजी में संपन्न होनेवाले शिक्षण शिविरों और मंगल यात्राओं के अनेक अवसरों पर डॉ. भारिल्ल से सम्मेदशिखर की महिमा मुमुक्षु समाज को अनेक बार सुनने को मिली है। जब-जब इनके ये प्रवचन सुने गये, तब-तब अनेक श्रोताओं ने इन्हें लिपिबद्ध करने का अनुरोध मिलता रहा। सन् 1991 में श्रीमान् भभूतमलजी भंडारी बेंगलोर द्वारा आयोजित सम्मेदशिखर आदि सिद्धक्षेत्रों की मंगल यात्रा पर ब्र.यशपालजी ने डॉ. साहब से विशेष आग्रह कर इस विषय पर लिखवा ही लिया तथा यह एक लघु कृति के रूप में प्रस्तुत हुई है।

विषय-वस्तु हू प्रस्तुत कृति में डॉ. भारिल्ल ने कहा है कि जिसका आश्रय लेकर भव्य जीव संसार-सागर से पार होकर मुक्ति प्राप्त करते हैं, उसे तीर्थ कहते हैं। द्रव्य और भाव के भेद से तीर्थ दो प्रकार का है। संताप शांत होता है, तृष्णा का नाश होता है, मलपंक की शुद्धि होती है हू इन तीन कारणों से आगम, तीर्थस्थानों को द्रव्यतीर्थ कहते हैं तथा सभी जिनदेव दर्शन, ज्ञान और चारित्र से युक्त होते हैं। अतः उन्हें भावतीर्थ कहते हैं। निज भगवान आत्मा को परमतीर्थ कहते हैं। जहाँ निज भगवान आत्मा की आराधना की जाती है, जहाँ रत्नत्रय धर्म की साधना की जाती है, जहाँ से तीर्थकरादि ने निर्वाण प्राप्त किए हैं, जहाँ तीर्थकरों के पंचकल्याणक हुए हैं, जहाँ आगम और परमागम लिखे गये हैं, वहाँ वीतरागी संतों का विहार होता है, जहाँ वे संत आत्मसाधना करते हैं; उन सभी परम पवित्र स्थानों को तीर्थ कहा जाता है। वर्तमान चौबीसी में से बीस तीर्थकरों की निर्वाण भूमि होने से सम्मेदशिखर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सर्वश्रेष्ठ तीर्थराज है। सम्मेदशिखर न केवल तीर्थराज है, अपितु शाश्वत तीर्थधाम है; क्योंकि वहाँ से न केवल वर्तमान चौबीसी के बीस तीर्थकरों का निर्वाण हुआ है, अपितु अबतक वहाँ से असंख्य तीर्थकरों व मुनिराज का निर्वाण हो चुका है और भविष्य में भी अगणित तीर्थकरों व मुनिराजों का निर्वाण होनेवाला है।

लेखक ने स्पष्ट किया है कि वर्तमान चौबीसी के कुछ तीर्थकरों का जन्म यदि अयोध्या में नहीं हुआ और निर्वाण सम्मेदशिखर में नहीं हुआ तो इसका एकमात्र कारण हू हुण्डावसर्पिणी का अपवाद है। ढाई द्वीप में सभी स्थान सिद्धक्षेत्र हैं, पर सम्मेदशिखर की भूमि के ऊपर के स्थान में सिद्धों की संख्या सर्वाधिक है; क्योंकि वहाँ एक-एक सिद्ध की अवगाहना में अनेकानेक सिद्ध समाहित हैं। दूसरी बात यह है कि सम्मेदशिखर सामान्य मुनिराजों की ही नहीं, अनंत तीर्थकरों की भी निर्वाणभूमि है। अतः वह तीर्थराज है और उसके विशेष महत्त्व से इंकार नहीं किया जा सकता है।

कोई आशंका करे कि यही अयोध्या, यही सम्मेदशिखर का स्थान सदा से है, कैसे मान सकते हैं ? उसका समाधान करते हुए स्पष्ट किया गया है कि प्रलय के उपरांत भी कुछ चिह्न विशेष अवशेष रहते हैं, जिनके अनुसार इंद्र अयोध्या और सम्मेदशिखर को पुनः व्यवस्थित करता है। अतः यह सुनिश्चित ही है कि यह वही स्थान है, जहाँ से अनंत तीर्थकरों का मोक्ष सुनिश्चित है।

हमारे तीर्थकर और साधुजनों ने ऐसा स्थान ध्यान के लिए क्यों चुना ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा कि हमारे संत ध्यान के लिए बैठने के लिए भी ऐसा स्थान चुनते हैं कि जहाँ बगल में कोई दूसरा व्यक्ति बैठ ही न सके; क्योंकि बगल में यदि कोई दूसरा बैठेगा तो वह बात किए बिना नहीं रहेगा और वे किसी से बात करना ही नहीं चाहते हैं। बातचीत पर से जोड़ती है और पर का संपर्क ध्यान की सबसे बड़ी बाधा है।

ध्यान के लिए निरापद स्थान वातानुकूलित घर नहीं, प्रकृति की गोद में बसे घने जंगल हैं, पर्वत श्रेणियाँ हैं। वातानुकूलित हॉल में बैठकर आज तक किसी को केवलज्ञान नहीं हुआ, पर ऐसे अनंत सिद्ध हो गये हैं, जिन्हें सम्मेदशिखर जैसे पर्वतों की चोटियों पर केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है।

यह शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर भारतवर्ष के बिहार नामक प्रदेश में गिरिडीह नामक नगर के निकट स्थित है। यह पर्वतराज समुद्र की सतह से 4279 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। पर्वतराज का यह भाग आयताकार 40 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। पर्वत के शिखर पर 24 तीर्थकरों के चरण चिह्न हैं। इन चरण चिह्नों की वंदना करने के लिए यात्रियों को 10 किलोमीटर चलकर पर्वत पर चढ़ना होता है। सर्वप्रथम 17वें तीर्थकर कुन्थुनाथ भगवान की पहली टोंक पर पहुँचते हैं। उसके बाद सभी टोंकों की वंदना करने के लिए 10 किलोमीटर चलना पड़ता है, चढ़ना-उतरना पड़ता है। अंत में, 23वें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ की टोंक आती है। इसके बाद नीचे आने के लिए 10 किलोमीटर उतरना होता है। इसप्रकार कुल मिलाकर 30 किलोमीटर की यात्रा हो जाती है।

### वैशिष्ट्य ह

(1) शाश्वत सम्मेदशिखर तीर्थधाम पर प्रकाश डालने वाली यह एक अद्वितीय लघु कृति है।

(2) तीर्थ का क्या स्वरूप है ? इस पर सुंदर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

(3) लोगों के मन में उठने वाली विविध आशंकाओं का समाधान किया गया है।

(4) विविध उद्धरण प्रस्तुत कर अपनी बात की पुष्टि की गई है।

### ● शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में

नामकरण ह प्रस्तुत कृति में शाकाहार के विषय में प्रकाश डाला गया है। शाकाहार के साथ श्रावकाचार पर भी विशद प्रकाश डाला गया है।

आधार स्रोत ह अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने 1991 की महावीर जयन्ती से 1992 की महावीर जयन्ती तक के एक वर्ष को शाकाहार-श्रावकाचार वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय किया था। अतः

इस संबंध में प्रकाश डालने के लिए 'वीतराग-विज्ञान' मासिक पत्रिका के संपादकीय के रूप में यह लेख लिखा गया था। इसे पाठकों ने बेहद पसंद किया और पुस्तक के रूप में अलग से प्रकाशित करने की मांग उठी। फलस्वरूप पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया।

विषय-वस्तु ह प्रस्तुत कृति के प्रारंभ में 'शाकाहार श्रावकाचार वर्ष' के नामकरण पर प्रकाश डाला गया है। शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द क्यों जोड़ा है; इसका तर्क पूर्ण खुलासा किया है। कहा गया है कि "जो मांसाहार से एकदम दूर हैं, उस जैनसमाज के समक्ष मांसाहार के निषेधपूर्वक शाकाहार के रूप में आलू, बैंगन, मूली, गाजर आदि खाने का उपदेश देना, हमें एकदम अटपटा लगता है। अकेले शाकाहार शब्द से हमारा उक्त अभिप्राय पूर्णतः व्यक्त नहीं होता था। अतः हमने शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द जोड़ना आवश्यक समझा है।"<sup>5</sup>

श्रावकाचार में मांसाहार के निषेध के साथ-साथ मदिरापान का भी निषेध होता है, इसकारण भी शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द जोड़ा गया है।

जैन परिभाषा के अनुसार त्रस जीवों के शरीर के अंश का नाम ही मांस है। दो इंद्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव त्रस कहलाते हैं। मांस की उत्पत्ति न केवल त्रस जीवों के घात से होती है, अपितु मांस में निरंतर ही अनंत त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं। अतः मांस खाने में न केवल उस एक त्रस जीव की हिंसा का दोष है, जिसको मारा गया है, अपितु उन अनंत त्रस जीवों की हिंसा का अपराध भी है, जो उसमें निरंतर होते रहते हैं। अनेक बीमारियों का घर तो मांसाहार है ही।

कुछ लोग कहते हैं कि शक्ति प्राप्त करना हो तो मांसाहार करना ही होगा; क्योंकि मांस शक्ति का भण्डार है। इसका तर्कमय उत्तर लेखक ने दिया है कि (1) मांसाहारी लोग शाकाहारी पशुओं का ही मांस खाते हैं, मांसाहारियों का नहीं। (2) शाकाहारी पशु जितने शक्तिशाली होते हैं,

उतने मांसाहारी नहीं। शाकाहारी हाथी के समान शक्ति किसमें है ? (3) शाकाहारी घोड़ा आज भी शक्ति का प्रतीक है। मशीनों की क्षमता को आज भी हार्स पावर से नापा जाता है। (4) शाकाहारी पशु सामाजिक प्राणी है, वे मिल-जुलकर झुण्डों में रहते हैं, मांसाहारी झुण्डों में नहीं रहते। शाकाहारियों में जबरदस्त जीवन शक्ति होती है। (5) मनुष्य के आंतों और दांतों की रचना शाकाहारी प्राणियों के समान है, मांसाहारियों के समान नहीं। मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी ही है तथा स्वभाव से दयालु प्रकृति का प्राणी है।

इसी क्रम में लेखक ने रात्रि भोजन त्याग, पानी छानकर पीना भी विज्ञान सम्मत बताया है। जैनाचार एवं जैन विचार प्रकृति के अनुकूल है, पूर्णतः वैज्ञानिक है, आवश्यकता उन्हें सही एवं सशक्त रूप में प्रस्तुत करने की है।

वर्तमान में अंडों को शाकाहार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उसका लेखक ने निषेध किया है और कहा है कि अंडे मांसाहारी ही होते हैं। शाकाहार तो वनस्पति से उत्पन्न खाद्य को ही कहा जाता है, पर अंडे न तो अनाज के समान किसी खेत में ही पैदा होते हैं और न साग-सब्जी और फलों के समान किसी बेल या वृक्ष पर ही फलते हैं, वे तो स्पष्टतः ही सैनी पंचेन्द्रिय मुर्गियों की संतान हैं। यह तो हम सब जानते ही हैं कि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के शरीर का अंश ही मांस है। अतः अंडे से उत्पन्न खाद्य स्पष्टरूप से मांसाहार ही है।

कुछ लोग कहते हैं कि शाकाहारी अंडे से बच्चे का जन्म नहीं हो सकता; अतः वह दूध के समान अजीव ही है, पर यह बात एकदम गलत है; क्योंकि वह मुर्गी के प्रजनन अंगों का उत्पादन है, अतः अशुचि तो है ही, साथ ही उत्पन्न होने के बाद भी बढ़ता है, सड़ता नहीं, अतः सजीव भी है, भले ही पूर्णता को प्राप्त होने की क्षमता उसमें न हो, पर उसे अजीव किसी भी स्थिति में नहीं माना जा सकता है।

हमारे यहाँ तो आटे के मुर्गे के वध का फल भी नरक-निगोद बताया है, फिर इस साक्षात् अंडे का सेवन कैसे संभव है ? अंडे को शाकाहारी बताना अंडे के व्यापारियों का षड्यंत्र है, जिसके शिकार शाकाहारी लोग हो रहे हैं। अतः शाकाहारी अंडे के दुष्प्रचार से शाकाहारियों को बचाना हम सबका प्राथमिक कर्तव्य है।

जैनाहार विज्ञान का मूल आधार अहिंसा है। सर्वप्रथम तो हमें ऐसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए, जो पूर्णतः अहिंसक हो। यदि पूर्णतः अहिंसक आहार से जीवन संभव न हो या हमसे इसका पालन संभव न हो तो कम से कम हिंसा हो, ऐसा आहार से काम चलाना चाहिए। आहार के लिए सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के घात का तो सवाल ही नहीं उठता, त्रसजीवों की हिंसा से भी पूरी तरह बचना चाहिए। स्थावर जीवों के विनाश से ही यथा साध्य बचना आवश्यक है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही जैनाहार सुनिश्चित किया गया है। जीव-जंतुओं से रहित बिना घुना अनाज, चावल, दालें एवं तिलहन ही सर्वोत्तम शाकाहार है। इन्हीं में मेवा सूखे फलों (ड्राईफ्रूट्स) को भी समझना चाहिए। इसके बाद वृक्ष की डाली पर ही पके हुए और पककर स्वयं गिरे हुए फलों का क्रम आता है; क्योंकि उनके ग्रहण में भी किसी भी जीव-जंतु को कोई पीड़ा नहीं पहुँचती है।

पेड़-पौधों की जड़, जिसे कंदमूल कहते हैं, खाने का पूर्णतः निषेध है; क्योंकि जड़-मूल के समाप्त हो जाने पर तो पेड़-पौधे का सर्वनाश अनिवार्य है। कंदमूल साधारण वनस्पति होने से उसमें अनंत जीव भी रहते हैं। इस कारण भी उसके खाने का निषेध है।

इसकारण का उल्लेख लेखक ने करते हुए कहा है कि आज बाजार से तैयार सामग्री लाकर खाने-पीने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ रही है। महिलाओं के कार्यक्षेत्र (नौकरी) में आ जाने से इस प्रवृत्ति के और अधिक प्रोत्साहन मिला है। बाजार की सामग्री से तैयार शृंगार सामग्री में भी ऐसे पदार्थ

शामिल रहते हैं कि जिनके उत्पादन में हिंसा तो होती है, क्रूरता भी होती है।

यदि शाकाहारी समाज को इसप्रकार के मांसाहार, मद्यपान एवं हिंसक शृंगार सामग्री के प्रयोग से बचाना है तो हमें बाजार में ऐसे उत्पादन उपलब्ध कराने होंगे, जिनमें मांस न हो, चर्बी न हो, अंडों का प्रयोग न हुआ हो, मद्य-मांस का उपयोग न हुआ हो और जो हिंसा से उत्पन्न न होते हों; क्योंकि अब यह तो संभव रहा नहीं है कि किसी को बाजार में उपलब्ध भोज्य सामग्री एवं शृंगार सामग्री के प्रयोग से रोका जा सके। हाँ, यदि हम उन पदार्थों के स्थान पर अन्य अहिंसक पदार्थ उसी कीमत पर या उससे भी कम कीमत पर उपलब्ध करा सकें तो सफलता अवश्य मिल सकती है।

अंत में लेखक ने कहा है कि लौकिक और पारलौकिक सुख दोनों ही दृष्टि से शाकाहारी-श्रावकाचारी होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

### वैशिष्ट्य ह

(1) शाकाहार और श्रावकाचार के स्वरूप ह उपयोगिता और आवश्यकता पर अच्छी तरह से प्रकाश डाला गया है।

(2) अंडों को मांसाहार ही सिद्ध किया है।

(3) “दूध के पीने और मांस भक्षण करना दोनों समान ही हैं” ऐसा कहनेवालों का निषेध कर दोनों में कितना अंतर है ? इसे स्पष्ट किया है।

(4) अंडे को शाकाहारी बताने वाले अंडे के व्यापारियों की चालाकी को एक टूथ पेस्ट कंपनी का उदाहरण देकर समझाया गया है।

(5) “जैनाहार क्या है” इसका ज्ञान कराया है।

(6) शाकाहारी समाज शाकाहारी रहे इस हेतु क्या किया जाए ? इस संबंध में उचित एवं संभव उपायों का उल्लेख किया गया है।

(7) मांसाहार से शाकाहार ही मनुष्य के लिए श्रेष्ठ आहार है; यह सिद्ध कर शाकाहार करने की प्रेरणा दी है।

### ● क्रमबद्धपर्याय

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में ‘क्रमबद्धपर्याय’ के स्वरूप को सुव्यवस्थित रूप से स्पष्ट किया गया है। अतः इस कृति का नाम ‘क्रमबद्धपर्याय’ सार्थक एवं उचित है।

**आधार स्रोत ह** डॉ. भारिल्ल के जीवन में एक क्रांतिकारी मोड़ लाने वाली कृति ‘क्रमबद्धपर्याय’ है। आध्यात्मिक संत कानजीस्वामी ने क्रमबद्धपर्याय का जो स्वरूप जगत के सामने रखा, उससे एक नई क्रांति समाज में उठी। डॉ. भारिल्ल ने क्रमबद्धपर्याय पर सैकड़ों प्रवचन दिए। सन् 1979 में उक्त विषय पर संपादकीय के रूप में लिखना प्रारंभ किया। उसको पढ़कर लोगों की मांग पुस्तकाकार की हुई। अतः उक्त विषय ‘क्रमबद्धपर्याय’ कृति के रूप में प्रकाशित हुआ।

**विषय-वस्तु ह** प्रस्तुत कृति की विषयवस्तु दो खंडों में विभाजित है। एक खण्ड 67 पृष्ठीय महानिबंध के रूप में है तथा दूसरा खण्ड 34 पृष्ठीय प्रश्नोत्तर के रूप में है। इस कृति की विषय-वस्तु संक्षेप में इसप्रकार है ह

(1) क्रमबद्धपर्याय से आशय यह है कि इस परिणमनशील जगत की परिणमन व्यवस्था क्रमनियमित है।

(2) स्थूलदृष्टि से देखने पर जो परिणमन अव्यवस्थित दिखाई देता है, गहराई से विचार करने पर उसमें भी एक सुव्यवस्थित व्यवस्था नजर आती है। जैसे नाटक में जो दृश्य अवस्थित दिखाए जाते हैं, वे भी पूर्व नियोजित एवं पूर्ण व्यवस्थित होते हैं।

(3) जिसके बाद जो पर्याय (कार्य) होनी होती है, वही होती है, अन्य नहीं; इसी का नाम क्रमबद्धपर्याय है।

(4) प्रत्येक द्रव्य की वह परिणमन व्यवस्था व्यवस्थित ही नहीं, स्वाधीन भी है, किसी अन्य द्रव्य के आधीन नहीं।

(5) आचार्य अमृतचंद्र ने ‘समयसार’ की गाथा 308 से 311 की टीका में ‘क्रमनियमित’ शब्द का प्रयोग किया है। उसका अर्थ क्रमबद्धपर्याय

ही है। इस बात के प्रमाण के लिए लेखक ने 'जैनतत्त्वमीमांसा' का प्रमाण भी दिया है। यथा ह्य 'वर्तमान काल में जिस अर्थ को 'क्रमबद्धपर्याय' शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है, 'क्रमनियमित पर्याय' का वही अर्थ है।"६

(6) क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि हेतु अनेक आचार्यों, कवियों के कथनों को उद्धृत किया है। जैसे ह्य

“प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः

तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः।”७

जिसे, जहाँ, जिस कारण से, जिसप्रकार से, जो वस्तु प्राप्त होनी होती है, उसे वहाँ उसी कारण से, उसीप्रकार वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती हैं।

(7) क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि से सर्वज्ञता की सिद्धि की है, जो सर्वज्ञता को स्वीकार करे, उसे क्रमबद्धपर्याय के स्वीकारने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। पर 'क्रमबद्धपर्याय' के नाम से वह सर्वज्ञता में ही प्रश्न खड़ा करता है। अतः लेखक ने उनके प्रश्न को अनेक उद्धरणों व तर्कों से खण्डन कर सर्वज्ञता व क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि की है।

(8) भविष्य निश्चित है ऐसा बताकर कर्तृत्वबुद्धि को समाप्त करना ही क्रमबद्धपर्याय का ध्येय है।

(9) चारों अनुयोग के अनेक उद्धरणों से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि की है। जैसेह्य द्वारका जलने की घटना की घोषणा, मारीचि के जीव के चौबीसवें तीर्थकर होने की घटना की घोषणा, छह माह आठ समय में छह सौ आठ जीव के निगोद में निकलने व उतने ही मोक्ष जाने की बात आदि। इस सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय, जिस कारण होनी है, वह तदनुसार ही होती है।

(10) भगवान सर्वज्ञ के ज्ञान में जो कार्य, जिस समय जहाँ पर जिसके द्वारा, जिसप्रकार से होना झलका है; वह उसीसमय वहीं पर उसी के द्वारा और उसीप्रकार संपन्न होगा। पर यहाँ एक बात विशेष ध्यान

रखने योग्य है कि सर्वज्ञ के ज्ञानानुसार पदार्थों का परिणमन नहीं होता, किन्तु पदार्थों के परिणमनानुसार सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकना होता है।

(11) इसमें डॉ. भारिल्ल ने कहा ह्य जिसप्रकार ज्ञान के आधीन वस्तु नहीं है; उसीप्रकार वस्तु के आधीन ज्ञान भी नहीं है।”८

(12) क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में डॉ. भारिल्ल का यह कथन विशेष रूप से दृष्टव्य है ह्य “जितने तीन काल के समय हैं, उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें हैं और एक-एक समय एक-एक में खचित हैं। यदि एक पर्याय को अपने स्थान (समय) से हटाया जाएगा तो वह (स्थान) रिक्त हो जाएगा। उस स्थान (समय) की पूर्ति हेतु दूसरी पर्याय कहाँ से आयेगी ? जिस इष्ट पर्याय को आप लाना चाहते हैं, यदि उसे अपने स्थान (समय) से हटाकर वहाँ लायेंगे तो क्या यहाँ की पर्याय वहाँ ले जावेंगे ? सो संभव नहीं।”९

(13) क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति बिना दृष्टि का स्वभाव-सन्मुख होना संभव नहीं; क्योंकि पर्यायों में अपनी इच्छानुकूल फेर-फार करने का भार उस पर बना रहता है, दृष्टि को संपूर्णतः निर्भार हुए बिना अंतर-प्रवेश संभव नहीं है।

(14) जैनदर्शन के अकर्तावाद से भी क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है।

(15) जिसप्रकार अचलद्रव्य को चलायमान नहीं किया जा सकता है; उसीप्रकार अचल पर्याय को भी स्वकाल से चलायमान करना संभव नहीं है।

(16) अपने-अपने समयों में क्रमपूर्वक नंबरवार पर्यायों को प्रगट होने की अपेक्षा कानजीस्वामी ने इसके लिए 'क्रमबद्धपर्याय' शब्द का प्रयोग किया।

(17) प्रत्येक कार्य पंचसमवायों (काल, निमित्त, होनहार, स्वभाव, पुरुषार्थ) से होता है, पर मुख्यता गौणता से किसी एक को मुख्य और शेष को गौण कर दिया जाता है। यह सम्यक् एकांत है।

(18) क्रमबद्धपर्याय को सम्यक् एकांत भी कहा जा सकता है; जो कि सम्यक् अनेकांत का पूरक है, विरोधी नहीं।

(19) जो लोग क्रमबद्धपर्याय में पुरुषार्थ का उड़ना मानते हैं, उनके लिए लेखक ने अनेक तर्क देकर पुरुषार्थ की सिद्धि की है, और कहा है “पुरुषार्थ भी अन्य समवायों के अनुसार ही होता है। पंच समवायों में कोई परस्पर संघर्ष नहीं है, अपितु अद्भुत सुमेल है।<sup>10</sup>”

(20) जिसप्रकार सर्वज्ञता की प्रतीति के बिना क्रमबद्धपर्याय का निर्णय संभव नहीं है; उसीप्रकार क्रमबद्धपर्याय के सम्यक् निर्णय बिना सर्वज्ञता की भी सच्ची प्रतीति संभव नहीं।

(21) क्रमबद्धपर्याय का निर्णय कहो या सर्वज्ञता का निर्णय कहो, दोनों एक ही बात है। उसमें इतरेतराश्रय दोष नहीं आता है।

(22) ‘क्रमबद्धपर्याय’ की श्रद्धा से क्या लाभ होते हैं, इस संबंध में डॉ. भारिल्ल ने लिखा है है “सर्वज्ञता के निर्णय से, क्रमबद्धपर्याय से मति व्यवस्थित हो जाती है, कर्तृत्व का अहंकार गल जाता है, सहज ज्ञाता-दृष्टापने का पुरुषार्थ जाग्रत होता है, पर फेर-फेरफार करने की बुद्धि समाप्त हो जाती है, इसकारण तत्संबंधी आकुलता-व्याकुलता भी चली जाती है। अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होने के साथ-साथ अनंत शांति का अनुभव होता है।”<sup>11</sup>

(23) प्रश्नोत्तर खंड में 20 प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया गया है। पूर्व में जो विषय रखा, उसी संबंध में उठनेवाली आशंकाओं को उठाकर लेखक ने समाधान किया है। जैसे अकाल मृत्यु, काल-अकाल नय, सर्वज्ञता, पर में कुछ न कर सकते तो हमारी स्वतंत्रता ही क्या रही ? आदि बातों पर स्पष्टीकरण किया गया है।

### वैशिष्ट्य है

(1) क्रमबद्धपर्याय लेखक की एक मौलिक कृति तथा इस विषय पर सुंदर रीति से विवेचन करने वाली यही एक मात्र कृति है।

(2) प्रस्तुत कृति में जगत का अव्यवस्थितपना भी एक निश्चित व्यवस्थित क्रम के अनुसार ही होता है, बड़ी ही सरलता से समझाने का प्रयास किया है।

(3) जो जीव इसका वाचन, मनन करके अंतर्मुख परिणामन करेंगे उनकी अनंत पदार्थों में कर्तृत्वबुद्धि तथा अपनी पर्यायों में फेरफार करने की बुद्धि अवश्य छूट जायेगी।

(4) पर्यायों की क्रमबद्धता में जो अनेक आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं; उनका समाधान भी प्रश्नोत्तर के रूप में उत्तम रीति से किया गया है।

(5) ‘क्रमबद्धपर्याय’ नामक यह कृति निश्चित ही अद्वितीय, गंभीर, सतर्क, सप्रमाण, सोदाहरण, सर्वजनग्राह्य एवं सर्वज्ञता का सचोट उद्घोष करती प्रतीत होती है।<sup>12</sup>

### ● गागर में सागर

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित कृति नहीं है, अपितु उनके द्वारा तारणतरण स्वामी विरचित ‘ज्ञान समुच्चयसार’ की 44, 59, 76 तथा 897 वीं गाथाओं एवं भगवान महावीर और उनकी अहिंसा पर हुए प्रवचन हैं। उनके प्रवचनों के टेप-कैसिट से लिपिबद्ध कर पण्डित रतनचन्द भारिल्ल ने संपादन किया है। इन प्रवचनों में तारण-तरण स्वामी के सभी ग्रंथों का निचोड़ एकतरह से आ गया है। अतः इसका नाम ‘गागर में सागर’ रखा गया है; जो उपयुक्त जान पड़ता है।

**आधार स्रोत** है सन् 1985 में तारण-तरण स्वामी की जन्म-जयंती के अवसर पर डॉ. भारिल्ल, सागर (मध्यप्रदेश) में पाँच दिन के लिए पधारे थे। वहाँ इनके ‘ज्ञान समुच्चयसार’ ग्रंथ पर सार गर्भित प्रवचन हुए। इन प्रवचनों से प्रभावित होकर समाज ने इनके प्रवचनों को प्रकाशित कराने का विचार किया, जिससे कि सभी ज्ञान पिपासु मुमुक्षु इनका लाभ ले सकें। अतः श्री दिगम्बर जैन तारण-तरण चैत्यालय ट्रस्ट, सागर ने इसे ‘गागर में सागर’ कृति के रूप में प्रकाशित कराया।

विषयवस्तु ह्य प्रस्तुत कृति की विषयवस्तु 'ज्ञान समुच्चयसार' की गाथा 44, 59, 76, और 897वीं गाथाओं एवं भगवान महावीर और उनकी अहिंसा पर पाँच प्रवचन हैं। प्रथम 44वीं गाथा इसप्रकार है ह्य

**ममात्मा ममलं शुद्धं ममात्मा शुद्धात्मनम् ।**

**देहोस्थोऽपि अदेही च ममात्मा परमात्मं ध्रुवम् ॥**

इस गाथा में निज शुद्धात्म की बात कही गई है। इसमें कहा गया है कि मेरी वह ध्रुव आत्मा अत्यंत अमल है, पूर्ण शुद्ध है। देह में विराजमान यह मेरी आत्मा स्वयं अदेही है और स्वयं ही परमात्मा है।

इस गाथा के प्रवचन की विषयवस्तु इसप्रकार है कि मैं ही पूर्ण निर्मल हूँ, मैं ही शुद्ध हूँ, रागादि विकारी भाव मेरे स्वभाव में नहीं हैं, मैं रागादि विकारी भावरूप नहीं हूँ।

'आत्मा को यहाँ 'निर्मल न कहकर 'ममल' कहा है। ममल अर्थात् अमल। जिसका मल निकल गया हो, उसे निर्मल कहते हैं और जिसमें मल हो ही नहीं, उसे अमल कहते हैं। अरहंत और सिद्ध भगवान निर्मल हैं और त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा अमल है।

“निजत्व बिना सर्वस्व समर्पण नहीं होता। पर परमात्मा चाहे कितना ही महान क्यों न हो, उसमें सर्वस्व समर्पण संभव नहीं है, उचित भी नहीं है। सर्वस्व समर्पण तो निज परमात्मा में ही संभव है। आवश्यक भी यही है।<sup>13</sup>”

इस हेतु प्रवचनकार ने उदाहरण दिया है कि अपना बेटा कैसा भी क्यों न हो हम सभी सब कुछ उसी को देकर मरना चाहते हैं और पराया बेटा कितना ही अच्छा क्यों न हो; उसकी प्रशंसा भी खूब करें पर, उसके नाम से संपत्ति का एक हिस्सा भी नहीं करता, अपने बेटे के नाम ही करता है; क्योंकि निजत्व में ही समर्पण होता है। अनादिकाल से हमने अपने को तो पहिचाना नहीं है, अपने भगवान आत्मा में तो एकत्व स्थापित किया नहीं है और अपनी ही कल्पना से पर-पदार्थों में से किन्हीं

को अपना और किन्हीं को पर या पराया मान रखा है। अपनी इस मान्यता के अनुसार हमने परपदार्थों में से किन्हीं को अपना और किन्हीं को पर या पराया मान रखा है। अपनी इस मान्यता के अनुसार हम परपदार्थों में राग-द्वेष किया करते हैं।

आत्मा में अपना वीर्य उत्साहित हो, इसके लिए उसमें अपनापन होना अत्यंत आवश्यक है। श्रद्धा के सुधरे बिना ज्ञान-चारित्र नहीं सुधरते। अतः यहाँ तारण-तरण स्वामी श्रद्धा की ही बात कर रहे हैं। 'ममात्मा ममलं शुद्धं' कहकर वे श्रद्धा गुण को ही मुख्य बताते हैं।

डॉ. भारिल्ल कहते हैं ह्य “अनादिकाल से हमने देहादि परपदार्थों को अपना माना और निज भगवान आत्मा को अपना नहीं माना, पर न तो आज तक देहादि परपदार्थ अपने हुए और न भगवान आत्मा ही पराया हुआ।<sup>14</sup>”

दूसरा प्रवचन गाथा 59 पर हुआ। गाथा 59 इसप्रकार है ह्य

**“शुद्धं च सर्वं शुद्धं च सर्वज्ञं शाश्वतं पदं ।**

**शुद्धात्मा शुद्धं ध्यानस्य शुद्धं सम्यग्दर्शनम् ॥”**

सर्वज्ञस्वभावी शुद्धात्मा शाश्वत है, शुद्ध है, सर्वशुद्ध है, शुद्ध ध्यान का विषय है। इसके ही आश्रय से शुद्ध सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है।

प्रवचनकार कहते हैं ह्य कि यहाँ आत्मा को शुद्ध कहकर संयोग और संयोगी भावरूप विकारों का निषेध किया है और शाश्वत कहकर क्षणभंगुर पर्यायों से पृथक् बताया है। सर्वज्ञपद द्वारा मात्र ज्ञानस्वभावी ही नहीं, अपितु सर्वज्ञानस्वभावी है ह्य यह बताया गया है। सर्वज्ञानस्वभावी से यह तात्पर्य है कि यह आत्मा सर्व पदार्थों के जानने के स्वभाववाला है।

यहाँ ध्यान के ध्येय एवं श्रद्धान के श्रद्धेय अर्थात् सम्यग्दर्शन के विषयभूत भगवान आत्मा को शाश्वत सर्वज्ञस्वभावी एवं सर्वशुद्ध बताकर उसके ही दर्शन करने की, उसका ही ज्ञान करने की एवं उसमें ही जम जाने की, रम जाने की पावन प्रेरणा दी गई है।



जिन परपदार्थों का परिणामन हमारे हाथ में है ही नहीं, उनके कर्तृत्व को तो हमने सरल मान रखा है और सहज सरल अपने आत्मा के दर्शन को महाकठिन मान रखा है। हमारी यह मान्यता ही हमारे दुःखों का मूल कारण है। इसी मान्यता के कारण यह तीन लोक का नाथ आज दर-दर का भिखारी बन रहा है।

तीसरे दिन गाथा 76 पर प्रवचन किया। 76 वीं गाथा इसप्रकार है ह

“पूर्व पूर्व उक्तं च द्वादशांग समुच्चयं ।  
ममात्मा अंग सार्धं च आत्मानं परमात्मानं ॥”

तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञदेव, गणधरदेव एवं संपूर्ण आचार्य परम्परा द्वारा पूर्वोक्त जो बारह अंग और चौदह पूर्वों का समुच्चय ज्ञान है; उसका सार मात्र इतना ही है कि शरीर के साथ रहनेवाला मेरा आत्मा ही परमात्मा है।

“समस्त द्वादशांग का सार वास्तव में तो एक आत्मा ही है। एक आत्मा को समझाने के लिए ही तो समस्त शास्त्रों की रचना हुई है; क्योंकि एक इस भगवान आत्मा के ज्ञान बिना ही यह आत्मा अनादिकाल से संसार में भटक रहा है, अनंत दुःख उठा रहा है। इस आत्मा शब्द में केवल ढाई अक्षर हैं। मात्र ढाई अक्षर को जो सुन लेता है, समझ लेता है, अपना लेता है, पा लेता है। उसने सुनने योग्य सब सुन लिया, समझने योग्य सब समझ लिया, पढ़ने योग्य सब पढ़ लिया, अपनाने योग्य सब अपना लिया और पाने योग्य सब पा लिया समझो।<sup>15</sup>”

चौथे दिन गाथा 76 पर प्रवचन किया। जो इसप्रकार है ह

“ज्ञान समुच्चयसारं, उवइष्टं जिनवरेहि जं ज्ञानं ।  
जिन उक्तं ज्ञानसहावं, सुद्धं ध्यानं च ज्ञानसमुच्चयसारं ॥”

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया जो ज्ञान है; वही ज्ञानसमुच्चयसार है अथवा जिनेन्द्र भगवान कथित ज्ञानस्वभावी आत्मा का शुद्ध ध्यान ही ज्ञानसमुच्चयसार है।

प्रवचनकार ने इस बात की पुष्टि दौलतरामजी के निम्न दोहे से की है ह

“लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ ।  
तोरी सकल जग दंद फंद निज आत्म ध्याओ ॥”

“समयसार में आत्मा के ज्ञानमात्र कहा है और यहाँ ज्ञानसमुच्चयसार कहा है। समयसार में ‘ज्ञानमात्र’ शब्द से अकेला ज्ञानवाला आत्मा नहीं लिया है, अपितु अनंत गुणों का अखंड पिंड भगवान आत्मा ही ‘ज्ञानमात्र’ शब्द से कहा गया है। यहाँ भी ‘ज्ञानसमुच्चयसार’ शब्द से अनंतधर्मात्मक आत्मा ही लिया गया है।<sup>16</sup>”

डॉ. भारिल्ल कहते हैं कि लोक में कहावत है कि सुनना सबकी, करना मन की, पर जिनवाणी की आज्ञा है कि जानना सबको, जमना अपने में। जानने योग्य तो संपूर्ण जगत है, पर जमने योग्य, रमने योग्य एक निज आत्मा ही है, ज्ञान स्व-परप्रकाशक होता है। वह अपने को भी जाने और पर को भी जाने; इसमें कोई दोष नहीं है, पर, पर को ही अपना मानना, उसका ही ध्यान करना, उसी में रम जाना अपराध है, बंध का कारण है, दुःख का कारण है।

आत्मा का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, पर पर को जानना स्व के जानने में बाधक है, अतः उपयोग पर से हटाकर स्व में लगाने की प्रेरणा दी जाती है।

पाँचवाँ प्रवचन ‘भगवान महावीर की दृष्टि में अहिंसा’ पर है। जिसकी अलग कृति भी प्रकाशित हुई है। अतः इसका विवेचन उस कृति के अंतर्गत ही किया गया है।

वैशिष्ट्य ह

(1) संपूर्ण कृति में प्रवचनशैली बराबर दिखाई पड़ती है।

(2) मुख्यरूप से ‘आत्मा’ का स्वरूप बतलाया गया है।

(3) आत्मा के स्वरूप के साथ उसे जानने, पहिचानने की विधि बतलाकर उसमें रमने का उपदेश दिया गया है।

(4) आत्मा के स्वरूप के स्पष्टीकरण हेतु अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जिससे आमव्यक्ति को विषयवस्तु को समझने में सरलता रहती है।

### ● मैं कौन हूँ ?

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में संकलित ‘मैं कौन हूँ’ निबंध के आधार पर ही इस कृति का नामकरण ‘मैं कौन हूँ ?’ रखा गया है। जैसा कि अनेक साहित्यकारों ने अपनी कृति का नाम अपने प्रथम अध्याय, निबंध या अंतिम या मध्य पाठ के आधार पर रखा है। डॉ. भारिल्ल ने भी उसी परम्परा में इस कृति का नाम संकलित निबंधों में से रखा।

**आधारस्रोत** हू प्रस्तुत कृति में संकलित निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। ये निबंध महत्त्वपूर्ण होने से पाठकों के लाभार्थ इसे पॉकेट बुक के रूप में प्रकाशित किया गया।

**विषयवस्तु** हू प्रस्तुत कृति में कुल 12 निबंध हैं। प्रथम निबंध ‘सुख क्या है?’ इसमें कहा गया है कि जगत के लोग सुख चाहते, दुःख से डरते हैं, पर वस्तुतः सुख क्या है, इसे नहीं जानते। कोई भोग-सामग्री में, कोई कल्पना में, कोई इच्छा की पूर्ति में सुख बताता है। उन सबका तर्क द्वारा निषेध किया और कहा है कि सच्चा सुख पाने के लिए हमें परोन्मुखी दृष्टि छोड़कर स्वयं को देखना होगा, स्वयं को जानना होगा; क्योंकि अपना सुख अपनी आत्मा में है, सच्चा सुख ‘आत्मानुभूति’ में है। उस आत्मानुभूति को प्राप्त करने का प्रारंभिक उपाय तत्त्वविचार है।

द्वितीय निबंध ‘मैं कौन हूँ?’ है। इसमें लेखक ने हम अपने को स्त्री, पुरुष, बालक, सेठ, पंडित आदि मानते हैं उसका निषेध किया। तत्पश्चात् “मैं कौन हूँ” को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हू “मैं शरीर, मन, वाणी और मोह-राग-द्वेष, यहाँ तक की क्षणस्थायी परलक्ष्यी बुद्धि से भिन्न एक त्रैकालिक शुद्ध अनादि-अनंत चैतन्य ज्ञानानंद स्वभावी ध्रुवतत्त्व हूँ, जिसे आत्मा कहते हैं।<sup>17</sup>”

तृतीय निबंध ‘आत्मानुभूति और तत्त्वविचार’ है, इस निबंध में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है और कहा गया है कि अंतरोन्मुखी वृत्ति द्वारा आत्मा के साक्षात्कार की स्थिति का नाम ही आत्मानुभूति है। धर्म का आरंभ भी आत्मानुभूति से ही होता है और पूर्णता भी इसी की पूर्णता में होती है। ‘प्रयोजनभूत तत्त्व के संबंध में किया गया विकल्पात्मक प्रयत्न ही तत्त्वविचार कहलाता है।

लेखक ने सिद्ध किया है कि आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए अपने आत्मस्वभाव के प्रति सर्वस्व समर्पण एक अनिवार्य शर्त है, जिसके बिना इसकी प्राप्ति नहीं होती है तथा आत्मानुभूति में पर का सहयोग का विकल्प भी बाधक ही है, साधक नहीं।

चतुर्थ निबंध ‘आत्मानुभूति : प्रक्रिया और क्रम’ के नाम से है। तत्त्वमंथन संबंधी शुभ विकल्पों के अभावपूर्वक आत्मानुभूति प्राप्त करने का वास्तविक मार्ग बतलाया गया है। आत्मानुभूति प्राप्ति के लिए सन्नद्ध पुरुष प्रथम तो श्रुतज्ञान के अवलंबन से आत्मा का विकल्पात्मक सम्यक् निर्णय करता है। तत्पश्चात् आत्मा की प्रकट-प्रसिद्धि के लिए पर प्रसिद्धि की कारणभूत इंद्रियों से मतिज्ञान तत्त्व को समेटकर आत्माभिमुख करता हुआ विकल्पानुभवों को पार कर स्वानुभवदशा को प्राप्त हो जाता है।

पंचम निबंध ‘आत्मानुभूति पुरुषः की अंतर्बाह्य दशा’ है। इसमें कहा गया है कि आत्मानुभूति प्राप्त पुरुषों की अंतर्परिणति अत्यंत शांत एवं ज्ञानानंदमय होती है। दृष्टि के अंतर्मुख होते ही शुभाशुभ विकल्पजाल प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं। वहीं बाह्य दशा भी विचित्र होती है। उसके लिए जगत के समस्त रस फीके हो जाते हैं। पंचेन्द्रिय के विषय की अरुचि हट जाती है। ये जिनेश्वर के लघुनंदन मुक्तिमार्ग में खेला करते हैं। उनकी श्रद्धा में पर के कर्तृत्व का अहंकार नहीं होता, पर से पृथक्त्व एवं उसको अकर्तृत्व की श्रद्धा सदा विद्यमान रहती है। उनकी प्रवृत्ति धाय के समान होती है।

“वह न भोगी है और न त्यागी। वस्तुतः वह निरंतर त्याग की भावना वाला भोगों की बीच खड़ा व्यक्ति है।<sup>18</sup>”

षष्ठम् निबंध ‘अहिंसा’ है जिसमें हिंसा अहिंसा के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। जगतजन जिसे हिंसा व अहिंसा मानते हैं मात्र वही हिंसा व अहिंसा नहीं; अपितु अपनी आत्मा में राग-द्वेष-मोह भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और उन्हें धर्म मानना महाहिंसा है तथा रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही परम अहिंसा और रागादि भावों को धर्म न मानना ही अहिंसा के संबंध में सच्ची समझ है।

सप्तम निबंध ‘अनेकांत और स्याद्वाद’ है। यह अलग से पुस्तकाकार प्रकाशित है; अतः वहीं चर्चा की जायेगी।

अष्टम् निबंध ‘श्रावक की जीवनधारा’ है। इसमें ज्ञानी श्रावक की स्थिति का उल्लेख है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन 12 व्रतों का निरतिचार पालन करनेवाला ही व्रती कहलाता है। इन व्रतों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत निबंध में किया है। स्पष्ट किया गया है कि श्रावक की स्थिति न तो भोगी की है और न वह पूर्णतः त्यागी ही है। वह भोग और त्याग की विचित्र अंतर्भूमिका में विचरण करनेवाला साधक आत्मा है।

नवम् निबंध ‘भगवान महावीर’ है। प्रस्तुत निबंध में बालक वर्द्धमान से भगवान महावीर कैसे बनें ? इसे सरल शब्दों में स्पष्ट किया है। वे आरंभ के तीस वर्षों में वैभव और विलास के बीच जल से भिन्न कमलवत् रहे। बीच के बारह वर्षों में जंगल में परम मंगल की साधना में एकांत आत्माराधना रत रहे और अंतिम तीस वर्षों में प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सर्वोदय तीर्थ का प्रवर्तन, प्रचार व प्रसार करते रहे।

दशवाँ निबंध ‘भगवान महावीर और उनकी उपासना’ है। इसमें लेखक ने स्पष्ट किया है कि भगवान महावीर के अनुसार परमात्मा पर का कर्ता-धर्ता न होकर मात्र ज्ञाता-दृष्टा होता है। वीतरागी परमात्मा का उपासक (भक्त) भी वीतरागता का उपासक होता है। लौकिक सुख

(भोग) की आकांक्षा से परमात्मा की उपासना करने वाला व्यक्ति वीतरागी भगवान महावीर का उपासक नहीं हो सकता। भगवान को सही रूप में पहिचाने बिना उनकी उपासना सही अर्थों में नहीं की जा सकती है।

ग्यारहवाँ निबंध ह्व ‘व्यावहारिक जीवन में महावीर के आदर्श’ हैं। इसमें लेखक ने सिद्ध किया है कि व्यावहारिक जीवन की कसौटी पर जब हम तीर्थंकर भगवान महावीर के आदर्शों को कसते हैं तो वे पूर्णतः खरे उतरते हैं। लेखक ने बताया है कि जीवन को पवित्र, सच्चरित्र एवं सुखी बनाने के लिए तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये पाँच महान् आदर्श लोक के सामने रखे। व्यावहारिक जीवन में सफल प्रयोग के लिए उन्होंने जनसाधारण में संभावित शारीरिक हिंसा को कम करने के लिए सहअस्तित्व, सहिष्णुता और समताभाव पर जोर दिया तो वैचारिक हिंसा से बचने के लिए अनेकांत का समन्वयात्मक दृष्टिकोण दिया।

बारहवाँ निबंध ह्व ‘धार्मिक सहिष्णुता और भगवान महावीर’ है। इस अंतिम निबंध में कहा है कि विश्व शांति की कामना करनेवालों को तीर्थंकर महावीर द्वारा बताये गये हस्तक्षेप, अनाक्रमण और सहअस्तित्व के मार्ग पर चलना आवश्यक है। इसमें ही सबका हित निहित है। लेखक ने कहा है कि अनेकान्तात्मक विचार, स्याद्वादमयी वाणी, अहिंसात्मक आचार एवं अपरिग्रही जीवन। ये चार महान् सिद्धांत तीर्थंकर महावीर की धार्मिक सहिष्णुता के प्रबल प्रमाण हैं।

### वैशिष्ट्य ह्व

(1) आध्यात्मिक निबंधों में भावात्मक प्रवाह एवं अनुभूति लेखनी में उतर आई है।

(2) सैद्धान्तिक निबंधों में शैली तर्क प्रधान है।

(3) जीवनी प्रधान निबंधों में कथाप्रवाह में औपन्यासिक रोचकता पाई जाती है।

(4) प्रत्येक निबंध में सरलता से विषय-वस्तु को प्रस्तुत किया है।

### ● आत्मा ही है शरण

**नामकरण-** प्रस्तुत कृति में डॉ. भारिल्ल द्वारा विदेशों में दिए गए व्याख्यानों का संक्षिप्तसार है। इस कृति के अंतिम व्याख्यान में 'आत्मा ही है शरण' दिया गया है तथा संपूर्ण कृति में प्रधानता 'आत्मा' की ही रही है।

**आधार स्रोत** हैं डॉ. भारिल्ल 1984 से धर्म प्रचारार्थ विदेश यात्रा जाते रहे हैं। वहाँ से लौटने के पश्चात् ये 'वीतराग-विज्ञान' मासिक पत्रिका में संपादकीय के रूप में वहाँ दिए गए व्याख्यानों का सार व यात्रा वर्णन लिखते रहे तथा समाज की माँग पर उन्हें पुस्तकाकार के रूप में प्रकाशित किया है। सन् 1984 से 1991 तक के व्याख्यानों के यथासमय विदेशों में जैनधर्म : एक अध्ययन, विदेशों में जैनधर्म : प्रचार-प्रसार की संभावनाएँ, विदेशों में जैनधर्म : उभरते पद चिह्न, विदेशों में जैनधर्म : बढ़ते कदम, विदेशों में जैनधर्म : अध्यात्म की जगती जिज्ञासा, विदेशों में जैनधर्म : धूम क्रमबद्धपर्याय एवं आत्मा ही है शरण नाम से कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उक्त सभी पुस्तकों को एक कर 'आत्मा ही है शरण' नाम से प्रकाशित किया गया। यह उन सभी पुस्तकों का संशोधितरूप है, जिसमें यात्रा विवरणों को बहुत कम कर दिया है, पर व्याख्यान की विषय-वस्तु को उसी रूप में रखा है।

**विषय-वस्तु** हैं प्रस्तुत कृति में 8 वर्षों की विदेश यात्रा का वर्णन एवं वहाँ हुए व्याख्यानों का विवरण दिया गया है। सर्वप्रथम जून 1984 में विदेश में गए। वहाँ के वर्णन (विवरण) को "विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता' के नाम से प्रथम अध्याय के रूप में प्रस्तुत किया। 1984 से 26 जून को लंदन पहली बार पहुँचे और यही से यात्रा प्रारंभ हुई। लंदन के अतिरिक्त न्यूयार्क, वाशिंगटन, साल एंजिल्स

सैनफ्रांसिस्को, शिकागो, क्वीवलेंड, डिट्रॉयर, ह्यस्टन, फोर्टबर्थ, डलास, बोस्टन, न्यूजर्सी स्थानों पर गए। इस लेख में उक्त स्थानों पर किन व्यक्तियों के यहाँ ठहरे तथा किस विषय पर प्रवचन किए, उसका वर्णन किया है। वहाँ की स्थिति का तथा व्याख्यान का संक्षिप्तिकरण इसप्रकार है ह

जैनसमाज अधिक शिक्षित समाज है, अतः विदेशगमन में भी वह अग्रगण्य रहा। आज अकेले अमेरिका (यू.एस.ए.) में ही पचास हजार जैन रहते हैं। लंदन (यू.के.) में भी हजारों जैनबंधु रहते हैं। जो पीढ़ी भारत से वहाँ गई है, उसे तो अपनी संस्कृति और मातृभाषा का सामान्य परिचय है, कुछ लोग थोड़े बहुत तत्त्वज्ञान से भी परिचित हैं, पर जो पीढ़ी वहाँ ही जन्मी है, वह अपनी संस्कृति, मातृभाषा और जैन तत्त्वज्ञान में लगभग पूर्णतः अपरिचित ही है। सर्वाधिक चिंता की बात तो यह है कि मातृभाषा के ज्ञान के अभाव में माध्यम ही समाप्त सा होता जा रहा है।

विदेशों में बसे जैन बंधुओं के सामने आज अपनी संस्कृति और तत्त्वज्ञान की सुरक्षा का अहं सवाल उपस्थित है।

डॉ. भारिल्ल वहाँ पहली बार ही गए थे, पर वहाँ उनसे परिचित लोग बहुत थे। डॉ. भारिल्ल के पूर्व उनकी क्रांतिकारी कृति 'क्रमबद्धपर्याय' बहुत पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थी; जिसके कारण वहाँ इन्हें सर्वत्र बहुत वात्सल्य और अपनत्व मिला।

डॉ. भारिल्ल ने लिखा है ह "साहित्य भी कितना प्रभावशाली होता है, उसकी पकड़ कितनी गहरी और सुदुरवर्ती होती है ह इस बात का अनुभव भी मुझे इस यात्रा के दौरान ही हुआ।<sup>19</sup>"

आगामी पीढ़ी में संस्कार सुरक्षित रहें ह इस संदर्भ में लगभग सभी जगह डॉ. भारिल्ल ने कहा है कि हम भौतिक संपत्ति को कई गुना करके अपने संतान को देकर जाना चाहते हैं तो क्या अपनी संतान में आध्यात्मिक धार्मिक संस्कारों को देखना हमारा कर्तव्य नहीं है ? यह कर्तव्य हमारी

पिछली शताधिक पीढ़ियाँ सतर्कता से निभाती आ रही हैं, अन्यथा भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित तत्त्व हमें आज कैसे उपलब्ध होता ?

इस संदर्भ में वहाँ के लोग क्या कर सकते हैं, यह बताते हुये डॉ. भारिल्ल ने कहा है ह

“आपका सद्भाग्य है कि आप लोगों को सप्ताह में शनिवार और रविवार दो दिन का पूर्णावकाश मिलता है। इसमें से एक दिन आप अपने गृहस्थी के कार्यों या घूमने-फिरने में लगाइये और दूसरे दिन प्रत्येक नगर में रहनेवाले जैन बंधुओं का किसी एक स्थान पर सामूहिक रूप से मिलने का कार्यक्रम रखिए, जिसमें भक्ति-संगीत के साथ-साथ सभी आयु वर्ग के लिए यथासंभव पृथक्-पृथक् धार्मिक अध्ययन, प्रवचन, तत्त्वचर्चा, गोष्ठी आदि के कार्यक्रम होने चाहिए।<sup>20</sup>”

द्वितीय निबंध में 1985 की विदेश यात्रा का वर्णन है। इसका शीर्षक “विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार की संभावनाएँ” दिया है।

इस वर्ष ये एन्टवर्थ, लंदन, लिस्टर, न्यूयार्क, न्यूजर्सी, लासएंजिल्स, सानफ्रांसिस्को, ह्यूस्टन, डलास, क्लीवलेन्ड, डिट्रॉयट, टोरंटो, रोचेस्टर, वोस्टन, सिनसिनाटी आदि स्थानों पर गए। इस यात्रा की प्रमुख बातें इसप्रकार हैं ह

(1) आज का आदमी प्रत्येक बात को विज्ञान की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करना चाहता है और आहार की चर्चा स्वास्थ्य के आधार पर सुनिश्चित करता है।

(2) विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने धार्मिक आस्थाओं पर गहरी चोट की है और होटल संस्कृति के विकास ने तो शाकाहार पर कुठाराघात किया है।

(3) डॉ. भारिल्ल ने जैन सेंटर्स के अतिरिक्त अनेक हिन्दू मंदिरों में भी प्रवचन किए। ह्यूस्टन के हिन्दू मंदिर में जब ये व्याख्यान देने गए तो वहाँ सत्यनारायण की कथा चल रही थी। इन्होंने यहाँ भारतीय संस्कृति

की वैज्ञानिकता एवं सत्यनारायण कथा की सार्वभौमिकता पर प्रकाश डाला। उक्त सन्दर्भ में इन्होंने कहा ह “यह कथा किसी व्यक्ति की कथा नहीं, सत्यनारायण की कथा है। इसमें किसी व्यक्ति की उपासना की बात नहीं की गई है, अपितु सत्यधर्म की उपासना की बात कही गई है।

हम सत्यधर्म को भूल गए हैं और सत्यनारायण की पूजा-पीढ़ियों से करते आ रहे हैं। वस्तुतः सत्य ही नारायण है, यही उपास्य है, आराध्य है। सत्य की उपासना ही समृद्धि का कारण है ह यह संदेश है सत्यनारायण की कथा का, जिसे हमने भुला दिया है। सत्य (प्रामाणिकता) को जीवन में अपनाकर अनार्य देश समृद्ध होते जा रहे हैं और हम झांझ-मजीरे से सत्यनारायण की पूजन करने में ही मगन हैं।<sup>21</sup>”

(4) “आंगन में स्थापित तुलसी को पानी की, चौराहे के दीपक को तेल की एवं गर्भगृह में विराजमान देवता के दर्शन के लिए दीपक तथा गर्भगृह की वायुशुद्धि के लिए धूप की आवश्यकता थी। इसी को लक्ष्य में रखकर तुलसी की पूजा जल से, शनि की तेल से और गर्भगृह में विराजमान देवता की पूजा दीप-धूप से करने का विधान किया गया।<sup>22</sup>”

(5) डॉ. भारिल्ल ने इस प्रवास में शाकाहार पर प्रवचन किए। शाकाहार चर्चा संबंधित विषय की चर्चा शाकाहार नामक कृति के अंतर्गत की गई है। इस अवसर पर रात्रि भोजन क्यों नहीं करना, पानी छानकर क्यों पीना आदि विषयों पर तार्किक ढंग से व्याख्यान दिये।

(6) सभी स्थानों पर एक प्रवचन ‘आधुनिक विज्ञान और धर्म’ विषय पर हुआ। उन्होंने इस व्याख्यान के विषय में लिखा है कि धर्म विज्ञान का विरोधी नहीं, किंतु मार्गदर्शक है। जिसप्रकार घोड़े को घुड़सवार और हाथी को महावत के मार्गदर्शन की आवश्यकता है; उसीप्रकार विज्ञान को धर्म के मार्गदर्शन की आवश्यकता है; किन्तु दुर्भाग्य से आज धर्म को अपनी उपयोगिता और आवश्यकता की सिद्धि के लिए विज्ञान का सहारा लेना पड़ रहा है।

(7) विज्ञान के उपयोग की खुली छूट वैज्ञानिकों को नहीं दी जा सकती, धार्मिकों का मार्गदर्शन आवश्यक है। यदि धर्म और विज्ञान मिलकर काम करेंगे तो दोनों का भला होगा और जगत का भी भला होगा। धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक ही हैं।

तीसरे निबंध में 1986 की यात्रा का वर्णन है। इसका शीर्षक 'सुखी होने का सच्चा उपाय' रखा है।

इस वर्ष पूर्व के स्थानों के अतिरिक्त मिनियापिलिस, राले, मिलवाकी, लिंगस्टन, अटलांटा आदि स्थानों पर भी गए। इस अध्याय में इन्हीं सभी स्थानों पर किस विषय पर प्रवचन किए तथा कहाँ ठहरे इस संबंध में लिखा है। इस अवसर पर सभी स्थानों पर जिन-अध्यात्म के मूल स्वरूप को सरल भाषा और रोचक शैली में सोदाहरण प्रस्तुत किया। इसमें लिखा है कि इस संकटमयी संसार में चार सार्वभौमिक सत्य हैं (1) सभी जीव दुःखी हैं। (2) दुःख से बचना चाहते हैं। (3) दुःख से बचने का निरंतर प्रयत्न भी करते हैं। (4) फिर भी आज तक दुःख दूर नहीं हुआ।

जगत में कुछ भी अच्छ-बुरा नहीं है। अच्छे-बुरे की कल्पना हम स्वयं अपने रागानुसार ही करते हैं। इस काल में न अच्छे की कीमत है न सच्चे की, अपनापन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि सर्वस्व-समर्पण अपनों के प्रति ही होता है। इस तथ्य को एक करोड़पति सेठ का इकलौता नालायक बेटा तथा एक पड़ौसी का सदाचारी बेटा के उदाहरण से समझाया है कि वह सेठ सब कुछ अपने बेटे को देना चाहता है, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो; पड़ौसी का बेटा अच्छा है, वह उसकी प्रशंसा तो करता है, पर वह उसे कुछ देना नहीं चाहता।

दुःखों से मुक्ति के मार्ग में अपने में अपनापन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। एक सेठ का ढाई वर्ष का लड़का गुम जाता है। वह होटल पर काम करने लगता है। आगे चलकर वही लड़का अपने ही नौकर के रूप में

कार्य करता है। बहुत समय बाद उसका पता लग जाता है। यह नौकर तो अपना ही बेटा है। दोनों स्थितियों के व्यवहार की स्थिति का ज्ञान कराकर उक्त तथ्य को स्पष्ट किया है।

“इन देहादि पर-पदार्थों से भिन्न निज भगवान आत्मा में अपनापन स्थापित होना ही एक अभूतपूर्व क्रान्ति है, धर्म का आरंभ है, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, साक्षात् मोक्ष का मार्ग है; भगवान बनने, समस्त दुःखों को दूर करने और अनंत अतीन्द्रिय आनंद प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है।<sup>23</sup>”

इस प्रवास में अहिंसा, आत्मानुभूति और सम्यग्दर्शन विषय पर भी व्याख्यान हुए। यह यात्रा 17 जून, 1996 से 13 अगस्त 1986 तक रही।

चतुर्थ निबंध 'आत्मा ही परमात्मा' है। इसमें चौथी विदेश यात्रा 1987 का वर्णन है। यह यात्रा 63 दिवसीय थी। 21 मई 1987 से जुलाई 1987 तक की रही। छब्बीस नगरों में धर्म प्रभावना की। इससमय सभी जगह 'भगवान आत्मा और उसकी प्राप्ति का उपाय' पर प्रवचन हुये। इस विषय को करोड़पति रिक्शावाला के सांगोपांग उदाहरण से स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त महावीर की दृष्टि में अहिंसा, समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रवचनसार की 80वीं गाथा, जीव के पाँच भाव आदि विषयों पर भी व्याख्यान हुए। कुछ मूल बातें इसप्रकार हैं ह

(1) ध्यान करने योग्य तो एकमात्र निज भगवान आत्मा ही है। (2) ध्यान एकांत में ही होता है, भीड़भाड़ में नहीं। (3) जिस दिन यह आत्मा यह जान लेगा कि मैं स्वयं भगवान हूँ। उस दिन उसके दुःख दूर होने में देर न लगेगी।

पाँचवाँ निबंध का शीर्षक “जीवन-मरण और सुख-दुःख” है। इसमें 1988 में की गई विदेश यात्रा का वर्णन है। यह यात्रा 9 जून से, 25 जुलाई तक रही। इस वर्ष पूर्व के सभी स्थानों पर गए, इसका वर्णन है तथा किस विषय पर प्रवचन किए, वह स्पष्ट किया है। यह वर्ष कुन्दकुन्द का दो

हजारवाँ वर्ष होने से इन्होंने सभी जगह कुन्दकुन्द शतक के आधार पर प्रवचन किए। वे गाथा 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52 है। ये गाथाएँ मूलतः समयसार की बंधाधिकार की गाथा है। इस अध्याय के मूल बिन्दु इसप्रकार हैं ह

(1) प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दुःख एवं जीवन-मरण का कर्ता-धर्ता-हर्ता स्वयं ही है, अपने भले-बुरे का उत्तरदायी भी पूर्णतः स्वयं ही है।

(2) हथियार सुरक्षा के साधन नहीं, मौत के ही सौदागर हैं।

(3) “सबको पावन कर देनेवाला यह जिनवाणी रूपी गंगा का जल जब संप्रदायों के घड़ों में भर जाता है; तो उसमें वह क्षमता नहीं रहती कि दूसरों के चित्त को शांत कर दे। अपितु सांप्रदायिक उपद्रवों के कारण बनने लगता है; अतः यही श्रेष्ठ है कि गंगाजल गंगा में रहे, उसे घड़ों में बंद न कर दिया जाये।<sup>24</sup>”

छठा निबंध ‘धूम क्रमबद्धपर्याय की’ है। इसमें 1989 की विदेश यात्रा का वर्णन है। 1 जून, 1989 से 26 जुलाई, 1989 तक यह यात्रा रही इस वर्ष अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड के अतिरिक्त नये देश यात्रा में जुड़ गए थे ह्व हांककांग (चीन), जापान एवं जर्मनी पहली बार ही गए।

इस यात्रा में सभी स्थानों में क्रमबद्धपर्याय की मुख्यता रही, परंतु अहिंसा, स्याद्वाद और अनेकांत और शुद्धात्मशतक की गाथा 1, 2, 3 पर भी प्रवचन हुए। इस यात्रा की मुख्य बातें इसप्रकार हैं ह

(1) टोरंटों में बंधुत्रिपुटी एवं सुशीलमुनिजी का मिलना हुआ। जो डॉ. भारिल्ल से बहुत प्रभावित हुए।

(2) जापान में भारतीय दूतावास के असिस्टेंट राजदूत ने भी इनके प्रवचन का लाभ लिया एवं लंबी चर्चा हुई।

(3) हिरोशिमा नागासाकी में गिरे अणु बम के दृश्य को देखने के बाद उस संबंध में ये कहते हैं कि इस दृश्य के देखने पर अणुबम के खतरों

का भी परिचय प्राप्त होता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अहिंसा की महिमा आती है और निशस्त्रीकरण का वातावरण बनता है।

(4) भगवान आत्मा की प्राप्ति की तड़फ वाले व्यक्ति की स्थिति कैसी होती है। एक बालक जो मेले में अपनी माँ से बिछुड़ गया और माँ की खोज करता है। इस उदाहरण को सांगोपांग प्रस्तुत कर उक्त सिद्धान्त को सुस्पष्ट किया गया है।

(5) डॉ. भारिल्ल ने इस यात्रा के अंत में लिखा है ह

“जो भी हो, पर विदेशों की भूमि पर भी जिन-अध्यात्म की जड़ें गहराई से जमती जा रही हैं, जो निकट भविष्य में ही वटवृक्ष का रूप ले सकती हैं।<sup>26</sup>”

सप्तम निबंध में 1 जून, 1990 से 18 जुलाई 1990 तक की गई यात्रा का वर्णन है। इस निबंध का शीर्षक ‘आत्मा ही है शरण’ रखा गया है। इस अध्याय की मुख्य बातें इसप्रकार हैं ह

(1) इस वर्ष जहाँ-जहाँ गए, लगभग सर्वत्र ही समयसार एवं कुन्दकुन्द शतक की गाथाओं के आधार पर प्रवचन किए।

(2) “अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठिपण।

सब आत्मा की अवस्थाएँ आत्मा ही हैं शरण।।<sup>27</sup>”

इस पर प्रवचन करते हुए स्पष्ट किया है कि पंचपरमेष्ठी का आराधक होने के कारण ही जैनदर्शन सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक है। णमोकार महामंत्र में कुछ मांगा नहीं गया है; तथापि उसके स्मरण से हम सभी पापभावों से बच जाते हैं।

(3) ये पंचपरमेष्ठी पद और रत्नत्रय धर्म सभी आत्मा की ही अवस्थाएँ हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए निज भगवान आत्मा का ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान आवश्यक है। अतः इस गाथा में आत्मा की ही शरण में जाने की बात कही गई है।

(4) निज भगवान आत्मा की यह उपासना दो प्रकार से होती है। (1) साध्य भाव और (2) साधक भाव। शुभोपयोग और शुद्धोपयोग में झूलना साधकदशा है और शुद्धोपयोग में अनंतकाल तक के लिए समा जाना साध्यदशा है।

आठवाँ निबन्ध ह 13 जून, 1991 से 31 जुलाई तक की गई यात्रा का वर्णन है। इस अध्याय का शीर्षक 'जैनभक्ति और ध्यान' रखा गया है। इस अध्याय की मुख्य बातें इसप्रकार हैं ह

(1) विश्व में जितने धर्म हैं, उनमें अधिकांश यह मानते हैं कि जगत में कोई एक ऐसी ईश्वरीय सत्ता है, जिसने इस जगत को बनाया है और वही इस जगत का नियंत्रण भी करती है; वहीं जैनदर्शन की मान्यता एकदम स्पष्ट है कि ऐसी कोई सत्ता इस जगत में नहीं है, जो इस जगत का नियंत्रण करती हो, जिसने इसे बनाया हो या जो इसका विनाश कर सकती है।

(2) स्वार्थपूर्ति के लिए की गई भक्ति भी कोई भक्ति है ? वह तो व्यापार है, व्यापार भी हल्के स्तर का।

(3) गुणों में अनुराग तो निःस्वार्थ भाव से ही होता है। सच्चे भक्त भी निःस्वार्थ भाव से ही भक्ति करते हैं।

(4) हम अपना कल्याण करने में पूर्णतः समर्थ हैं, उसमें अन्य के सहयोग, समर्पण, सेवा, आशीर्वाद की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है।

(5) आत्मा का ध्यान ही धर्म है। आत्मा का ध्यान करने के लिए पहले उसे जानना जरूरी है; अतः धर्म करने की इच्छा रखनेवाले को सर्वप्रथम आत्मा को जानने का पहिचानने का प्रयास करना चाहिए। यही मार्ग है, शेष सब अमार्ग है, छलावा मात्र है।

### वैशिष्ट्य ह

(1) विदेश यात्रा पर लिखी गई यह एक सुंदर कृति है।

(2) इस कृति में मात्र विदेश यात्रा का वर्णन ही नहीं है, अपितु आध्यात्मिक विषय-वस्तु को प्रस्तुत करके इस कृति की उपयोगिता को बढ़ा दिया है।

(3) विदेशों में भी भारतीय लोगों में अभी भी भारतीय संस्कृति एवं धर्म किसतरह जीवित है, उसका ज्ञान इस कृति से होता है।

(4) यह कृति जैनधर्म में विदेश यात्रा पर लिखी एकमात्र अद्भुत कृति है। ऐसी कृति अभी कोई उपलब्ध नहीं होती है।

### ● वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका

**नामकरण** -जैनदर्शन एवं नैतिक शिक्षा के संस्कारों से संस्कारित करने हेतु देश में अनेक स्थानों पर जैन स्कूलों व पाठशालाओं में वीतराग-विज्ञान का शिक्षण चल रहा है। इस शिक्षण का प्रशिक्षण देने के लिए प्रस्तुत निर्देशिका तैयार की गई। अतः इसका नामकरण वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका रखा गया, जो उपयुक्त है।

**आधार स्रोत ह** प्रस्तुत कृति के आधार स्रोत के विषय में इस कृति का प्रथमावृत्ति के प्रकाशकीय में लिखा है ह

“ पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा गठित पाठ्यक्रम समिति ने कोमलमति बालकों को तत्त्वबोध कराने के उद्देश्य से एक नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया था एवं तदनुरूप पाठ्यपुस्तकें तैयार कराईं तथा उनकी परीक्षा लेने हेतु वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की भी स्थापना की। कुशल अध्यापन हेतु अध्यापक बंधुओं को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण शिविर की एक योजना तैयार की गई; जिसके माध्यम से ग्रीष्मावकाश में 20 दिन के शिविरों द्वारा उनको अध्यापन की प्रायोगिक और सैद्धान्तिक पद्धति से परिचित कराया जाता है।

संस्था के सुयोग्य एवं उत्साही संयुक्त मंत्री श्री हुकमचन्दजी शास्त्री ने स्वयं ही प्रशिक्षण-शिविर की योजना प्रस्तुत की थी एवं तदर्थ स्वतंत्ररूप



से आवश्यक नोट्स आदि तैयार करके 2 वर्ष तक उन्हीं नोट्स के आधार पर अध्यापन किया।

उपर्युक्त प्रशिक्षण काल में यह अनुभव किया गया कि आवश्यक निर्देश लिखने-पढ़ने में बहुत-सा अमूल्य समय व्यर्थ चला जाता है, अतः अगर एक पाठ्य-पुस्तक तैयार हो जावे तो ऐसे बहुमूल्य समय का विशेष उपयोग हो सके।

उपर्युक्त दोनों शिविरों की अभूतपूर्व सफलता से उत्साहित होकर हमने इस वर्ष 1971 के मई जून में होने वाले शिविर में जिनवाणी के प्रबल प्रचारक श्री कानजी स्वामी से पधारने का सविनय अनुरोध किया। उनकी पावन स्वीकृति मिल जाने से अति उत्साहित होकर समिति ने विचार किया कि इस वर्ष ही प्रशिक्षण की पाठ्यपुस्तक तैयार करके प्रकाशित की जाये और यही गुरुतर भार श्री पण्डित हुकमचन्दजी भारिल्ल को सौंपा गया। परिणामस्वरूप प्रस्तुत कृति आपके सामने है।<sup>28</sup>”

इसप्रकार उक्त कथन से स्पष्ट है कि प्रशिक्षण-शिविरों में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए इस कृति का निर्माण हुआ।

**विषय-वस्तु** ह्व प्रस्तुत कृति के प्रारंभ में तीन दोहे तथा एक सोरठा मंगलाचरण के रूप में है। जिसमें आत्मज्ञान को ज्ञान कहा है तथा वीतराग-विज्ञान की महत्ता बतलाई है तथा इस कृति की रचना का हेतु बतलाया है कि सभी को आत्मज्ञान प्राप्त हो, यथा ह्व

“घर-घर आत्मज्ञान प्राप्ति हेतु यह लिख रहा।

**वीतराग-विज्ञान, प्रशिक्षण निर्देशिका।।<sup>29</sup>”**

यह पुस्तिका तीन अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में प्रशिक्षण संबंधी सामान्य जानकारी देते हुए कहा है कि शिक्षण त्रिमुखी प्रक्रिया है। उसके तीन केन्द्र-बिन्दु होते हैं ह्व शिक्षक, छात्र और विषय। शिक्षण की सफलता सुयोग्य शिक्षकों पर निर्भर है। छात्रों को प्रस्तुत विषयवस्तु का

ज्ञान हृदयंगम कराने के लिए अध्यापक को जागरुक, मननशील, मनोवैज्ञानिक होना आवश्यक है। एक कुशल अध्यापक को निम्नलिखित बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए ह्व

(1) कक्षा में सर्वप्रथम बोर्ड पर नाम, कक्षा, विषय, प्रकरण एवं दिनांक लिख देना चाहिए।

(2) कक्षा में अध्यापक की दृष्टि छात्रों पर रहनी चाहिए।

(3) अध्यापक को न तो अति मंद स्वर में ही बोलना चाहिए, न अति तेज में।

(4) छात्रों के स्तर एवं पूर्व ज्ञान को आधार मानकर अपनी बात समझनी चाहिए।

(5) विषय को इसतरह उठाना चाहिए कि छात्रों में प्रस्तुत विषय को जानने की जिज्ञासा जागृत हो।

(6) सरलता से कठिनता की ओर, उदाहरण से सिद्धान्त की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर जाना चाहिए।

वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण में प्रयोग में आने वाले प्रमुख पारिभाषिक शब्द निम्न हैं ह्व

(1) **पाठयोजना** ह्व पाठ योजना कक्षा कार्य की पूर्व निर्धारित योजना है, जो अध्यापक के कार्य को नियमित, नियोजित और व्यवस्थित करती है।

(2) **प्रकरण** ह्व पाठ के जिस अंश का ज्ञान छात्रों को देना हो उसे प्रकरण कहते हैं।

(3) **उद्देश्य** ह्व (अ) सामान्य ह्व ये सब पाठों में समानरूप से पाये जाते हैं। (ब) विशेष ह्व ये पाठ विशेष से संबंधित होते हैं।

(4) **उद्देश्य कथन** ह्व पाठ प्रारंभ करने के पूर्व उद्देश्य बताने का उद्देश्य कथन कहते हैं।

(5) **पूर्वज्ञान** ह्व प्रस्तुत पाठ को पढ़ाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बालकों को उक्त विषय का पहले से कितना ज्ञान है।

(6) सामग्री ह्व (क) आवश्यक सामग्री ह्व बोर्ड, चाक, डस्टर आदि (ख) सहायक सामग्री ह्व पाठ्यपुस्तक, नक्शा, चार्ट आदि।

(7) प्रस्तुतीकरण ह्व प्रस्तुतीकरण में किसी भी पाठ को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने के पूर्व अध्ययन और अध्यापन की सुविधा की दृष्टि से यह तय किया जाता है कि अमुक पाठ कितने दिन में एवं एक दिन में उसका कितना भाग पढ़ाया जायेगा।

(8) आदर्शवाचन ह्व कक्षा में पाठ पढ़ाते समय पाठ्य-वस्तु को अध्यापन उचित आरोह-अवरोह के साथ जो स्वयं वाचन करते हैं, उसे आदर्श वाचन कहते हैं। आदर्शवाचन प्रायः इन तीन शैलियों में होता है ह्व (क) संवाद शैली (ख) गद्य शैली (ग) पद्य शैली।

(9) अनुकरण वाचन ह्व जिस पाठ का अध्यापक ने आदर्श वाचन किया है। उसे उसी के अनुकरण पर छात्रों में से किन्हीं एक, दो या अधिक छात्रों से पृथक्-पृथक् वाचन कराने को अनुकरण वाचन कहते हैं।

(10) सामान्यार्थ विवेचन ह्व पाठ के पठित पद्यांश का सामान्य अर्थ बताने को सामान्यार्थ विवेचन कहते हैं।

(11) विचार-विश्लेषण ह्व पाठ के पठित गद्यांश या संवादांश में प्रतिपादित विचारों के सुबोध व सरल भाषा में छात्रों को समझाना ही विचार-विश्लेषण है।

(12) प्रश्नोत्तर ह्व (क) बोधगम्य प्रश्नोत्तर ह्व जिन सिद्धान्तों, तथ्यों एवं परिभाषाओं का बोध छात्रों को कराना हो, उन्हें प्रश्नोत्तर में अध्यापक द्वारा लिपिबद्ध करके लाभ बोधगम्य प्रश्नोत्तर कहलाते हैं।

(ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर ह्व इस पद्धति में प्रश्नोत्तर द्वारा मौखिक अभ्यास कराया जाता है। इसमें निम्न चार सोपानों में पाठ तैयार कराने में सुविधा रहती है। (1) है या नहीं, (2) इनमें से क्या है या कौन है, (3) इसको क्या कहते हैं ? (4) किसे कहते हैं या क्या है ?

(ग) मूल्यांकन प्रश्नोत्तर ह्व पढ़ाया गया पाठ छात्रों की समझ में आया या नहीं एवं पूर्वदिन पढ़ाये गये पाठ को छात्रों ने तैयार किया या नहीं, इसकी जाँच के लिए बनाये गये प्रश्नोत्तर मूल्यांकन प्रश्नोत्तर कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं ह्व (1) समापन मूल्यांकन (2) पूर्व पाठ मूल्यांकन।

(13) सारांश कथन ह्व अंत में पाठ्यवस्तु का संक्षेप में सारांश बताना सारांश कथन कहलाता है।

(14) समापन ह्व पाठ समाप्त करने से पूर्व पढ़ाये गये पाठ में से छात्रों से कुछ मूल्यांकन के प्रश्न करना समापन है।

(15) गृहकार्य ह्व पाठ से संबंधित आवश्यक कार्य अगले घर से करके लाने के लिए दिया जाता है, उसे गृहकार्य कहते हैं।

(16) अध्यापक कथन ह्व अध्यापक पाठ योजना समझाने के लिए जो आवश्यक कथन यथास्थान करते हैं, उसे अध्यापक कथन कहते हैं।

(17) आधार परिचय ह्व पाठों से संबंधित आधार ग्रंथों एवं ग्रंथकारों का परिचय देना ही आधार परिचय है।

इसके पश्चात् द्वितीय अध्याय है। जिसमें बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 के पाठों के आदर्श पाठ योजनाएँ व पाठ निर्देश दिए हैं। कुल 5 पाठ योजनाएँ एवं 19 पाठ निर्देश हैं। एक परिशिष्ट भी दिया है।

तीसरे अध्याय में वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-1, 2, 3 के पाठों की आई पाठ योजनाएँ व पाठ निर्देश दिये हैं। एक परिशिष्ट दिया है।

पाठ योजनाओं में निम्न बिन्दुओं का क्रम रखा है ह्व

(1) प्रकरण (2) उद्देश्य (3) पूर्वज्ञान (4) सहायक सामग्री (5) उद्देश्य कथन (6) प्रस्तुतीकरण (क) आदर्शवाचन (ख) अनुकरण वाचन (3) विचार-विश्लेषण (घ) बोधगम्य प्रश्नोत्तर (ङ) वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर (च) सारांश कथन (ल) समापन (र) गृहकार्य। इसप्रकार सुन्दर योजना प्रस्तुत की है।

### वैशिष्ट्य ह

(1) जैन शिक्षण में प्रशिक्षण की यही एक मात्र कृति है। इसके पूर्व कोई कृति उपलब्ध न थी, न वर्तमान में इसके अतिरिक्त अन्य कोई इसप्रकार के प्रशिक्षण की कोई कृति उपलब्ध है।

(2) प्रशिक्षण देने की विधि का विवेचन सुंदर रीति से किया गया है।

(3) पाठयोजना में जिन बिन्दुओं का प्रयोग किया है; वे सार्थक व उपयोगी हैं।

(4) वर्तमान में बी.एड. व एस.टी.एस.कॉलेजों में जो पाठ योजनाएँ बनाई जाती हैं, वे व्यावहारिक जीवन में उपयोगी कम जान पड़ती हैं तथा न ही अध्यापक उसका अध्यापन के समय प्रयोग करते हैं। जबकि डॉ. भारिल्ल द्वारा प्रस्तुत पाठ योजना के अनुसार प्रत्येक अध्यापक इस विधि का सहजता से नित्य उपयोग कर सकता है तथा प्रारंभिक कक्षाओं में ही सरल रीति से इस विधि द्वारा अध्यापन कार्य संभव है।

### ● अहिंसा महावीर की दृष्टि में

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में भगवान महावीर की दृष्टि में अहिंसा का स्वरूप क्या है ? इसका प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से इस कृति का नामकरण **अहिंसा : महावीर की दृष्टि में** ह रखा गया है, जो उचित जान पड़ता है।

**आधार स्रोत ह** अहिंसा : महावीर की दृष्टि में ह इस विषय पर इनके प्रवचन की विशेष माँग जैन समाज में तो रही है; जैनेतर समाज में भी उक्त प्रवचन को काफी सराहा जाता है। देश-विदेश में शताधिक बार वे इस विषय पर प्रवचन कर चुके हैं।

जैनधर्म के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा' के इस लोकप्रिय व्याख्यान के प्रकाशन की माँग काफी समय से निरंतर बनी हुई थी। राजस्थान के भूतपूर्व उद्योग व स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन के विशेष अनुरोध को दृष्टि में रखते हुए डॉ. साहब के टेप प्रवचनों के आधार पर इस व्याख्यान को

लिपिबद्ध किया गया और तारण-तरण जयंती के अवसर पर मई, 1985 में 'गागर में सागर' पुस्तक के अंतिम प्रवचन के रूप में इसे प्रकाशित किया गया। पश्चात् 3 जुलाई, 1985 को पुस्तकाकार रूप में इसे 10 हजार की संख्या में हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित किया गया। इसप्रकार कहा जा सकता है कि इस विषय को पुस्तकाकार देने के प्रेरणा स्रोत त्रिलोकचंदजी जैन रहे हैं।

**विषयवस्तु ह** कृति के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हुए कहा गया कि वर्धमान हमारे ध्यान में विचरण करें। ऐसे संवदेनशील जमाने (एक जमाना वह था, जब किसी मुहल्ले में यदि गाय मर जाती थी तो सारा मुहल्ला तब तक मुँह में पानी भी नहीं लेता था, जबतक कि गाय की लाश न उठ जाये, वही एक जमाना यह है कि श्मशान में भी ठाठ से चाय चलती है।) में भी भगवान महावीर को देह छोड़ने के सैकड़ों वर्षों बाद याद करते हैं। ध्यान में विचरण करने की बात करते हैं; वह इसलिए कि उन्होंने हमें भौतिक रूप से तो कुछ भी नहीं दिया, पर उन्होंने हमें कुछ ऐसे सिद्धांत दिये, ऐसा मार्ग बताया कि जिन्हें हम अपना लेवें, जिस पर हम चलें तो आज भी सुख-शांति प्राप्त कर सकते हैं।

(1) जो लोग भगवान महावीर को आउट ऑफ डेट कहते हैं, उनकी यह धारणा मिथ्या सिद्ध करते हुए लेखक ने कहा ह

“महावीर आउट ऑफ डेट नहीं, आज भी एकदम अप टू डेट हैं।”

मेरी यह बात शायद उन लोगों को पसंद न आये, जो ऐसे कपड़े पहिनकर, ऐसे बाल कटाकर कि दूर से देखने पर पता ही न चले कि लड़का है या लड़की, अपने को अप टू डेट समझते हैं; पर ध्यान रहे, कोई व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट नहीं होता, अपितु अपने विचारों से होता है। जो व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट बनेगा, उसे एक न एक दिन आउट ऑफ डेट होना ही होगा; क्योंकि ड्रेस सदा एक-सी नहीं रहती, बदलती ही रहती है।

यदि ड्रेस से अप टू डेट माने तब भी भगवान महावीर आउट ऑफ डेट नहीं हो सकते, क्योंकि वे विदाउट ड्रेस थे।<sup>30</sup>”

आज हम बारूद के ढेर पर बैठे हैं, कहीं से भी कोई एक चिनगारी उठे और सारी दुनिया क्षणभर में तबाह हो जाए ह्व इस स्थिति में पहुँच गये हैं। आज हिंसा खतरनाक हो उठी है, अतः भगवान महावीर की अहिंसा की आवश्यकता आज जितनी है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी। अतः महावीर आउट ऑफ डेट नहीं हुए हैं, अपितु एकदम अप टू डेट हैं एवं आज के सदंर्भ में भगवान महावीर के अहिंसा सिद्धांत की उपयोगिता है।

(2) लेखक ने दूसरा बिंदु अहिंसा के स्वरूप का है; जो आचार्य अमृतचन्द्र निम्नांकित श्लोक के आधार पर स्पष्ट किया गया है ह्व

“अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।

तेषामेवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥<sup>31</sup>”

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है ह्व यही जिनागम का सार है।

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है ह्व यह कहकर यहाँ भावहिंसा पर विशेष बल दिया है, द्रव्यहिंसा की चर्चा तक नहीं की; अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या महावीर ने द्रव्यहिंसा की चर्चा तक नहीं की, क्या महावीर द्रव्यहिंसा को हिंसा ही नहीं मानते हैं ?

ऐसी बात नहीं है। भगवान महावीर द्रव्यहिंसा को भी स्वीकार करते हैं। पर उनके आशय को हमें गहराई से समझना होगा। हिंसा तीन प्रकार से होती है ह्व मन से, वचन से, काय से।

“काय की हिंसा सरकार रोकती है तो वाणी की हिंसा को समाज रोकती है, पर मन में उत्पन्न होने वाली, आत्मा में उत्पन्न होने वाली

हिंसा को न तो सरकार रोक सकती है और न समाज; उसे धर्म ही रोक सकता है।<sup>32</sup>”

भगवती अहिंसा भगवान महावीर की साधना की चरम उपलब्धि है; उनकी पावन दिव्यध्वनि का नवनीत है, जन्म-मरण का अभाव करने वाला रसायन है, परम अमृत है। लेखक ने अंत में कहा है कि इस पावन अहिंसा को जो अपनायेगा वही सुखी होगा।

### वैशिष्ट्य ह्व

- (1) आज के संदर्भ में भगवान महावीर के अहिंसा सिद्धांत की उपयोगिता पर सुंदर रीति से विवेचन किया गया है।
- (2) अहिंसा का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसे सरलतम रीति से निर्भयता के साथ प्रस्तुत किया है।
- (3) द्रव्यहिंसा भावहिंसा पूर्वक ही होती है, यह सिद्ध किया है।
- (4) रागादि भावों की उत्पत्ति मात्र से ही हिंसा हो जाती है। अनेक उदाहरणों से विषय-वस्तु को समझाया गया है।
- (5) रागादि भावों को ही हिंसा क्यों कहा-इसे तर्कमय शैली में प्रस्तुत किया है।
- (6) संपूर्ण लेख व्याख्यान शैली में ही लिपिबद्ध किया गया है।
- (7) अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए शराब बन्दी, एक मास्टरजी, सभा में उपद्रव, तीन बेटों संबंधी विविध उदाहरण दिये हैं।

### ● निमित्तोपादान

**नामकरण** – जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों के अंतर्गत आने वाले सिद्धान्तों में से एक सिद्धांत निमित्तोपादान भी है ह्व प्रस्तुत कृति में इसी निमित्तोपादान सिद्धांत पर अनुशीलन किया गया है। इसी कारण इस कृति का नामकरण निमित्तोपादान रखा गया है।

**आधार स्रोत** – बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के प्रारंभ में ‘निमित्तोपादान’ विषय आध्यात्मिक संत कानजीस्वामी के कारण बहुचर्चित रहा। आगे

चलकर एक समय यह आया कि सम्यक्परिज्ञान के अभाव में यह विषय विवाद का विषय बन गया। इसी विषय को आगम के आलोक में सुव्यवस्थित प्रतिपादन कर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाये तो संभवतः विवाद समाप्त हो सकता है ह्व इसी बात को ध्यान में रखकर इस कृति का निर्माण हुआ है। जैसा कि डॉ. भारिल्ल ने स्वयं लिखा है ह्व

“निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्धपर्याय जैसे विवादास्पद विषय भी जब आगम के आलोक में सरल-सुबोध-भाषा में प्रस्तुत किए गए; तब न केवल विद्वद्वर्ग एवं समाज ने उन्हें सराहा, अपितु तत्संबंधी विवाद भी लगभग समाप्त हो गये हैं। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि उपादाननिमित्त का भी इसीप्रकार अनुशीलन किया गया तो अपेक्षित लाभ अवश्य होगा।”<sup>33</sup>

**विषयवस्तु** – प्रस्तुत कृति मुख्यतः दो खंडों में विभाजित है। प्रथम ‘निमित्तोपादान : एक अनुशीलन’ दूसरा ‘निमित्तोपादान : प्रश्नोत्तर खंड। अनुशीलन खंड में निमित्तोपादान का परिचय, उसका स्वरूप तथा भेद-प्रभेद के विषय में आगम के उदाहरणों सहित चर्चा की गई है। प्रश्नोत्तर खंडों में बीस प्रश्न हैं। ये सभी इस विषय-वस्तु को विशेष स्पष्ट कर देते हैं।

जगत का प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। पदार्थों के इस परिणमन को पर्याय का कार्य कहते हैं। कार्य कारणपूर्वक ही होता है और कार्य की उत्पादक सामग्री को ही कारण कहा जाता है। वह कार्य की उत्पादक सामग्री उपादान और निमित्तों के रूप में होती है। अतः कारण भी दो प्रकार के माने गये – उपादान कारण और निमित्त कारण। जो स्वयं कार्यरूप में परिणमित हो, उसे उपादान कारण कहते हैं और जो स्वयं तो कार्यरूप परिणमित न हो, परंतु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ जाये, उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे घट रूप

कार्य का मिट्टी उपादान कारण है और चक्र, दण्ड एवं कुम्हार आदि निमित्त कारण हैं। इस विषय का ही विस्तार इस कृति में है। इस विषय पर विस्तृत विवेचन अध्याय 5 “डॉ. भारिल्ल : दार्शनिक दृष्टिकोण” के अंतर्गत किया जाना है। अतः यहाँ पर विषय-वस्तु के विवेचन को गौण किया गया है।

प्रश्नोत्तर खंड में जनमानस और विद्वानों के मन में उठने वाले प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है। यहाँ 20 प्रश्न उठाये हैं और सुंदर रीति से समाधान प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए एक प्रश्न दृष्टव्य है ह्व

प्रश्न संख्या (17) निमित्त उपादान के स्वरूप समझने से वास्तविक लाभ क्या है? उत्तर – “निमित्त उपादान का स्वरूप समझने से यह बात अत्यंत स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं के परिणमन का ही कर्ता है, अन्य पदार्थों के परिणमन में तो वह मात्र निमित्त ही होता है। इसप्रकार उसके माथे से पर के कर्तृत्व का बड़ा भारी बोझा सहज ही उतर जाता है। और वह अपने-आप में बहुत हल्कापन अनुभव करता है।

इसीप्रकार जब वह यह जान लेता है कि मेरे भले-बुरे का संपूर्ण उत्तरदायित्व मेरा ही है, मेरे परिणमन में पर पदार्थ तो निमित्त मात्र है, उनका कोई भी हस्तक्षेप मेरे में नहीं होता तो इस आत्मा का अनंत भय तो समाप्त हो ही जाता है, दूसरों के प्रति होने वाला द्वेषभाव भी कम हो जाता है समाप्त-सा ही हो जाता है; क्योंकि दूसरे पदार्थों से द्वेष तो इस कारण ही होता था कि वह समझता था कि इसने मेरा बुरा किया है। जब इसने जान लिया कि मेरे बुरे होने में इसका रंचमात्र भी योगदान नहीं है तो सहजभाव से ही उसके प्रति द्वेष समाप्त हो जाता है।

इसीप्रकार जब यह जान लिया जाता है कि कोई पर पदार्थ मेरा भला भी नहीं करता है, न ही कर सकता है तो फिर पर पदार्थों के साथ रागभाव भी नहीं होता। पर पदार्थों से राग-द्वेष होने के पीछे मूल कारण तो यह

मूढ़भाव मिथ्यात्व होता है कि मैं पर का भला-बुरा कर सकता हूँ या पर पदार्थ मेरा भला-बुरा कर सकते हैं, करते हैं।

यह मूढ़भाव ही अनंत आकुलता का कारण है। निमित्त उपादान का सच्चा स्वरूप समझ में आ जाने से यह मूढ़भाव समाप्त हो जाता है और फिर उस मूढ़भाव से होने वाली आकुलता भी नहीं होती।<sup>34</sup> इसतरह सरल रीति से विषय-वस्तु का प्रतिपादन किया है। अंत में दो परिशिष्ट दिए हैं।

(1) उपादान निमित्त दोहा : कविवर बनारसीदासजी। (2) उपादान निमित्त दोहा : भैया भगवतीदासजी, जिससे इस कृति का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है।

### वैशिष्ट्य

- (1) प्रस्तुत कृति के कवर पृष्ठ पर दिये गये चित्र निमित्तोपादान की विषय-वस्तु को मौन रूप से सहज प्रस्तुत कर रहे हैं।
- (2) निमित्तोपादान विषय पर गद्य में स्पष्ट करने वाली यह एकमात्र मौलिक कृति है; जो सामान्य पाठक को भी इस विषय में सहज प्रवेश करा देती है।
- (3) प्रश्नोत्तर खंड में लंबे प्रश्न अटपटे से लगते हैं; पर उन प्रश्नों का विस्तार आवश्यक भी जान पड़ता है।
- (4) विषय-वस्तु के प्रतिपादन में सरल-सुबोध तर्कमय, उदाहरण तथा उद्धरण शैली का प्रयोग कर कृति की प्रामाणिकता को सिद्ध कर दिया है।
- (5) कृति के अंत में जो दो परिशिष्ट दिये गये हैं, वे भी पद्यरूप होने से पाठकों को समझने व याद करने के लिए उपयुक्त है।

### ● धर्म के दशलक्षण

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में धर्म के दशलक्षणों का ही विवेचन होने से उक्त कृति का नामकरण धर्म के दशलक्षण रखा गया है, जो उपयुक्त जान पड़ता है।

**आधारस्रोत** – डॉ. भारिल्ल दशलक्षण पर्व पर प्रतिवर्ष जहाँ भी जाते रहे हैं, वहाँ दशधर्मों पर इनके मार्मिक व्याख्यान होने पर आबाल-गोपाल सभी उनसे सीमातीत प्रभावित होते रहे हैं। इससे प्रभावित होकर निरंतर इन्हें लिपिबद्ध कर जन-जन तक पहुँचाने की माँग उठती रही। जिसके फलस्वरूप डॉ. भारिल्ल 'आत्मधर्म' पत्रिका के संपादकीय के रूप में दशधर्मों पर लेखमाला, सन् 1976 में प्रारंभ की। जब यह लेखमाला पाठकों ने पढ़ी तो पुस्तकाकार प्रकाशित होने की माँग विविध भाषा में उठी। अतः इसे सन् 1978 अक्टूबर माह में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। यह गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी भाषाओं में भी समय-समय पर प्रकाशित हुई।

**विषय-वस्तु** – यह कृति बारह निबंधों में निबद्ध है। प्रथम निबंध 'दशलक्षण महापर्व' है; जिसमें कहा गया है कि इस पर्व का संबंध खाने, खेलने से न होकर खाना और खेलना त्यागने से है। यह भोग का नहीं, त्याग का पर्व है, इसलिए महापर्व है।

पर्व दो प्रकार के होते हैं – (1) शाश्वत और (2) सामयिक (तात्कालिक)। तात्कालिक पर्व भी दो प्रकार के होते हैं – (1) व्यक्ति विशेष से संबंधित और (2) घटना विशेष से संबंधित।

दशलक्षण महापर्व त्रैकालिक शाश्वत पर्व है; जो आत्मा के क्रोधादि विकारों के अभाव के फलस्वरूप प्रकट होने वाले उत्तमक्षमादि भावों से संबंध रखता है।

दशलक्षण महापर्व संप्रदाय विशेष का नहीं, सबका है। भले ही उसे मात्र संप्रदाय विशेष के ही लोग क्यों न मानते हो, पर वह सांप्रदायिक भावनाओं पर आधारित पर्व नहीं है, उसका आधार सार्वजनिक है, विकारी भावों का परित्याग एवं उदात्त भावों का ग्रहण ही उसका आधार है, जो सभी के लिए समान रूप से हितकारी है। अतः यह पर्व मात्र जैनों का नहीं, जन-जन का पर्व है। इसे संप्रदाय विशेष का पर्व मानना स्वयं सांप्रदायिक दृष्टिकोण है।

ये दशधर्म नहीं, धर्म के दशलक्षण हैं, जिन्हें संक्षेप में दशधर्म शब्दों से भी अभिहित कर दिया जाता है। ये आत्मारोधना के फलस्वरूप प्रगट होने वाले धर्म हैं, लक्षण हैं, चिह्न हैं।

दूसरा निबंध 'उत्तम क्षमा' है, जिसमें कहा गया है कि क्षमा आत्मा का स्वभाव है। क्षमा स्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो क्रोध के अभाव रूप शांति स्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे भी क्षमा कहते हैं।

क्रोध आत्मा का एक विभाव है और वह क्षमा के अभाव रूप में प्रकट हुआ है। जगत में जो कुछ भी बुरा नजर आता है; वह सब क्रोधादि विकारों का ही परिणाम है। इस बात की सिद्धि अनेक उदाहरणों से सिद्ध की है।

क्रोध एक शांति भंग करने वाला मनोविकार है। वह क्रोध करने वालों की मानसिक शांति तो भंग कर ही देता है, साथ ही वातावरण को भी क्लुषित और अशांत कर देता है। क्रोध का एक खतरनाक रूप है वैर। यह क्रोध का ही एक विकृत रूप है। वैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है। वैर पीढ़ी-दर पीढ़ी चलता रहता है। झल्लाहट, चिड़चिड़ाहट, क्षोभ आदि भी क्रोध के ही रूप हैं। इस निबंध में डॉ. भारिल्ल ने कविवर दानतरायजी की दशलक्षण पूजन के उत्तम क्षमा संबंधी पंक्तियों की भी बड़ी सटीक व्याख्या की है, पाठकों को मूलकृति अवश्य पढ़ना चाहिए।

अनंतानुबंधी क्रोध के अभाव से उत्तम क्षमा प्रकट होती है और अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोध का अभाव उत्तम क्षमा को पल्लवित करता है तथा संज्वलन क्रोध का अभाव उत्तम क्षमा को पूर्णता प्रदान करता है।

अनंत संसार का अनुबंध करने वाला अनंतानुबंधी क्रोध आत्मा के प्रति अरुचि का नाम है। ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की अरुचि ही अनंतानुबंधी क्रोध है।

आत्मा का अनुभव ही उत्तमक्षमा की प्राप्ति का वास्तविक उपाय है। क्षमास्वभावी आत्मा का अनुभव करने पर, आश्रय करने पर ही पर्याय में उत्तमक्षमा प्रकट होती है।

तीसरे निबंध 'उत्तममार्दव धर्म' में कहा गया है कि मार्दवस्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो मान के अभाव स्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे भी मार्दव कहते हैं।

मानकषाय के कारण मानी अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा मानने लगता है। उसमें समुचित विनय का भी अभाव हो जाता है।

डॉ. भारिल्ल कहते हैं ह

“जिनका आत्मिक स्वास्थ्य कमजोर होता है, उन्हें निंदा और प्रशंसा दोनों ही परेशान करते हैं। निंदा की गरम हवा लगने से उन्हें क्रोध की लू लग जाती है और प्रशंसा की ठंडी हवा लगने से मान का जुखाम हो जाता है। प्रशंसा निंदा से अधिक खतरनाक है।”<sup>35</sup>

मान के अनेक रूप हैं। दीनता भी मान का ही रूप है। ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, रूप आदि आठ मद मान के ही रूप हैं। लेखक ने इनका विश्लेषण करते हुए लोगों की गलत धारणाओं का निराकरण किया है और कहा है कि ज्ञानमद ज्ञानी को नहीं, अज्ञानी को होता है; ज्ञानमद ही नहीं आठों मद अज्ञानियों के ही होते हैं। स्वाभिमान का सही स्वरूप न पहिचानकर स्वाभिमान के नाम पर अज्ञानी मान ही करता रहता है। व्यक्ति सब कुछ छोड़ सकता है पर मान छोड़ना कठिन है। इसे रावण द्वारा सीता हरण का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।

जो पर को अपना माने उसे मुख्यतः मान होता है। अतः मान छोड़ने के लिए पर को अपना मानना छोड़ना होगा।

चतुर्थ निबंध 'उत्तम आर्जवधर्म' का है। यहाँ कहा गया है कि आर्जवस्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में छल-कपट मायाचार

को अभावरूप शांति-स्वरूप जो पर्याय प्रकट होती है, उसे भी आर्जव कहते हैं।

आर्जव धर्म की विरोधी माया कषाय है। माया कषाय के कारण आत्मा में स्वभावगत सरलता न रहकर कुटिलता उत्पन्न हो जाती है। मायाचारी व्यक्ति अपने सब कार्य मायाचार से ही सिद्ध करना चाहता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि लौकिक कार्यों की सिद्धि मायाचार से नहीं, पूर्व पुण्योदय से होती है और पारलौकिक कार्य की सिद्धि में पाँचों समवायों के साथ पुरुषार्थ प्रधान है।

पण्डित दानतरायजी की दशलक्षण पूजन की ह्व “मन में होय से वचन उचरिये, वचन होय सो तन सो करिये।” ह्व इस पंक्ति की डॉ. भारिल्ल ने गंभीर व्याख्या इस निबंध में की। आम धारणा यह है कि मन, वचन, काय की एकरूपता का नाम आर्जव धर्म है, उसे अनेक तर्क देकर नकारा गया है। यदि इसी का नाम आर्जव धर्म कहोगे तो सिद्धों के आर्जव धर्म नहीं ठहरेगा; क्योंकि उनके मन, वचन, काय तीनों ही नहीं होते, जबकि संपूर्ण आर्जव धर्म के धनी सिद्ध भगवान है।

इस निबंध में कहा गया है कि ‘मन में होय सो वचन उचरिये’ का आशय मात्र यह है कि मन को इतना पवित्र बनाओ कि उसमें कोई खोटा भाव आवे ही नहीं। जिनके हृदय में निरंतर अपवित्र भाव ही आया करते हैं, उनके लिए तो लेखक कहता है ह्व “मन में होय सो मन में रखिये, वचन होय तन सो न करिये” क्यों? क्योंकि आज लोगों के मन इतने अपवित्र हो गये हैं, उनके मनो में इतनी हिंसा समा गई है कि यदि वह वाणी में फूट पड़े तो जगत में कोलाहल मच जाये और यदि जीवन में आ जाये तो प्रलय होने में देर न लगे। इसीप्रकार मन इतना वासनामय और विकृत हो गया है कि यदि मन का विकार वाणी और काया में फूट पड़े तो किसी भी माँ बहिन की इज्जत सुरक्षित न रहे।”<sup>36</sup>

लेखक ने कहा है कि श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का सम्यक् परिणमन एवं एकरूपता ही वीतरागी सरलता है और वही वास्तविक उत्तम आर्जव धर्म है। लौकिक में छलकपट के अभावरूप मन-वचन-काय की एकरूपता रूप सरल परिणति को व्यवहार आर्जव धर्म कहा जाता है।

पंचम निबंध ‘उत्तम शौच’ में कहा गया है कि सम्यग्दर्शन के साथ होने वाली वीतरागी पवित्रता ही उत्तम शोचधर्म है। शोचधर्म की विरोधी लोभकषाय मानी गयी है। लोभ को पाप का बाप कहा जाता है; क्योंकि जगत में ऐसा कौनसा पाप है, जिसे लोभी नहीं करता हो।

निबंधकार कहते हैं कि आज की दुनिया में रुपये-पैसे के लोभ को ही लोभ माना जाता है। कोई विषय-कषाय में ही क्यों न खर्चे, पर दिल खोलकर खर्च करने वालों को लोभी कहा जाता है; परंतु पैसे का ही लोभ सबकुछ नहीं है, लोभ तो कई प्रकार का होता है। यश का लोभ, रूप का लोभ, नाम का लोभ, काम का लोभ आदि। वस्तुतः तो पाँचों इंद्रियों के विषयों की एवं मानादि कषायों की पूर्ति का लोभ ही लोभ है। पैसे का लोभ तो कृत्रिम लोभ है। यह तो मनुष्यभव की नई कमाई है। लोभ तो चारों गतियों में होता है।

“कुछ लोभ तो इतना परिष्कृत होता है कि वह लोभ-सा ही नहीं दिखता। उसमें लोगों को धर्म का भ्रम हो जाता है। स्वर्गादि का लोभ इसी प्रकार का होता है।”<sup>37</sup>

स्वभाव से तो सभी आत्माएँ परमपवित्र ही हैं, विकृति मात्र पर्याय में है, पर जब पर्याय परमपवित्र आत्मस्वभाव का आश्रय लेती है, तो वह भी पवित्र हो जाती है। पवित्र स्वभाव को छूकर जो पर्याय स्वयं पवित्र हो जाये उस पर्याय का नाम ही शौचधर्म है।

छठे निबंध ‘उत्तमसत्य धर्म’ में बताया है कि सत्यधर्म की चर्चा जब भी चलती है, तब-तब प्रायः सत्यवचन को ही सत्यधर्म समझ लिया



जाता है। इतना ही नहीं, जब हम सत्यवचन का भी सही प्रयोजन नहीं समझते हैं तो फिर सत्यधर्म की बात तो बहुत दूर है।

यद्यपि सत्यवचन को भी जिनागम में व्यवहार से सत्यधर्म कह दिया गया है; पर जब गहराई में जाकर निश्चय से विचार करते हैं तो सत्यवचन और सत्यधर्म बिल्कुल भिन्न-भिन्न दो चीजें प्रतीत होती है। सत्यधर्म को वचन तक सीमित कर देने से बड़ा नुकसान यह हुआ कि उसकी खोज ही खो गई।

वाणी पुद्गल की पर्याय है और सत्य आत्मा का धर्म। आत्मा का धर्म आत्मा में रहता है, शरीर और वाणी में नहीं। जो आत्मा के धर्म हैं, उनका संपूर्ण धर्मों के धनी सिद्धों में होना अनिवार्य है। उत्तमक्षमादि दशधर्म जिनमें सत्यधर्म भी शामिल है, सिद्धों में विद्यमान है, पर उनमें सत्यवचन नहीं है। अतः सिद्ध होता है कि निश्चय से सत्यवचन सत्यधर्म नहीं है।

अंतरंग में विद्यमान ज्ञानानंदस्वभावी त्रैकालिक ध्रुव आत्मतत्त्व ही परम सत्य है। उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ ज्ञान, श्रद्धान एवं वीतराग परिणति ही उत्तम सत्यधर्म है।

सातवें निबंध 'उत्तमसंयम धर्म' को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि संयमन को संयम कहते हैं, अथवा व्रत, समिति, कषायों का निग्रह, मन वचन, काय दंडों का त्याग, इंद्रिय विषयों का जीतना संयम है।

संयम दो प्रकार का होता है - प्राणीसंयम और इंद्रियसंयम। छह काय के जीवों के घात एवं घात के भावों के त्याग को प्राणीसंयम और पंचेन्द्रियों तथा मन के विषयों के त्याग को इंद्रियसंयम कहते हैं।

संयम मात्र बाह्यप्रवृत्ति का नाम नहीं; बल्कि उस पवित्र आंतरिक वृत्ति का नाम है, जो मानवों में पाई जा सकती है, देवों में नहीं; चाहे उनकी बाह्य वृत्ति कितनी ही ठीक क्यों न हो।

डॉ. भारिल्ल ने लिखा है - "छहकाय के जीवों की रक्षा में उनका ध्यान परजीवों की रक्षा की ओर ही जाता है। 'मैं स्वयं भी एक जीव हूँ' इसका उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। परजीवों की रक्षा का भाव करके सब जीवों ने पुण्यबंध तो अनेक बार किया, किंतु परलक्ष्य से निरंतर अपने शुद्धोपयोगरूप भावप्राणों का जो घात हो रहा है; उनकी ओर इनका ही नहीं जाता।"<sup>38</sup>

आत्मा में जमना-रमना ही संयम है। अतः संयम को प्राप्त करने के लिए मात्र इंद्रियभोगों को ही नहीं, इंद्रियज्ञान को भी तिलांजलि देनी होगी, चाहे वह अंतर्मुहूर्त को ही सही। इंद्रियज्ञान में उपादेय बुद्धि तो छोड़नी ही होगी। उसके बिना तो सम्यग्दर्शन भी संभव नहीं है और सम्यग्दर्शन के बिना संयम होता नहीं है।

आठवें निबंध 'उत्तमतप धर्म' में लिखा है कि आत्मलीनता द्वारा विकारों पर विजय प्राप्त करना तप है। तप दो प्रकार का है - (1) बहिरंग (2) अंतरंग।

बहिरंग तप छह प्रकार का होता है - अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश।

अंतरंग तप छह प्रकार का है - प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग ध्यान।

उक्त समस्त तपों में चाहे बाह्यतप हो या अंतरंग। एक शुद्धोपयोगरूप वीतरागभाव की ही प्रधानता है। इच्छाओं के निरोधरूप वीतरागभाव ही सच्चा तप है। प्रत्येक तप में वीतरागभाव की वृद्धि होनी ही चाहिए तभी वह तप है अन्यथा नहीं।

डॉ. भारिल्ल ने इन बारह तपों का मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है तथा इनके क्रमिक विकास को तर्कमय शैली में प्रस्तुत करते हुए कहा है कि तप शरीर को सुखाने का नाम नहीं, इच्छाओं के निरोध का नाम है।

नवमें 'उत्तमत्याग' निबंध में प्रस्तुत किया गया है कि सामान्यजन तो त्यागधर्म व दान को एक ही मानते हैं; परंतु दोनों में बहुत अंतर है। यद्यपि जिनागम में दान को भी त्याग कहा गया है। दान की प्रेरणा भी भरपूर दी गई है। तथापि जब गहराई में जाकर निश्चय से विचार करते हैं तो दान और त्याग में महान् अंतर दिखाई देता है। त्याग धर्म है और दान पुण्य। त्याग पर को पर जानकर किया जाता है, दान में यह बात नहीं है। दान अपनी वस्तु का किया जाता है। त्याग वस्तु को अनुपयोगी अहितकारी जानकर किया जाता है, जबकि दान उपयोगी और हितकारी वस्तु का दिया जाता है। त्याग में आत्महित का भाव मुख्य है जबकि दान में परोपकार मुख्य है।

“दान यदि देने का नाम है तो त्याग नहीं लेने को कहते हैं। देने वाले से नहीं लेने वाला बड़ा होता है; क्योंकि देने वाला दानी और नहीं लेने वाला त्यागी।”<sup>39</sup> त्याग अपवित्र वस्तु का किया जाता है और दान पवित्र वस्तु का दिया जाता है। दान व्यवहार धर्म है और त्याग निश्चयधर्म।

दान के साथ त्याग शब्द का प्रयोग करके देखे तो स्पष्ट हो जाता है; वे दोनों एकार्थवाची नहीं हैं - (1) आहारदान-आहारत्याग। (2) औषधिदान-औषधि त्याग (3) ज्ञान दान और ज्ञानत्याग (4) अभयदान और अभय त्याग। क्या आहारदान और आहारत्याग एक बात है। इसी प्रकार औषधिदान और औषधित्याग, ज्ञानदान तथा अभयदान और अभयत्याग भी एक ही बात है क्या?

दान में कम से कम दो पार्टी चाहिए जैसे आहार लेने वाला, आहार देने वाला। त्याग पूर्णतः स्वतंत्र है। जैसे आहार के त्याग में किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं है।

दसवें निबंध में 'उत्तम आंकिकन्य धर्म का विरोधी परिग्रह है; अतः परिग्रह के अभाव को आंकिकन्य धर्म कहा जाता है। परिग्रह चौबीस

प्रकार के हैं। 14 अंतरंग परिग्रह तथा 10 बहिरंग परिग्रह हैं। सारी दुनियाँ रुपये-पैसे को ही परिग्रह मानती है। मिथ्यात्व, हास्य आदि भी परिग्रह है इस ओर लोगों का ध्यान ही नहीं है; अतः इस पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

अपरिग्रह की तुलना समाजवाद से भी की जाती है। कुछ लोग तो दोनों को ही एक कहने लगे हैं; पर दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ समाजवाद का संबंध मात्र बाह्य वस्तुओं से है, उनके समान वितरण से है, वहाँ अपरिग्रह में कषायों का त्याग मुख्य है।

समाजवादी दृष्टिकोण पूर्णतः आर्थिक है, जबकि अपरिग्रह की दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक है।

यदि सबके पास कार हो और तुम भी रखो तो समाजवाद को कोई ऐतराज नहीं होगा, पर अपरिग्रह कहता है, तुम्हें औरों से क्या, तुम तो अपनी इच्छाओं को त्यागो अथवा सीमित करो। अपरिग्रह का उत्कृष्ट रूप नग्न दिगम्बर दशा है जो कि समाजवाद का आदर्श कभी नहीं हो सकता।

जगत कुछ भी कहे पर सब पापों की जड़ होने से परिग्रह सबसे बड़ा पाप है और सर्व कषायों और मिथ्यात्व के अभावरूप होने से आंकिकन्य सबसे बड़ा धर्म है।

ग्यारहवें 'उत्तमब्रह्मचर्य' निबंध में कहा गया है कि निश्चय से ज्ञानानंद स्वभावी निजात्मा को ही निज मानना, जानना और उसी में जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है।

आज ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र स्थूल रह गया है। कुछ लोग स्पर्शन इंद्रिय के विषय सेवन के त्यागरूप व्यवहार ब्रह्मचर्य को ही ब्रह्मचर्य मानते हैं। वह भी मात्र क्रिया विशेष (मैथुन) के त्याग को ब्रह्मचर्य कहा जाता है। जबकि ब्रह्मचर्य व्यवहार से भी पाँचों इंद्रियों के विषय सेवन के त्याग

का नाम है। इस बात पर इस निबंध में सांगोपांग चर्चा की तथा शास्त्रों में काम-भोग के त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है सो ठीक है; क्योंकि काम का अर्थ स्पर्शन और रसना इंद्रिय के विषय तथा भोग का अर्थ घ्राण, चक्षु, कर्ण इंद्रिय के विषयों को माना है। अतः पाँचों इंद्रियों के विषय सेवन का त्याग ही ब्रह्मचर्य है।

आचार्य स्पर्शन इंद्रिय पर विजय प्राप्त करने की बात करते हैं तो उनका आशय पाँचों इंद्रियों के विषयों के त्याग से ही रहता है; क्योंकि स्पर्शन में पाँचों इंद्रियाँ गर्भित हैं। आँख, नाक, कान, आखिर शरीर रूप स्पर्शोन्द्रिय के ही तो अंग है। स्पर्शन-इंद्रिय सारा ही शरीर है, जबकि शेष चार इंद्रियाँ उसके ही अंश है। स्पर्शन इंद्रिय व्यापक है। शेष चार इंद्रियाँ व्याप्य है। अतः स्पर्शन इंद्रिय के विषयत्याग को ब्रह्मचर्य कहने से कोई दोष नहीं आता।

इस निबंध में दानतरायजी के पूजन की पंक्ति - “संसार में विष बैल नारी, तजि गये जोगीश्वरा” हू पर भी प्रकाश डाला गया है। कवि की मूलभावना को अभिव्यक्त किया और कहा कि यहाँ नारी को नीचा दिखाने का भाव नहीं है, अपितु यहाँ विपरीत सैक्स के प्रति आकर्षण के भाव को ही विषबैल कहा गया है। चाहे वह पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो, चाहे स्त्री के हृदय में।

ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मरमणता साक्षात् धर्म है, सर्वोत्कृष्ट धर्म है।

अंतिम निबंध ‘क्षमावाणी’ है। दशलक्षण महापर्व के तत्काल बाद मनाया जाने वाला क्षमावाणी पर्व एक ऐसा महापर्व है, जिसमें हम वैरभाव को छोड़कर एक-दूसरे से क्षमायाचना करते हैं, एक-दूसरे के प्रति क्षमा भाव धारण करते हैं। इसे क्षमापना भी कहा जाता है।

‘मनोमालिन्य को धो डालने में समर्थ यह महापर्व आज मात्र शिष्टाचार बनकर रह गया है। इस संबंध में आज अनेक विकृतियाँ व्याप्त हो गई हैं’

इस पर लेखक ने विस्तार से प्रकाश डालकर इसके वास्तविक स्वरूप की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

“उदाहरण के लिए क्षमा याचना जो कि एक व्यक्तिगत चीज थी, आज बाजारू बन गई है। ‘क्षमायाचना’ या क्षमा करना एक इतना महान् कार्य है, इतना पवित्र धर्म है कि जो जीव का जीवन बदल सकता है; बदल क्या सकता है, सही रूप में क्षमा करने और क्षमा माँगने वाले का जीवन बदल जाता है; पर न मालूम आज का यह दोपाया कैसा चिकना घड़ा हो गया है कि इस पर पानी ठहरता ही नहीं। इसकी ‘कारी कमरी’ पर कोई दूसरा रंग चढ़ता ही नहीं।<sup>40</sup>”

क्षमायाचना और क्षमादान ये दोनों ही वृत्तियाँ हृदय को हल्का करने वाली है; उदात्त वृत्तियाँ है, वैरभाव को मिटाकर परम शांति प्रदान करने वाली है।

इसप्रकार इन बारह निबंधों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

### वैशिष्ट्य

- (1) इस कृति में दशधर्मों का मौलिक चिंतन प्रस्तुत हुआ है।
- (2) दशधर्मों का विवेचन निश्चय-व्यवहार का समन्वयरूप है।
- (3) प्रत्येक निबंध में सटीक व्याख्या, तर्कमय तथा उदाहरण शैली ने निबंध की विषय-वस्तु को जनमानस के लिए सरल बना दिया है।
- (4) ये निबंध हिन्दी साहित्य के इतिहासकार रामचंद्रशुक्ल के ‘चिंतामणि’ के निबंध क्रोध, लोभ आदि मनोविश्लेषणात्मक निबंधों से मिलते हैं अर्थात् इनसे इनकी तुलना की जा सकती है।
- (5) लेखक ने अनेक उद्धरण प्रस्तुत कर अपनी बात की प्रामाणिकता सिद्ध की है।
- (6) दशधर्मों के स्वरूप के संबंध में लोगों के द्वारा जो आम धारणा है; उस पर प्रकाश डाला है तथा उसके गलत पक्ष का सतर्क एवं उद्धरणों से निषेध कर सत्य स्वरूप का प्रतिपादन किया है।

(7) यह दशधर्मों पर लिखी एक बेजोड़ कृति है, जिसके समक्ष अन्य कोई कृति अभी उपलब्ध नहीं है।

### ● आचार्य कुंदकुंद और उनके पंच परमागम

**नामकरण** – इस कृति में उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर आचार्य कुंदकुंद के संक्षिप्त परिचय के साथ-साथ उनकी अनमोल कृतियाँ – समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह तथा अष्टपाहुड़ ह्व इन पाँच परमागमों का संक्षिप्त सार भी दिया गया है। उक्त विषय-वस्तु का प्रतिपादन होने से इस कृति का यह नामकरण किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि इस कृति के नामकरण से ही पाठक को ज्ञान हो सकता है कि कृति के अंदर क्या वर्णन होगा?

**आधारस्रोत** ह्व सन् 1988 का वर्ष आचार्य कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी वर्ष के रूप में मनाया गया था। इस अवसर पर आचार्य कुंदकुंद पर साहित्य लेखन का उपक्रम भी चल रहा था। शोधकार्य भी हो रहा था। उसी क्रम में इस कृति का निर्माण हुआ है।

डॉ. भारिल्ल ने अपनी बात में लिखा है कि पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री नेमीचंद पाटनी एवं मंत्री जतीशचंद शास्त्री, अध्यक्ष, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने इन्हें अनुरोध किया कि ये आचार्य कुंदकुंद और उनके साहित्य के संदर्भ में एक ऐसी पुस्तक लिखें, जिसमें कुंदकुंद के जीवन के साथ-साथ उनके अध्यात्म का परिचय भी जनसाधारण को प्राप्त हो सके। अन्य व्यस्तताओं के कारण समय न होने पर भी इनका मन इस आग्रह को अस्वीकार न कर सका, यही इस पुस्तक के लेखन का मूल आधार रहा है।

**विषय-वस्तु** – इस कृति की विषय-वस्तु आचार्य कुंदकुंद का जीवन परिचय एवं उनके द्वारा रचित पंच परमागम-समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ का सार है तथा अंत में इन्हीं पंच परमागमों की 101 गाथाओं को छाँटकर 'कुंदकुंद शतक' नाम दिया है तथा उन गाथाओं का हिन्दी पद्यानुवाद व सरलार्थ भी दिया है।

प्रथम अध्याय आचार्य कुंदकुंद का है, जिसमें कुंदकुंद का जीवन परिचय दिया गया है तथा उनके संबंध में उल्लेखित कुछ शिलालेखों का उद्धरण, नंदिसंघ की पट्टावली, ज्ञानप्रबोध में प्राप्त कथा, पुण्याश्रव कथाकोश की कथा, आराधनाकोश की कथा को उल्लेखित किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ और उद्धरणों को प्रस्तुत कर कुंदकुंद का जीवन परिचय 30 पृष्ठों में दिया है, जिसके कुछ निष्कर्ष इसप्रकार है ह्व

- (1) भगवान महावीर और गौतम गणधर के साथ आचार्य परंपरा में एकमात्र आचार्य कुंदकुंद का ही नामोल्लेख पूर्वक स्मरण किया जाता है।
- (2) दिगंबर जिन मंदिरों में विराजमान लगभग प्रत्येक जिनबिंब पर कुंदकुंदात्मनाय का उल्लेख पाया जाता है।
- (3) आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम की प्रथम शताब्दी में कौण्ड-कुंदपुर (कर्नाटक) में जन्में कुंदकुंद अखिल भारतवर्षीय ख्याति के दिग्गज आचार्य थे।
- (4) उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त थी।
- (5) उनका प्रथम नाम 'पद्मनंदी' था और दूसरा नाम 'कुंदकुंदाचार्य' इसके अतिरिक्त इनके एलाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य एवं गृद्धपिच्छाचार्य नाम भी प्राप्त होते हैं।
- (6) उन्हें नंदिसंघ की पट्टावली में जिनचंद्र का शिष्य बताया गया है।
- (7) ग्यारह वर्ष में दीक्षा ली, 33 वर्ष में आचार्य पद को प्राप्त हुए।
- (8) पूर्वभव में एक सेठ के ग्वाला थे। जलते जंगल में शास्त्र प्राप्त हुआ। उसे कुछ समय पश्चात् आहार हेतु मुनिराज पधारे, उन्हें भेंट किया। जिन्होंने आशीर्वाद दिया। शास्त्रदान के फल से धर्मी सेठ के घर जन्म हुआ।

- (9) उन्होंने इसी भव में सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमंधर अरहंत परमात्मा के दर्शन किए थे; उनकी दिव्यध्वनि का साक्षात् श्रवण किया था। पर स्वयं ने विदेहगमन का उल्लेख नहीं किया, परवर्ती आचार्यों ने अवश्य किया है।
- (10) आचार्य कुंदकुंद को भरत क्षेत्र में विद्यमान भगवान महावीर की आचार्य परंपरा से जुड़ना ही अभीष्ट है। वे अपनी बात की प्रामाणिकता के लिए भगवान महावीर और अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की आचार्य परंपरा पर ही निर्भर हैं न की सीमंधर स्वामी पर।
- (11) धरसेनाचार्य के शिष्य भूतबली और पुष्पदंत ने प्रथम श्रुतस्कंध की रचना की तो कुंदकुंद ने द्वितीय श्रुतस्कंध की रचना की।
- (12) कुंदकुंद के पंच परमागम के अतिरिक्त, बारसाणुवेक्खा एवं दशभक्ति भी आपकी कृतियाँ मानी जाती हैं। रयणसार और मूलाचार को भी आपकी रचनाएँ कहा जाता है।

द्वितीय अध्याय में 'समयसार' ग्रंथ का सार 22 पृष्ठों में दिया गया है। इसमें टीकाओं का सार भी आ गया है। इस सारांश को देने में इन्होंने कुंदकुंद की गाथाओं, अमृतचंद की आत्मख्याति टीका, कलश तथा समयसार नाटक (बनारसीदासजी) के उद्धरण प्रस्तुत कर पाठकों के समक्ष सार दिया है जिसका निष्कर्ष इसप्रकार कहा जा सकता है ह

- (1) शुद्धात्मा का प्रतिपादक उनका यह ग्रंथाधिराज 'समयसार' संपूर्ण जिन वाङ्मय का शिरमौर है।
- (2) आचार्य जयसेन के अनुसार आचार्य कुंदकुंद ने संक्षेप रुचि वाले शिष्यों के लिए पंचास्तिकाय, मध्यम रुचि वाले शिष्यों के लिए प्रवचनसार और विस्तार रुचि वाले शिष्यों के लिए इस ग्रंथाधिराज समयसार की रचना की है।

- (3) इस ग्रंथाधिराज का मूल प्रतिपाद्य नवतत्त्वों के निरूपण के माध्यम से नवतत्त्वों में छिपी हुई परमशुद्धनिश्चयनय की विषयभूत वह आत्मज्योति है, जिसके आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की प्राप्ति होती है।
- (4) जीवाजीवाधिकार का निष्कर्ष दिया है कि संपूर्ण विश्व को स्व और पर इन दो भागों में विभक्त कर पर से भिन्न और अपने से अभिन्न निज भगवान आत्मा की पहिचान कराना इस अधिकार का मूल प्रयोजन है।
- (5) कर्ता-कर्म अधिकार में परकर्तृत्व-भोक्तृत्व का निषेध कर भेदविज्ञान कराया गया है।
- (6) अज्ञानी जीव पुण्य और पाप में अच्छे-बुरे का भेदकर पुण्य को अपनाना चाहता है, उपादेय मानता है, मोक्षमार्ग जानता है; जबकि आस्रव तत्त्व होने से पाप के समान पुण्य तत्त्व भी हेय है, उपादेय नहीं, संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं। यही भेदज्ञान कराना पुण्य-पाप अधिकार का मूल प्रयोजन है।
- (7) आस्रव अधिकार में सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा को निरास्रव सिद्ध किया गया है।
- (8) संवराधिकार में संवर अनंत दुःखरूप संसार का अभाव करने वाला एवं अनंतसुख स्वरूप मोक्ष का कारण कहा गया।
- (9) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा को क्रिया करते हुए उसका फल भोगते हुए भी यदि कर्मबंध नहीं होता है और निर्जरा होती है तो उसका कारण उसके अंतर में विद्यमान ज्ञान और वैराग्य का बल ही है। इस बात को निर्जरा अधिकार में बहुत ही विस्तार से स्पष्ट किया गया है।
- (10) आत्मा की आराधना करने वाले निरपराधी आत्मा को कर्मबंध की शंका नहीं होती। यही मोक्षाधिकार का सार है।

(11) सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार में सभी पर पदार्थों एवं अध्यवसान भावों में भेदविज्ञान कराया गया है और निजात्मा में रमण का उपदेश दिया गया है।

(12) जो लोग 'समयसार' को गृहस्थों के लिए पढ़ने का निषेध करते हैं, उनके लिए इस अध्याय में सप्रमाण और युक्ति से समयसार पढ़ने की पुष्टि की है जो इसप्रकार है

“मैं उनसे विनम्रतापूर्वक एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि आपने स्वयं समयसार का स्वाध्याय किया है या नहीं? यदि हाँ तो फिर आप अन्य गृहस्थों को समयसार पढ़ने से क्यों रोकते हो? और यदि आपने समयसार का स्वाध्याय किया ही नहीं है तो फिर यह जाने बिना कि उसमें क्या है? उसके अध्ययन का निषेध कैसे कर सकते हैं?

भाई! आचार्यदेव ने यह ग्रंथाधिराज अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों के अज्ञान और मिथ्यात्व के नाश के लिए ही बनाया है; जैसा कि इसमें समागत अनेक उल्लेखों से स्पष्ट है। समयसार की 38वीं गाथा की टीका में तो साफ-साफ लिखा है कि अत्यंत अप्रतिबद्ध आत्मविमूढ़ के लिए ही यह बात है।”<sup>41</sup>

तृतीय अध्याय में प्रवचनसार ग्रंथाधिराज का सार 19 पृष्ठों में दिया गया है। इस अध्याय की कतिपय मुख्य बातें इसप्रकार हैं

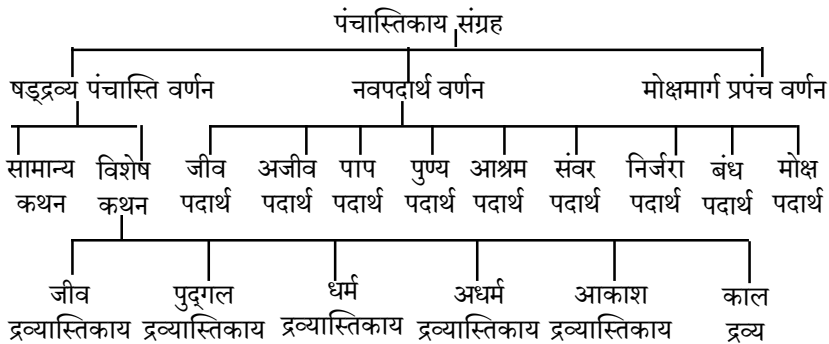
- (1) जिनेन्द्र भगवान के प्रवचन (दिव्यध्वनि) का सार यह कालजयी प्रवचनसार परमागम आचार्य कुंदकुंद की सर्वाधिक सशक्त रचना है।
- (2) इस कृति को लंबे समय से आज तक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त है।
- (3) प्रमाण और प्रमेय व्यवस्था का प्रतिपादक यह ग्रंथ आचार्य कुंदकुंद की एक ऐसी प्रौढतम कृति है; जिसमें वे आध्यात्मिक संत के साथ-साथ गुरु गंभीर दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं।
- (4) इस ग्रंथराज की विषय-वस्तु को तीन महाधिकारों में विभाजित

किया गया है। ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन (1 से 92 गाथा) ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन (93 से 200) एवं चरणानुयोगसूचक चूलिका।

- (5) प्रथम ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार को चार अधिकारों में विभाजित किया गया है। इन चार अधिकारों के निष्कर्ष में डॉ. भारिल्ल कहते हैं कि ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन महाधिकार में अनंतज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति के एकमात्र हेतु शुद्धोपयोग का एवं उससे उत्पन्न अतीन्द्रिय ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनंद का तथा सांसारिक सुख और उसके कारण रूप शुभ परिणामों का वर्णन कर सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोग रूप वीतराग-चारित्र ग्रहण करने की पावन प्रेरणा दी गई है।
- (6) ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन को तीन अधिकारों में विभक्त कर कहा गया है कि वस्तु का स्वरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौत्यात्मक है। छह द्रव्यों को जीव-अजीव, मूर्त-अमूर्त, लोक-अलोक, क्रियावान्-भाववान्, सप्रदेशी-अप्रदेशी आदि युग्मों में विभक्त कर समझाया है और ज्ञान और ज्ञेय के बीच भेद का ज्ञान कराया है।
- (7) चरणानुयोग सूचक चूलिका नामक अधिकार की रचना गृहस्थ शिष्यों को श्रामण्य अंगीकार करने के उद्देश्य से हुई है।
- (8) इस अधिकार में मुनिधर्म अंगीकार करने की विधि, श्रामण्यछेद, उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग की तथा भावलिंगी मुनिराजों की भूमिका में किसप्रकार के शुभपरिणाम संभव है और किसप्रकार का शुभ परिणाम संभव नहीं हैं; चर्चा कर आगमाभ्यास पर विशेष बल दिया गया है।
- (9) डॉ. भारिल्ल का मानना है कि अपनी अभूतपूर्व विषय-वस्तु एवं प्रौढ प्रतिपादन शैली के कारण यह प्रवचनसार परमागम आज भी अद्वितीय है।
- (10) डॉ. भारिल्ल का मानना है कि अपनी अभूतपूर्व विषय-वस्तु एवं प्रौढ प्रतिपादन शैली के कारण यह प्रवचनसार परमागम आज भी अद्वितीय है।

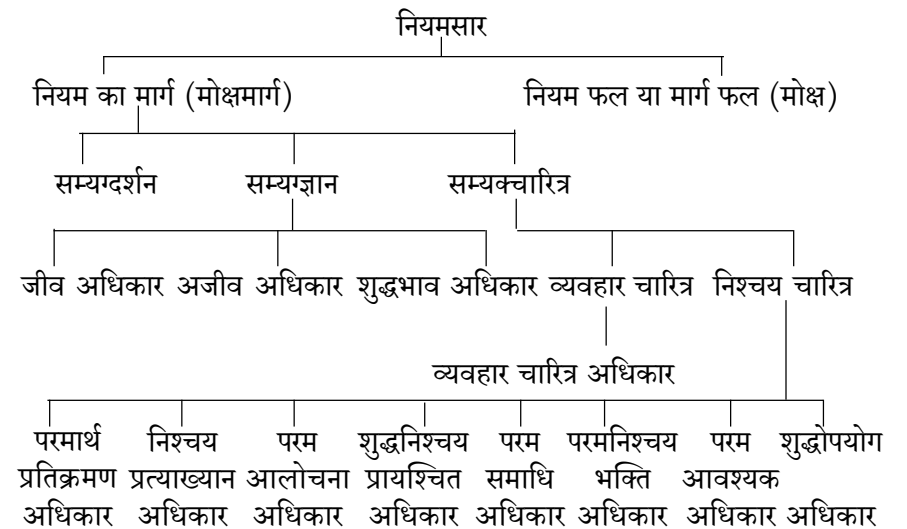
डॉ. भारिल्ल ने इस कृति का चौथा अध्याय 'पंचास्तिकाय संग्रह' रखा है। जिसका तेरह पृष्ठों में सार दिया गया है। जिसमें कतिपय निष्कर्ष इस प्रकार हैं ह

- (1) यह ग्रंथ जिन सिद्धान्त और जिन अध्यात्म का प्रवेश द्वार है। अतः यह सर्वप्रथम स्वाध्याय करने योग्य है।
- (2) इसकी रचना शिवकुमार महाराज आदि ने संक्षेप रुचिवाले प्राथमिक शिष्यों के लिए ही की गई थी।
- (3) यह दो खंडों में विभक्त हैं ह प्रथम खण्ड (1 से 104 गाथाएँ) में पंचास्तिकाय का वर्णन है और द्वितीय खण्ड (105 से 172 गाथाएँ) में नवपदार्थ पूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है।
- (4) डॉ. भारिल्ल ने यहाँ बतलाया है कि द्रव्यसंग्रह में भी पंचास्तिकाय संग्रह के समान ही अधिकारों का विभाजन किया गया है। अधिकारों के नाम भी वैसे ही हैं। दोनों के नाम के आगे संग्रह शब्द का प्रयोग है। यद्यपि एक का नाम द्रव्य संग्रह और दूसरे का नाम पंचास्तिकाय संग्रह है, तथापि दोनों के प्रथम अधिकार में पंचास्तिकाय और द्रव्यों का एकसा वर्णन है।
- (5) डॉ. भारिल्ल ने इस कृति की संपूर्ण विषय-वस्तु का एक चार्ट प्रस्तुत किया है। वह इस प्रकार है ह



पंचम अध्याय 'नियमसार' का है जिसका सार तेरह पृष्ठों में दिया गया है। इस अध्याय में बतलाया है कि ह

- (1) यह रचना स्वान्तःसुखाय अपने लिए कुंदकुंद ने की।
- (2) यह ग्रंथाधिराज तत्त्वोपदेशक एवं पट्टाचार्य कुंदकुंद की रचना नहीं, यह तो इन सबसे पूर्णतः विरक्त, परमपारिणामिक भाव से ही अनुरक्त, वीतरागी संत, अंतरोन्मुखी कुंदकुंद की कृति है। इसमें कुंदकुंद का अंतरंग व्यक्त हुआ है। उपदेश, आदेश, अनुशासन, प्रशासन कुंदकुंद की मजबूरी थी, जीवन नहीं। उनका हार्द नियमसार है।
- (3) 187 गाथाओं में प्रतिपादित संपूर्ण विषय-वस्तु को बारह अधिकारों में विभाजित किया गया है।
- (4) "यह मुख्यतः मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रंथाधिराज है। यह मात्र विद्वानों के अध्ययन की वस्तु नहीं, अपितु प्रत्येक आत्मार्थी के दैनिक पाठ की चीज है।"<sup>42</sup>
- (5) अंत में डॉ. भारिल्ल ने निम्नांकित चार्ट द्वारा नियमसार परमागम की विषयवस्तु को समझाया है।



षष्ठ अध्याय 'अष्टपाहुड़' का है। अष्टपाहुड़ की उपयोगिता के विषय में प्रकाश डालते हुए कहा है कि ह

- (1) पाँच सौ तीन गाथाओं में निबद्ध एवं आठ पाहुड़ों में विभक्त यह अष्टपाहुड़ ग्रंथ मूलसंघ के पट्टाचार्य कठोर प्रशासक आचार्य कुंदकुंद की एक ऐसी अमर कृति है जो दो हजार वर्षों से लगातार शिथिलाचार के विरुद्ध सशक्त आवाज उठाती चली आ रही है और इसकी उपयोगिता पंचमकाल के अंत तक बनी रहेगी; क्योंकि यह अवसर्पिणी काल है, इसमें शिथिलाचार जो उत्तरोत्तर बढ़ा ही है। अतः इसकी उपयोगिता भी निरंतर बढ़ती ही जाती है।
- (2) छत्तीस गाथाओं में निबद्ध दर्शनपाहुड़ में सम्यग्दर्शन की महिमा बताई गई है और कहा है कि धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। अतः जो जीव सम्यग्दर्शन रहित है, वे वंदनीय नहीं है।
- (3) सत्ताईस गाथाओं में निबद्ध सूत्रपाहुड़ में श्रमणों को जिनागम के बताये मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी गई है; क्योंकि जिसप्रकार सूत्र (डोरा) सहित सूई खोती नहीं है; उसी प्रकार सूत्रों (आगम) के आधार पर चलने वाले श्रमण भ्रमित नहीं होते, भटकते नहीं हैं।
- (4) पैतालीस गाथाओं में निबद्ध चारित्रपाहुड़ में चारित्र के दो भेद किए और कहा कि जिनोपदिष्ट ज्ञान दर्शन शुद्ध सम्यक्त्वाचरण चारित्र है और शुद्ध आचरणरूप चारित्र संयमाचरण है।
- (5) बासठ गाथाओं में निबद्ध 'बोधपाहुड़' में आयतन, चैत्यगृह, जिन प्रतिमा आदि ग्यारह स्थानों में विभक्त इस पाहुड़ में ग्यारह स्थानों के माध्यम से दिगंबर धर्म और निर्ग्रन्थ साधु का स्वरूप ही स्पष्ट किया गया है।
- (6) एक सौ पैसठ गाथाओं में निबद्ध 'भावपाहुड़' में भावलिंग सहित द्रव्यलिंग धारण करने की प्रेरणा दी गई है। प्रकारांतर से सम्यग्दर्शन सहित व्रत धारण करने का उपदेश दिया गया है।

- (7) एक सौ छह गाथाओं में निबद्ध 'मोक्षपाहुड़' में आत्मा की अनंत सुखस्वरूप दशा मोक्ष एवं उसकी प्राप्ति के उपायों का निरूपण है।
- (8) बाईस गाथाओं में निबद्ध 'लिंगपाहुड़' में जिनलिंग का स्वरूप स्पष्ट करते हुए जिनलिंग धारण करने वालों को अपने आचरण और भावों की संभाल के प्रति सतर्क किया गया है।
- (9) अड़तीस गाथाओं में निबद्ध 'शीलपाहुड़' में सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित शील की महिमा बताई है, उसे ही मोक्ष का कारण बताया है।
- (10) 'अष्टपाहुड़' शिथिलाचार के विरुद्ध एक सशक्त दस्तावेज है। अंत में कुंदकुंद के पंच परमागमों से चुनी गई (101) गाथाएँ सरलार्थ सहित 'कुंदकुंद शतक' नाम से दी गई है। इस विषय में अलग कृति भी बनी है। अतः इस पर प्रकाश यथास्थान किया गया है।

### वैशिष्ट्य

- (1) कुंदकुंद का संक्षिप्त एवं प्रामाणिक जीवन परिचय इसमें आ गया है।
- (2) प्रस्तुत कृति के अध्ययन से कुंदकुंद के पंचपरमागमों का हार्द सरल एवं सुबोध शैली में समाहित हो गया है।
- (3) स्वाध्यायी एवं शोधार्थी के लिए यह एक अनुपम कृति है।
- (4) प्रस्तुत कृति के अध्ययन के बाद पाठकों को मूल ग्रंथों के स्वाध्याय की प्रेरणा मिलती है।
- (5) 'गागर में सागर' की उक्ति यह कृति सार्थक करती है।

### ● तीर्थकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

नामकरण ह्म इस कृति में तीर्थकर भगवान महावीर के पूर्वभवों से लेकर वर्तमान भव तक का समुचित वर्णन किया है और उनके द्वारा उपदेशित सबके कल्याणकारी उपदेश का विश्लेषण करने से इस कृति का नामकरण तीर्थकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ सार्थक है। कृति का नामकरण लंबा अवश्य है, पर अनुपयुक्त नहीं है।



**आधारस्रोत** – भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के प्रचार और प्रसार की अनेक योजनाओं के साथ जिनबिब पंचकल्याणक महोत्सव, फतेपुर (गुजरात) के शुभ अवसर पर आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में यह निश्चय किया कि भगवान महावीर के जीवन और सिद्धान्तों पर सांगोपांग प्रामाणिक प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक प्रकाशित की जावे। तदर्थ डॉ. भारिल्ल से अनुरोध किया गया, जिसे इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जिसके फलस्वरूप इस कृति की रचना हुई।

**विषयवस्तु** ह्य प्रस्तुत पुस्तक में दो खंड हैं। प्रथम खंड में भगवान महावीर के पूर्वभवों एवं वर्तमान जीवन का तो मार्मिक चित्रण सरल, सरस एवं प्रवाहमयी भाषा में किया ही गया है, साथ में भगवान ऋषभदेव से लेकर पार्श्वनाथ तक की पूर्व परंपरा एवं पृष्ठभूमि भी संक्षेप में दी गई है।

द्वितीय खंड में भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'मुक्ति के मार्ग' में तार्किक किंतु रोचक एवं बोधगम्य विवेचना प्रस्तुत की गई है। जहाँ एक और अनेकांत और स्याद्वाद जैसे गूढ़ व गंभीर विषयों पर साधिकार सप्रमाण तर्कसंगत निरूपण हुआ है; वहीं दूसरी ओर देवशास्त्र गुरु जैसे भक्ति प्रधान एवं भेद-विज्ञान जैसे आध्यात्मिक भावमयी विषयों की मीठी मार के साथ-साथ उपयुक्त उदाहरणों के द्वारा गले उतारने का सफल प्रयास किया गया है।

महावीर वाणी के प्रतिपादन का केन्द्रबिन्दु आत्मा कहीं भी ओझल नहीं हो पाया है, चाहे इतिवृत्तात्मक कथा भाग हो, चाहे विवेचनात्मक सिद्धान्त का भाग। दोनों खंडों के पश्चात् 'उपसंहार' में भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा गया है, जिसमें उनकी व्यावहारिक उपयोगिता आधुनिक संदर्भ में स्पष्ट की गई है। अंत में तीन परिशिष्ट दिये गये हैं।

### वैशिष्ट्य

- (1) चौबीस तीर्थंकरों का सामान्य परिचय एवं चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का विशेष परिचय दिया गया है।
- (2) भगवान महावीर के सिद्धान्तों का प्रतिपादन सरलतम रीति से हुआ है। अर्थात् जैनदर्शन का मूल हार्द इसमें समाहित है।
- (3) यह कृति जैन व अजैन सभी के लिए उपयोगी है।
- (4) इस कृति पर डॉ. भारिल्ल को 25,000/- रु. का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।
- (5) यह कृति कम पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए भी अध्ययन हेतु उपयोगी है।

### ● समयसार अनुशीलन

**नामकरण** – आचार्य कुंदकुंद विरचित 'समयसार' ग्रंथ की गाथाओं, आचार्य अमृतचन्द्र की टीका, पण्डित जयचंदजी छाबड़ा का भावार्थ, पाण्डे राजमलजी की कलश टीका, कविवर बनारसीदासजी के समयसार नाटक एवं आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजी स्वामी के प्रवचनों को आधार बनाकर 'समयसार' का सम्यक् अनुशीलन किया है। अतः इस कृति का नाम 'समयसार अनुशीलन' सार्थक है।

### आधारस्रोत ह्य

- (1) आज 'समयसार' पठन-पाठन की वस्तु तो बन गया है, पर आधे-अधूरे अध्ययन और विविध प्रकार की महत्वाकांक्षाओं ने आज कुछ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं कि अब उसके सर्वांग अनुशीलन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है।
- (2) इधर कुछ दिनों से उन लोगों ने भी समयसार पर लिखना और बोलना आरंभ किया है, जो अब तक समयसार के अध्ययन-अध्यापन का निषेध करते रहे हैं। वे वस्तु को जिसतरह प्रस्तुत कर रहे हैं, उससे भी अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

(3) ---- “आज स्वामीजी हमारे बीच में नहीं है और उन्हीं के प्रतिपादन को आधार बनाकर विसंगतियाँ उत्पन्न की जा रही है। अतः वातावरण की शुद्धि के लिए आज ‘समयसार’ के सम्यक् अनुशीलन की महती आवश्यकता है। यह काम डॉ. भारिल्ल के ही वश की बात है; क्योंकि पहले भी जब किसी विषय को लेकर सामाजिक वातावरण दूषित हुआ, तब डॉ. भारिल्ल ने उन विषयों पर जो सर्वांग अनुशीलन प्रस्तुत किया, उससे व्यवस्थित वस्तुस्वरूप तो सामने आया ही, सामाजिक वातावरण भी लगभग शांत हो गया।”<sup>43</sup>

उक्त बातों को ध्यान में रखकर पाटनीजी, ब्र. यशपालजी एवं अन्य विशिष्ट कुछ लोगों ने ‘समयसार अनुशीलन’ ग्रंथ लिखने का अनुरोध किया। ‘डॉ. भारिल्ल अपने जीवन की इस सांध्यवेला में अपने उपयोग को यहाँ-वहाँ नहीं भटकाना चाहते हैं। ये अपने उपयोग को भगवान के द्वारा प्रस्तुत वस्तुस्वरूप का चिंतन, मनन, अध्ययन, पठन-पाठन, लेखन और अनुभवन में ही लगाना चाहते हैं, इसलिए भी ‘समयसार अनुशीलन’ का उपक्रम आरंभ है।

डॉ. भारिल्ल के कथनानुसार – समयसार जैनियों की गीता है। इसमें ही उस मूलवस्तु का विवेचन है; जो आत्मसाधकों का एकमात्र आधार है। ‘समयसार’ के मूल प्रतिपाद्य को जन-जन तक पहुँचाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है ह्व यही विचार कर यह उपक्रम किया जा रहा है, इसके मूल में अन्य कोई लौकिक कामना नहीं है।

उक्त कारण ही इस ग्रंथ लिखने के प्रमुख कारण रहे हैं।

**विषयवस्तु** ह्व आचार्य कुंदकुंद की गाथाओं एवं आचार्य अमृतचंद्र के कलशों व टीकाओं, जयचंदजी छाबड़ा का भावार्थ, कानजीस्वामी के प्रवचनों का केन्द्रीय भाव को आधार बनाकर ‘समयसार अनुशीलन’ की

विषय-वस्तु का निर्माण हुआ है। डॉ. भारिल्ल ने इन सबका समन्वय कर सरल भाषा में स्पष्ट किया है। अभी तक ‘समयसार अनुशीलन भाग-1’ में समयसार की गाथा 1 से 68 तक तथा भाग 2 में 69 से 163 तक, भाग 3 में 164 से 268 तक, भाग 4 में 269 से 307 एवं भाग 5 में 307 से 415 गाथाओं की विषयवस्तु आ गई है। समयसार अनुशीलन की विषयवस्तु समयसार से संबंधित ग्रंथों के निष्कर्ष रूप है। इसमें प्रश्नोत्तर भी साथ दिए हैं। समयसार की गाथा 3 का अनुशीलन उदाहरण हेतु द्रष्टव्य हैं ह्व

“दूसरी गाथा में समय की द्विविधता बताई गई थी; पर यह द्विविधता शोभनीय नहीं है, शोभास्पद तो एकत्व ही है। इस बात को तीसरी गाथा में स्पष्ट करते हैं ह्व

**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।**

**बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३ ॥**

(हरिगीत)

**एकत्वनिश्चयगत समय सर्वत्र सुन्दर लोक में।**

**विसंवाद है पर बंध की यह कथा ही एकत्व में ॥३ ॥**

एकत्वनिश्चय को प्राप्त जो समय है, वह लोक में सर्वत्र ही सुंदर है। इसलिए एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा विसंवाद पैदा करने वाली है।

प्रत्येक पदार्थ अपने में ही शोभा पाता है, पर के साथ बंध की कथा, मिलावट की बात विसंवाद पैदा करने वाली है; अतः यदि विसंवाद से बचना है तो एकत्व को ही अपना श्रेयस्कर है।

‘आत्मख्याति’ में इस गाथा के भाव को इसप्रकार प्रस्तुत किया है ह्व ‘यहाँ समय शब्द से सामान्यतः सभी पदार्थ कहे जाते हैं; क्योंकि जो एकीभाव से स्वयं के गुण-पर्यायों को प्राप्त हो, उसे समय कहते हैं।

इस व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव; लोक के ये सभी पदार्थ समय शब्द से अभिहित किए जाते हैं और एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से सुंदरता को पाते हैं। तात्पर्य यह है कि ये सब अकेले ही शोभास्पद होते हैं; क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकारादि दोष आ जावेंगे।

वे सभी पदार्थ अपने-अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहने वाले अपने अनंत धर्मों के चक्र को चुंबन करते हैं, स्पर्श करते हैं; तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। अत्यंत निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते हैं। पररूप परिणमन न करने से उनकी अनंत व्यक्तिता नष्ट नहीं होती, इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति सदा स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य व अविरुद्ध कार्य की हेतुता से विश्व को सदा टिकाये रखते हैं, विश्व का उपकार करते हैं।

इसप्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकत्व प्रतिष्ठित हो जाने पर एकत्व सिद्ध हो जाने पर इस जीव नामक समय को बंध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है। तात्पर्य यह है कि जब सभी पदार्थ परस्पर भिन्न ही हैं तो फिर यह बंधन की बात जीव के साथ ही क्यों?

जब बंध की बात ही नहीं टिकती तो फिर बंध के आधार पर कहा गया पुद्गल प्रदेशों में स्थित होना भी कैसे टिकेगा? तथा उसके आधार पर होने वाला परसमयपना भी नहीं टिक सकता। जब परसमयपना नहीं रहेगा तो फिर उसके आधार पर किया गया स्वसमय-परसमय का विभाग भी कैसे टिकेगा? जब यह विभाग ही नहीं रहा तो फिर समय (जीव) के एकत्व होना ही सिद्ध हुआ और यही श्रेयस्कर भी है।

देखो, दूसरी गाथा में 'समय' शब्द का अर्थ जीवद्रव्य लिया गया था और यहाँ छहों द्रव्य लिया जा रहा है। वहाँ जो एक ही समय में गमन भी करे और ज्ञान भी करे, उसे समय कहते हैं; इस व्याख्या के अनुसार समय

शब्द का अर्थ जीव किया था और यहाँ जो अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त हो, उसे समय कहते हैं, इस व्याख्या के अनुसार समय शब्द का अर्थ छहों द्रव्य लिया है।

दूसरी गाथा में समय का द्विविधपना बताया था और यहाँ उसका निषेध किया जा रहा है, उसमें बाधा उपस्थित की जा रही है।

यहाँ यह कहा जा रहा है कि जब प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न ही हैं, अपने-अपने में ही रहते हैं, कोई किसी को छूता भी नहीं है तो फिर आत्मा का पुद्गल के प्रदेशों में स्थित होना कैसे संभव है? इस बंध की कथा में ही विसंवाद है अथवा यह बंध की कथा ही विसंवाद पैदा करने वाली है। जब दो द्रव्य परस्पर मिलते ही नहीं तो बंधने की बात में दम ही क्या है?

जब आत्मा बंधा ही नहीं है तो उसके परसमयपना ही नहीं ठहरता है। जब परसमयपना ही नहीं है तो फिर स्वसमय कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि स्वसमय तो परसमय की अपेक्षा कहा जाता है। अतः समय तो समय है, वह न स्वसमय है न परसमय है। इस बंध की कथा ने ही ऐसे दो भेद किये हैं; अतः यह बंधकथा ही विसंवाद पैदा करने वाली है, दुविधा पैदा करने वाली है।

यदि विसंवाद मिटाना है तो बंध की बात ही मत करो, एकत्व-विभक्त आत्मा की कथा ही श्रेष्ठ है। बंध की कथा विसंवाद पैदा करने वाली और एकत्व-विभक्त आत्मा की कथा विसंवाद मिटाने वाली है। यही बात तो आगे चौथी-पाँचवीं गाथा में कहने वाले हैं कि तुमने अब तक काम, भोग और बंध की कथा ही सुनी है; अब मैं तुम्हें एकत्व-विभक्त आत्मा की कथा सुनाऊँगा।

आचार्यदेव को बंध की कथा में कोई रस नहीं है, वे तो आत्मा के एकत्व को ही समझाना चाहते हैं। वे तो यहाँ भी साफ-साफ कह रहे हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने अंतर में रहने वाले अनंत धर्मों को चूमते हैं, परंतु

पर को स्पर्श भी नहीं करते; एकक्षेत्रावगाह रूप से अत्यंत निकट ठहरे रहे हैं, पर अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते। इसलिए बंध की कथा में कोई दम नहीं है, एकत्व की कथा ही करने योग्य है।

**प्रश्न** ह्न विरुद्ध और अविरुद्ध कार्य की हेतुता से विश्व का उपकार करते हैं; विश्व को टिकाये रखते हैं ह्न इस कथन का क्या आशय है?

**उत्तर** ह्न उक्त कथन का भाव स्वामीजी इस प्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न “द्रव्य की पर्याय में जो उत्पाद-व्यय है, वह परस्पर विरुद्ध कार्य है। धवला ग्रंथ में आता है कि एक समय की पर्याय में उत्पाद-व्यय अर्थात् उपजना व विनशना- इस प्रकार दो परस्पर विरुद्ध कार्य होते हैं। जिस समय द्रव्य की वर्तमान पर्याय उत्पन्न होती है, उसी समय पूर्व की पर्याय का व्यय होता है। उत्पाद भावरूप है और व्यय अभावरूप है। इस कारण उत्पाद को व्यय से विरुद्ध कहा जाता है। ऐसा होते हुए भी गुण गुणपने से त्रिकाल कायम रहते हैं, इससे वे अविरुद्ध हैं। ऐसा विरुद्ध-अविरुद्ध वस्तु का स्वरूप ही है।

एक समय की पर्याय में जो उत्पाद-व्यय है, वह परस्पर विरुद्ध भाव है और गुण कायम रहते हैं, वह अविरुद्ध भाव हैं। इस तरह विरुद्ध और अविरुद्ध कार्य अर्थात् अनंत द्रव्यों का उत्पाद-व्यय रूप विरुद्धभाव और गुणरूप अविरुद्धभाव - इन दोनों के हेतुपने से हमेशा विश्व का उपकार करते हैं। अर्थात् द्रव्य के गुण-पर्यायरूप स्वरूप के द्वारा विश्व के समस्त पदार्थ जैसे हैं, वैसे ही टिके रहते हैं।”

प्रत्येक द्रव्य परिणमन अपने में ही होता है, कोई भी द्रव्य पररूप परिणमन नहीं करता। इसकारण प्रत्येक द्रव्य का व्यक्तित्व सदा स्वतंत्र ही रहता है, उसकी व्यक्तित्व कभी नष्ट नहीं होती; वह अपनी स्वतंत्र इकाई के रूप में सदा प्रतिष्ठित रहता है। यही कारण है कि सभी पदार्थ टंकोत्कीर्ण की भाँति सदा स्थित रहते हैं।

यहाँ एकत्वनिश्चयगत समय का अर्थ स्पष्ट करते हुए सभी पदार्थों के संबंध में चार बातें स्पष्ट की गई हैं ह्न

- (1) जीवादि सभी पदार्थ अपने में ही मग्न हैं, अपने गुण-पर्यायों को ही आलिंगित करते हैं, पर को स्पर्श तक नहीं करते।
- (2) वे एकक्षेत्रावगाहरूप से अत्यंत निकट रहने पर भी अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।
- (3) पररूप परिणमन न करने से वे टंकोत्कीर्ण की भाँति अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को धारण किये रहते हैं, उनकी व्यक्तित्व (व्यक्तित्व-इकाई) नष्ट नहीं होती।
- (4) उत्पाद और व्यय तथा उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य जैसे विरोधी स्वभावों को एक साथ धारण करके वे विश्व को टिकाये रखते हैं, विश्व का उपकार करते हैं।

वे पर को स्पर्श नहीं करते, स्वभाव से च्युत नहीं होते और अपनी इकाई को कायम रखते हुए विश्व को टिकाये रखते हैं। जगत के सभी द्रव्यों में ये विशेषताएँ समान रूप से पाई जाती हैं। यद्यपि जीव नामक पदार्थ में भी उक्त विशेषताएँ पाई जाती हैं, तथापि उसके बंधन की जो बात है, वह विसंवाद पैदा करती है।

जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं है, अपने स्वभाव से च्युत होता ही नहीं है, टंकोत्कीर्ण की ही भाँति अपनी इकाई को टिकाये रखता है; तो फिर आत्मा ही दूसरे से क्यों बंधे?

इस बंध की कथा ने ही तो आत्मा के स्वसमय और परसमय-ऐसे दो भेद किये हैं। इस द्विविधपने ने ही तो आत्मा के सौंदर्य को खंडित किया है। अतः अन्य द्रव्यों के समान आत्मा को भी द्विविधता इष्ट नहीं। एकत्व में ही सौंदर्य है - इसलिए आत्मा को एकत्व ही इष्ट है।

आचार्य जयसेन इस गाथा की व्याख्या करते हुए एकत्वनिश्चयगत का अर्थ अपने शुद्धगुण-पर्यायों से परिणत अथवा अभेदरत्नत्रयपरिणत

करते हैं और 'समय' शब्द का अर्थ भी अमृतचंद्र के समान छहद्रव्य न करके मात्र आत्मा ही करते हैं।

इसप्रकार उनके अनुसार अभेदरत्नत्रयपरिणत अर्थात् निश्चयरत्नत्रय-परिणत आत्मा ही एकत्वनिश्चयगत आत्मा है और वही लोक में सर्व सुंदर है, वही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। निष्कर्ष के रूप में वे स्पष्ट लिखते हैं ह्व 'ततः स्थितं स्वसमय एवं आत्मनः स्वरूपमिति' ह्व अतः निश्चित हुआ कि स्वसमय ही आत्मा का स्वरूप है।'

'बंधकथा' का अर्थ कर्मजनित गुणस्थान आदि पर्याय करते हुए वे कहते हैं कि आत्मा के साथ बंध की कथा अर्थात् गुणस्थानादि की चर्चा विसंवादिनी है, असत्य है। ध्यान रहे आचार्य जयसेन विसंवादिनी का अर्थ स्पष्टरूप से असत्य करते हैं।

इसप्रकार उनके अनुसार गुणस्थानादिपर्यायों की चर्चा अथवा इन पर्यायों की ओर से आत्मा की चर्चा असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि स्वसमय की कथा वास्तविक है, करने योग्य है, विसंवाद मिटाने वाली है और परसमय की चर्चा करना ठीक नहीं है, विसंवाद करने वाली है, बंध की कथा है; जिसे इस जीव ने अनंत बार सुनी है, समझी है; पर एकत्वनिश्चयगत स्वसमय की कथा न सुनी है न समझी है और न उसका परिचय ही प्राप्त किया है।

इसी भाव को आचार्य कुंदकुंद देव स्वयं अगली गाथा में व्यक्त कर रहे हैं।

आचार्य देव जिस एकत्व-विभक्त भगवान आत्मा की चर्चा समयसार में करने वाले हैं, उसके औचित्य पर प्रकाश तो आगामी गाथा में डाला जायेगा; यहाँ तो मात्र इतना ही बताना है कि बंधकथा में उलझने से कोई लाभ नहीं है।<sup>44</sup>

### वैशिष्ट्य

- (1) समयसार की मूल विषय-वस्तु को अत्यंत सरल भाषा एवं सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है।
- (2) यहाँ नवतत्त्वों में छुपी हुई परम शुद्धनिश्चयनय की विषयभूत आत्मज्योति को प्रकाशित किया गया है।
- (3) प्राकृत गाथाओं एवं संस्कृत कलशों का सरल हिन्दी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया है।
- (4) समयसार के इस अनुशीलन में समयसार की मूल गाथाओं के साथ-साथ आचार्य अमृतचंद्र की 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका को मुख्य आधार बनाया गया है।
- (5) अल्पबुद्धि वालों के लिए भी यह पठनीय बन गया है।
- (6) इस समयसार अनुशीलन से ही प्रभावित होकर राष्ट्रीय संत आचार्य विद्यानंदिजी ने डॉ. भारिल्ल को अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के स्वर्ण जयंति समारोह के अवसर पर आयोजित 'समयसार वाँचना 18-4-98 से 22-4-98 तक दिल्ली में हुई; उस समय 'समयसार भारिल्ल' कहकर संबोधित किया था।

### ● सत्य की खोज

**नामकरण** - प्रस्तुत कृति में सामाजिक तथ्यों और आध्यात्मिक सत्य को उजागर करने का ही लेखक ने प्रयास किया है। जिसमें वह सफल रहा है। लेखक ने विवेक के मुँह से कहलाया।

“सत्य नहीं, सत्य की खोज खो गई है। सत्य की नहीं, सत्य की खोज को खोजना है। खोज की रूचि जागृत हो गई तो सत्य मिलते देर न लगेगी।”<sup>45</sup> उक्त बातों को लेकर ही 'लेखक' ने प्रस्तुत कृति का नामकरण 'सत्य की खोज' रखा, जो सार्थक है, क्योंकि लेखक ने इसमें सत्य की खोज की है।

**आधारस्रोत** ह यह उपन्यास किसी कारणवश उस समय उत्पन्न भ्रांतियों अंधविश्वासों, पाखंडों के निराकरण एवं भ्रमित समाज को सही दिशाबोध प्रदान करने हेतु लिखा गया है। अतः कहा जा सकता है कि तात्कालीन परिस्थितियाँ प्रदान करने हेतु लिखा गया है। अतः कहा जा सकता है कि तात्कालीन परिस्थितियाँ ही इसका आधारस्रोत रही है। लेखक ने 'अपनी बात' में भी लिखा है ह

“वर्तमान संदर्भ में सामाजिक तथ्यों और आध्यात्मिक सत्य को उजागर करने के लिए ही यह अभिनव प्रयोग किया गया है। सरल, सुबोध और रोचक कथानक के माध्यम से सत्य और तथ्यों को उजागर करने का विकल्प मुझे बहुत दिनों से चलता रहा है। अवकाश के क्षणों में इसकी चर्चा घर पर भी किया करता था।

इसी बीच अनेक पुस्तकें लिखी और वे समाज में समादृत भी हुईं, पर यह बात टलती ही रही। यदि शुद्धात्मप्रभा व परमात्मप्रकाश बलात् न लिखा लेते तो अभी भी बात टलती ही जाती। यह कथानक लिखा नहीं गया है, वरन् हाथ में पेन देकर एवं सामने कागज रखकर बलात् लिखाया गया।”<sup>46</sup> अतः लेखक के पुत्र-पुत्री इस कृति के लिखाने में निमित्त बने। वहीं 'सन्मति संदेश' में मासिक किस्त के रूप में प्रकाशित हुआ तो चारों ओर से प्रेरणा मिली। अतः उक्त कारण प्रस्तुत कृति के आधारस्रोत रहे हैं।

**विषयवस्तु** – आलोच्य कृति की विषय-वस्तु 40 अंकों में पूर्ण की गई है। लेखक ने अध्यात्म एवं वीतरागता के विषय में व्याप्त भ्रांतियों तथा धर्म के रूप में पलते-पुसते जड़-कर्मकाण्डों के निरसन का प्रयास किया है। उपन्यास के प्रमुख दो पात्र हैं ह युवा पति व पत्नी। दोनों क्रमशः अध्यात्म एवं कर्मकाण्ड के प्रतिनिधि है। पत्नी की एक ही समस्या है कि वह मातृत्व से वंचित है और संतान प्राप्ति के प्रयास में कर्मकाण्ड के ढकोसलों के कारण समस्याएँ खड़ी हो जाती है। जब कर्मकाण्डियों की

हरकतों का भंडाफोड़ होता है तब युवा दंपत्ति, एक ही अध्यात्म की शुद्ध विचारधारा के अनुयायी बन जाते हैं।

इसतरह इस उपन्यास में लेखक का मूल लक्ष्य समाज में वीतराग धर्म का वातावरण निर्माण करना है। रामायण में राम की भाँति अध्यात्म या आत्मतत्त्व ही इस कृति का प्राणतत्त्व है। अपने निश्चित विषय का परिमार्जन में अनेक तथ्य उजागर हुए हैं; उनमें कुछ का उल्लेख दृष्टव्य है ह “विवेकी का कार्य तो यही है कि अपनी बात इसप्रकार रखे कि सुनने वाले के सम्मान को चोट भी न पहुँचे और सत्य उसके सामने आ जाए।”<sup>47</sup>

वास्तव में ज्ञानी की हार ही उसकी सबसे बड़ी जीत है। यह आत्मा दूसरों को सुधारने के निरर्थक प्रयत्न में जितनी शक्ति और समय नष्ट करता है, यदि उसका शतांश भी अपने को सुधारने में लगाए तो यह पूर्ण सुखी हुए बिना न रहे। वस्तु नहीं, मात्र दृष्टि बदलनी है; दृष्टि बदल जाएगी तो सृष्टि स्वयं बदल जाएगी।

कहा है – “सत्य की प्राप्ति व्यक्तिगत क्रिया है और सत्य का प्रचार सामाजिक प्रक्रिया। सत्य की प्राप्ति के लिए अपने में सिमटना जरूरी है और सत्य के प्रचार के लिए जन-जन तक पहुँचना।”<sup>48</sup> धर्म के लिए सत्य जरूरी है और समाज के लिए संगठन। “निमित्त होता है, पर करता नहीं; करता नहीं, पर होता है। राग होता है, पर उपादेय नहीं; उपादेय नहीं, पर होता है।”<sup>49</sup>

यह अध्यात्म रोगों को मेटने वाला महारोग और जगत के सभी चक्करों से बचाने वाला चक्कर है। असफलता के समान सफलता का पचा पाना भी हर एक का काम नहीं है। विवेक कहता है – “धर्म के नाम पर न तो मैं समाज को विघटित होते देख सकता हूँ और न मुझसे धर्म की कीमत पर संगठन ही होगा। मैं धर्म को कायम रखकर समाज संगठित

करूंगा और समाज को संगठित रखकर धर्म को उसके सामने प्रस्तुत करूंगा हूँ यह मेरा संकल्प है।”<sup>50</sup>

इसप्रकार विषय-वस्तु इन तथ्यों को उजागर करने में सक्षम हुई है।

### वैशिष्ट्य

- (1) प्रस्तुत कृति में पारिभाषिक शब्दावली से बचते हुए जैनदर्शन के महत्वपूर्ण संदर्भों पर तर्कसंगत व मौलिक चिंतन प्रस्तुत है।
- (2) सामाजिक और धार्मिक विकृतियों के मर्म पर भी व्यंग्यात्मक शैली में मीठी मार की गई है, जो चुभती तो नहीं, पर उनकी निरर्थकता पर ध्यान अवश्य आकर्षित करती है।
- (3) कथानक के अंतर्गत आध्यात्मिक विषयों का समावेश इस उपन्यास की मौलिक विशेषता है।
- (4) सामाजिक विकृतियों की पृष्ठभूमि में सामाजिक संगठन को कायम रखते हुए तत्त्व प्रचार के मार्ग में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है।
- (5) तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है।

### ● बारह भावना : एक अनुशीलन

**नामकरण** – जैसा इस कृति का नाम है; इस कृति में वैसी ही विषय-वस्तु है। इसमें अनित्यादि बारह प्रकार की भावनाओं की समालोचना की गई है। अतः इस कृति का नाम उपयुक्त है। लेखक कहता है हूँ

“हमारा इस अनुशीलन का उद्देश्य अनुप्रेक्षा-साहित्य का परिशीलन करना नहीं है और न उनका संदर्भ ग्रंथ तैयार करना ही है। हम तो जिनागम के आलोक में अनुप्रेक्षाओं के स्वरूप को विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं, आध्यात्मिक जीवन में इनके चिंतन की आवश्यकता एवं उपयोगिता का तर्कसंगत विश्लेषण करना चाहते हैं।

अनुप्रेक्षा साहित्य की प्रतिपादन शैली का मूल दृष्टिकोण एवं मूल केन्द्र बिन्दु का अनुसंधान ही हमारा अभीष्ट है।”<sup>51</sup>

उक्त उद्धरण में लेखक ने अपनी जो इच्छा व्यक्त की है, उसके अनुरूप इस कृति में कार्य किया है। संपूर्ण कृति में क्रमशः एक-एक कर बारह भावना का शोधपरक सुंदर विवेचन प्रस्तुत किए जाने से उक्त कृति का ‘नामकरण’ बारह भावना : एक अनुशीलन रखा, सार्थक है।

**आधारस्रोत** – प्रस्तुत कृति के निर्माण का आधारस्रोत पण्डित नेमीचंदजी पाटनी रहे हैं। इन्होंने इस विषय पर लिखने के लिए अनुरोध किया, जिसके फलस्वरूप यह कृति निर्मित हुई है। यह बात पं. नेमीचंदजी पाटनी ने इस कृति के प्रकाशकीय में इन शब्दों में लिखी है “डॉ. साहब से मेरा अति निकट का संपर्क है, अतः मैं उनसे ‘आत्मधर्म’ के संपादकीयों के रूप में वैराग्यवर्द्धक बारह भावनाओं संबंधी लेखमाला चलाने का अनुरोध करता ही रहता था। इनका विचार भी ‘जिनवरस्य नयचक्रम्’ के बाद इन पर लिखने का था, पर जब ‘वीतराग-विज्ञान’ का प्रकाशन पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से आरंभ हुआ तो जिनवरस्य नयचक्रम् के लेखमाला को बीच में ही रोककर मेरे अनुरोध को सम्मान देते हुए डॉ. भारिल्ल ने बारह भावना : एक अनुशीलन’ लेखमाला आरंभ की। मेरे अनुरोध पर इसमें इन्होंने बारह भावनाओं पर गंभीर आध्यात्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जो मूलतः पठनीय है।”<sup>52</sup>

डॉ. भारिल्ल का भी ‘जिनवरस्य नयचक्रम्’ की लेखमाला पूर्ण होने पर बारह भावना पर अनुशीलन करने का था ही पर जब ‘आत्मधर्म’ के स्थान ‘वीतराग-विज्ञान’ पत्रिका प्रारंभ करनी पड़ी तो पत्रिका के प्रचार-प्रसार हित में पाटनीजी के अनुरोध पर उक्त लेखमाला प्रारंभ हुई। तत्पश्चात् यह कृति बनकर प्रस्तुत हुई।

**विषयवस्तु** – प्रस्तुत कृति की विषय-वस्तु पद्यमय बारह भावनाएँ, उनका हिन्दी सरलार्थ एवं आचार्य कुंदकुंद और स्वामी कार्तिकेय से

लेकर अद्यावधि उपलब्ध बारह भावना साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इस कृति में कुल तेरह निबंध हैं। प्रथम निबंध 'अनुप्रेक्षा : एक अनुशीलन' के नाम से है। शेष बारह निबंध बारह भावनाओं के नाम से हैं। वे बारह भावनाएँ निम्न हैं ह्र (1) अनित्य (2) अशरण (3) संसार (4) एकत्व (5) अन्यत्व (6) अशुचि (7) आस्रव (8) संवर (9) निर्जरा (10) लोक (11) बोधि दुर्लभ और (12) धर्म। इन बारह भावनाओं में आरम्भ की छह भावनाएँ वैराग्योत्पादक हैं और अन्त की छह भावनाएँ तत्त्वपरक हैं।

प्रथम निबंध में बारह भावनाओं का सामूहिक अनुशीलन किया गया है, जिसमें बारह भावनाओं के चिंतन की आवश्यकता, उपयोगिता, महिमा एवं चिंतन प्रक्रिया के क्रमिक विकास आदि बिन्दुओं को स्पष्ट किया गया है।

तत्पश्चात् बारह निबंधों के माध्यम से प्रत्येक भावना की विषय वस्तु एवं चिंतन मनन प्रक्रिया को आवश्यक उद्धरणों के साथ सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। जहाँ आवश्यकता प्रतीत हुई, वहाँ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। संसार भावना और लोक भावना की चिंतन प्रक्रिया में मूलभूत अंतर क्या है? इसप्रकार की शंकाएँ यथास्थान स्वयं प्रस्तुत कर उसका समुचित समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

अनित्य भावना में यह बताया जाता है कि जिन संयोगों में तू सदा रहना चाहता है; वे क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं। पुत्र, परिवार और कंचन-कामिनी तेरे साथ सदा रहने वाली नहीं या तो ये तुझे छोड़कर चल देंगे या फिर तू ही जब मरण को प्राप्त होगा, तब ये सब सहज ही छूट जावेंगे।

इस बात को सुनकर यह रागी प्राणी इनकी सुरक्षा के अनेक उपाय करता है। जब यह अपने मरणादि को टालने के उपायों का विचार करता है तब अशरण भावना में यह बताया जाता है कि वियोग होना संयोगों का

सहज स्वभाव है, उन्हें रोकने का कोई उपाय नहीं है। कोई ऐसी दवा नहीं, मणि मंत्र तंत्र नहीं है जो तुझे या तेरे पुत्रादि को मरने से बचा ले।

तब यह सोच सकता है कि न सही ये संयोग, दूसरे संयोग तो मिलेंगे ही तब इसे संसार भावना के माध्यम से समझाते हैं कि संयोगों में कहीं भी सुख नहीं है, सभी संयोग दुखरूप ही है। तब यह सोच सकता है कि मिलजुलकर सब भोग लेंगे, उसके उत्तर में एकत्वभावना में दृढ़ किया जाता है कि दुख मिल बाँटकर नहीं भोगे जा सकते, अकेले ही भोगने होंगे। इसी बात को नास्ति से अन्यत्व भावना में दृढ़ किया जाता है कि कोई साथ नहीं दे सकता। जब यह शरीर ही साथ नहीं देता तो स्त्री पुत्रादि परिवार तो क्या साथ देंगे? अशुचिभावना में कहते हैं कि जिस देह से तू राग करता है, वह देह अत्यन्त मलिन है, मल मूत्र का घर है।

इसप्रकार आरंभ की छह भावनाओं में संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न किया जाता है, जिससे यह आत्मा आत्महितकारी तत्त्वों को समझने के लिए तैयार होता है। इन भावनाओं में देहादि परपदार्थों से आत्मा की भिन्नता का ज्ञान कराके भेदविज्ञान की प्रथम सीढ़ी भी पार करा दी जाती है।

जब यह आत्मा शरीरादि परपदार्थों से विरक्त होकर गुण पर्यायरूप निजद्रव्य की सीमा में आ जाता है तब आस्रवभावना में आत्मा में उत्पन्न मिथ्यात्वादि कषायभावों का स्वरूप समझाते हैं। यह बताते हैं कि ये आस्रवभाव दुखरूप है, दुख के कारण है, मलिन हैं, और भगवान आत्मा सुखस्वरूप है, सुख का कारण है एवं अत्यंत पवित्र है।

इसप्रकार आस्रवों से भी दृष्टि हटाकर संवर निर्जरा भावना में अतीन्द्रिय आनंदरूप संवर निर्जरा तत्त्वों का परिज्ञान कराते हैं, उन्हें प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं फिर लोक भावना में लोक का स्वरूप बताकर बोधिदुर्लभ भावना में यह बताते हैं कि इस लोक में एक रत्नत्रय ही दुर्लभ है और सब संयोग तो अनंतबार प्राप्त हुए हैं, पर रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं हुई, यदि हुई



होती तो संसार से पार हो गये होते। अंत में धर्मभावना में यह बताते हैं कि अत्यंत दुर्लभ रत्नत्रयरूप धर्म की आराधना ही इस मनुष्य भव का सार है। मनुष्यभव की सार्थकता एकमात्र त्रिकाली ध्रुव आत्मा के आश्रय से उत्पन्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति में ही है।

इस अनुशीलन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलु यह है कि इसमें बारह भावनाओं की मूल आत्मा आध्यात्मिकता एवं वैराग्यभावना पग-पग पर प्रस्फुटित हुई है। तर्कसंगत गद्य अनुशीलन में बुद्धितत्त्व की प्रधानता होने से भावात्मक वैराग्य भावना को ठेस पहुँचने की संभावना पग-पग पर बनी रहती है, तथापि इसमें सर्वत्र यथासंभव सावधानी बरती गई है।

इस सम्पूर्ण कृति का मूल केन्द्रबिन्दु एक मात्र ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है।

### वैशिष्ट्य

- (1) यहाँ स्पष्ट किया है कि बारह भावनाओं का क्रमिक विकास कैसे हुआ है।
- (2) ऊपर से समान प्रतीत होने वाली भावनाओं के बीच जो मूलभूत अंतर है, उसे स्पष्ट किया गया है।
- (3) प्रत्येक भावना का शोधपरक सुंदर अनुशीलन है।
- (4) विषय-वस्तु के स्पष्टीकरण में उदाहरण और तर्क को माध्यम बनाया गया है।
- (5) बारह भावनाओं की मूल आत्मा (आध्यात्मिकता एवं वैराग्य भावना) पग-पग पर प्रस्फुटित हुई है।
- (6) आचार्य कुंदकुंद से लेकर अद्यावधि तक उपलब्ध बारह भावना नामक साहित्य का भरपूर उपयोग हुआ है।

### ● पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

**नामकरण** – भरतक्षेत्र के आर्यखंड में होने वाले तीर्थकरों के पंचकल्याणक होते हैं। वे जिनधर्म में तीर्थनायक होते हैं। उनका विशेष

महत्त्व है। प्रायः उन्हीं तीर्थकरों की वर्तमान में मूर्तियाँ बनाकर पूजा की जाती है। उन मूर्तियों को पूजने योग्य बनाने हेतु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किये जाते हैं। प्रस्तुत कृति में लेखक ने जिनधर्म में आयोजित होने वाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर विशिष्ट प्रकाश डाला है। अतः प्रस्तुत कृति का उक्त नामकरण उचित है।

**आधार स्रोत** – प्रस्तुत कृति के आधार स्रोत के संबंध में इस कृति के प्रकाशकीय में पण्डित नेमीचन्द पाटनी लिखते हैं कि इस कृति के निर्माण की भी एक कहानी है। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से संबंधित विद्वानों द्वारा अब तक साठ से अधिक पंचकल्याणक देश के विभिन्न भागों में आशातीत सफलता के साथ कराये जा चुके हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के माध्यम से जो भी पंचकल्याणक कराये जाते हैं; उनमें डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल निश्चित रूप से पधारते ही हैं और पंचकल्याणकों के मुख्य आकर्षण पंचकल्याणक प्रसंगों पर होने वाले इनके व्याख्यान ही होते हैं। ये पंचकल्याणक के प्रसंगों को इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि पंचकल्याणकों का स्वरूप स्पष्ट होने के साथ-साथ वातावरण भी एकदम शांत और वैराग्यमय हो जाता है।

पंचकल्याणकों के संदर्भ में होने वाले उनके व्याख्यानों के प्रकाशन की माँग लगातार बनी हुई थी; किन्तु समयाभाव के कारण उनका व्यवस्थित लेखन नहीं हो पा रहा था, बात टलती ही जा रही थी, किन्तु श्री टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर, जयपुर में तथा नवनिर्मित त्रिमूर्ति जिनालय की प्रतिष्ठा के निमित्त से डॉ. भारिल्ल के ही निर्देशन में तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में सन् 1990 के दिसम्बर माह में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने का निर्णय लिया गया तो ट्रस्ट द्वारा उनको आग्रहपूर्वक अनुरोध किया गया कि इस अवसर पर पंचकल्याणकों के संदर्भ में आपकी प्रस्तावित पुस्तक प्रकाशित होनी ही चाहिए। परिणाम स्वरूप प्रस्तुत कृति का निर्माण हुआ।

**विषयवस्तु** – इस कृति की विषयवस्तु में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के आठ दिनों के कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण है; क्योंकि यह प्रतिष्ठा कार्यक्रम तीन दिन पूर्व तैयारी में रूप तथा पाँच कल्याणक के पाँच दिन कुल आठ दिन मनाया जाता है। अतः उन्होंने क्रमशः प्रथम दिन से लेकर आठ दिन पर प्रकाश डाला है।

प्रथम दिन – लेख में लिखा है कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव जैन समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नैमित्तिक महोत्सव है। इस अवसर पर वातावरण एकदम आध्यात्मिक बन जाता है। पाषाणों में उत्कीर्ण या धातुओं से ढले वीतरागी जिनबिंब (मूर्तियाँ) तबतक पूजने योग्य नहीं माने जाते, जबतक कि उनकी विधि पूर्वक प्रतिष्ठा नहीं हो जाती। इसी प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न करने के लिए जो जो महोत्सव होता है, उसे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कहते हैं।

यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का महोत्सव है। इस महोत्सव में पंचकल्याणक संबंधी क्रिया-प्रक्रियाओं के माध्यम से आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का प्रदर्शन होता है।

वर्तमान में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों की बाढ़ सी आ गई है; अतः कुछ लोग इनका निषेध करते हैं तो कुछ लोग समर्थन। इस संबंध में लेखक ने बहुत संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है ह

“न तो नये बनने वाले प्रत्येक जैन मंदिर का निषेध ही आवश्यक है और न बिना विचारे समर्थन करना ही ठीक है। प्रत्येक संबंध में व्यक्तिगत रूप से गुण-दोष के आधार पर सहमति और असहमति व्यक्त की जानी चाहिए।”<sup>53</sup>

लेखक ने कहा है कि नकारात्मक रास्ता चुनने के स्थान पर रचनात्मक रास्ता चुनना ही श्रेयस्कर है।

दूसरा दिन – लेख में लेखक ने कहा है कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में समागत मूर्तियाँ जब भी यहाँ से वापिस जायेंगी, तब वे भगवान बनकर ही जायेंगी, पर इस पंचकल्याणक में समागत जनता की भी कोई जिम्मेदारी है कि जैसे आये हैं, वैसे ही वापिस न चले जावें, यहाँ से कुछ लेकर जावें, कुछ सीखकर जावें। भले ही वे मूर्तियों के समान भगवान न बन पावें, पर उनमें भी तो कुछ न कुछ परिवर्तन तो आना ही चाहिए।

स्नानघर में भी ठंडे पानी से नहाते हैं तो पाँच मिनट के लिए शीतलता मिल जाती है तो ये आठ दिन के पंचकल्याणक कार्यक्रम उससे भी गया बीता तो नहीं है, जो रंचमात्र भी परिवर्तन न आवे।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव असली या नकली इस विषय पर लेखक ने कहा कि न तो ये असली है, न ये नकली; अपितु असली की असल नकल है; जो प्रामाणिक मानी जाती है।

तीसरे दिन – लेख में गर्भकल्याणक के पूर्व माँ के सोलह स्वप्न क्यों आते हैं, उस पर प्रकाश डाला है। आम जनता जो कहती है, हे भगवान् एक बार तो आना पड़ेगा सोते हुए भारत को जगाना पड़ेगा, इस पर इन्होंने करारी चोट की है और कहा कि अपने परिणामों को भी तत्कालीन अयोध्या के नागरिकों जैसे बनाने होंगे। न सही सदा के लिए पर इन आठ दिनों के लिए तो अपने परिणाम सरल करने होंगे, कोमल करने होंगे।

लेखक ने कहा है कि जो लोग पूछते हैं आप आठ दिन के लिए ही परिणामों के सुधारने की बात क्यों करते हो, जीवन भर के लिए क्यों नहीं? इसके समाधान हेतु एक सुंदर घटना (एक पिता जो काशीवास करना चाहता है और इसके पहले अपनी इकलौती विवाहिता बेटी का सुखी संसार देख लेना चाहते हैं) के माध्यम से उक्त प्रश्न का उत्तर दिया है।

यह पंचकल्याणक महोत्सव अपने कल्याण के लिए ही मनाया जा रहा है। यह भगवान का नहीं, अपना ही महोत्सव है।

चौथा दिन – लेख गर्भकल्याणक का है। इसमें कहा गया है कि पाँचों ही कल्याणक आत्मकल्याण के उत्कृष्ट निमित्त होने के कारण कल्याणक कहलाते हैं। तप, ज्ञान, मोक्ष ये तीनों ही कल्याणक सहज स्वीकृत हो जाते हैं, पर गर्भ व जन्म कल्याणक कैसे? इस विषय पर लेखक ने उत्तर दिया है कि यह अंतिम गर्भ व जन्म हैं; जिसके बाद फिर न गर्भ में आयेंगे, न जन्म होगा। अतः गर्भ व जन्म स्व-पर के कल्याण स्वरूप है; अतः ये भी कल्याणक हैं।

कोई भी जीव केवलज्ञान प्राप्त होने पर भगवान बनता है, पर तीर्थंकर के जीव के गर्भ में आने से ही भगवान कहने लगते हैं तो उसका हेतु कहा कि भावि नैगमनय से हम ऐसा कह सकते हैं। वस्तुतः भगवान तो केवलज्ञान होने पर ही होंगे।

पाँचवा दिन – लेख में जन्मकल्याणक पर चर्चा की गई है। यहाँ बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से ऋषभदेव की शादी के स्वीकृति का प्रसंग माता-पिता के तर्क विचारों के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा कहा गया है ह “संयोगी भावों के आधार पर राग या वैराग्य का निर्णय करना उचित नहीं है, ज्ञानी-अज्ञानी का निर्णय भी संयोग और संयोगी भावों के आधार पर नहीं किया जा सकता।”<sup>54</sup>

ज्ञानी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि ज्ञानियों की भक्ति भी उनके प्रमुदित मन का परिणाम होती है, किसी अन्य की प्रसन्नता के लिए नहीं।

इस लेख में राजा ऋषभदेव के परिवार का वर्णन है।

छठवाँ दिन – लेख दीक्षा कल्याणक पर है। यहाँ तीन बातों पर विचार प्रकट किये हैं ह

1. नीलांजना का नृत्य, जिसके कारण ऋषभदेव को वैराग्य हुआ था, इसमें लेखक का मौलिक चिंतन प्रकट हुआ है और कहा कि उनके वैराग्य का कारण नीलांजना की मौत नहीं थी, अपितु जगत के स्वार्थीपन, निष्ठुरता थी। नीलांजना की मृत्यु निमित्त मात्र थी।
2. चार हजार मुनिराज जो ऋषभदेव के साथ दीक्षित हुए थे।
3. आहारदान, जिसके लिए मुनिराज ऋषभदेव को 6 माह तक भटकना पड़ा था।

सातवाँ दिन – लेख केवलज्ञानकल्याणक पर है। यहाँ केवलज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा कि केवलज्ञान माने सर्वज्ञता, सम्पूर्ण ज्ञान। सम्पूर्ण जगत में लोकालोक में जितने भी पदार्थ है, उन सभी को उनके सम्पूर्ण गुण और भूत, भविष्य एवं वर्तमान की समस्त पर्यायों सहित एक समय में बिना किसी की सहायता से इंद्रियों के बिना, सीधे आत्मा से प्रत्यक्ष जानना ही केवलज्ञान है। इसके अतिरिक्त यहाँ तीन विशेष बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है ह

1. ऋषभदेव की धर्मसभा समोसरण की रचना।
2. भगवान ऋषभदेव की दिव्यध्वनि।
3. दिव्यध्वनि में समागत वस्तु का स्वरूप।

आठवाँ दिन – लेख मोक्षकल्याणक पर है। लेखक ने कहा कि यद्यपि निर्वाण महोत्सव भी खुशी का महोत्सव है, क्योंकि यह आत्मा की सर्वोच्च उपलब्धि का दिन है। मोक्षकल्याणक का दिन भगवान के संयोग का नहीं, वियोग का दिन है। अतः गंभीर चिंतन का दिन है। अपने पैरों पर खड़े होने का दिन है। अबतक जो कुछ भी सुना है, समझा हैं; उसे जीवन में उतारने के संकल्प करने का दिन है। बंधनों से मुक्त होना ही मोक्ष है। मोक्ष आत्मा की अनंत आनंदमय अतीन्द्रिय दशा है। इस दिन के लेख में विशेष रूप से जीवन में निर्मलता करने की प्रेरणा बार-बार दी है।

### वैशिष्ट्य

- (1) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रकाश डालने वाली यह एक मात्र कृति है।
- (2) इसमें अनेक विशिष्ट बिन्दुओं पर मनोवैज्ञानिक रीति से तर्कमय शैली से आगम के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला गया है।
- (3) यह सम्पूर्ण कृति व्याख्यान शैली में हैं; क्योंकि प्रवचनों को ही सुव्यवस्थित कर उन्हें लिपिबद्ध किया गया है।
- (4) वर्तमान में बढ़ती पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं का जो लोग निषेध करते हैं; उनके लिए तथा जो समर्थन करते हैं; उनके लिए यह एक समुचित समाधान है।
- (5) ऋषभदेव के वैराग्य प्रसंग को सुंदर रीति से प्रस्तुत किया गया है।

#### ● आप कुछ भी कहो

**नामकरण** – ‘आप कुछ भी कहो’ प्रथम कहानी के आधार पर ही इस कृति का नामकरण ‘आप कुछ भी कहो’ रखा गया है।

**आधार स्रोत** – प्रस्तुत कृति में दस कहानियाँ हैं। इन दस कहानियों में से 9 कहानियाँ सन् 1983 में लिखी गई हैं, जो क्रमशः ‘जैनपथ प्रदर्शक’ में प्रकाशित भी हुई हैं। अंतिम कहानी ‘असंतोष की जड़’ सन् 1983 से 22 वर्ष पुरानी रचना है। इन कहानियों को पाठकों ने काफी सराहा तथा पाठकों का आग्रह रहा कि ये पुस्तकाकार प्रकाशित हों। जैनसाहित्य समालोचक विद्वान श्री रतनलाल कटारिया, केकड़ी वालों ने पत्र में इन कहानियों को प्रकाशनार्थ लिखा था। जो प्रेरणा का विशेष स्रोत बन गया था। परिणामतः यह कृति पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो गई।

**विषय वस्तु** – प्रथम कहानी ‘आप कुछ भी कहो’ है। इसकी कथा वस्तु इसप्रकार है कि एक श्रेष्ठीराज जैनधर्म का सच्चा भक्त है। एक बार राजसभा में कुछ विरोधियों द्वारा दिगंबर धर्म की हँसी उड़ाई जा रही थी

और कहा जा रहा था दिगंबर साधु कोढ़ी होते हैं। वे कुछ भी नहीं कर सकते, इस पर श्रेष्ठीराज ने विरोध जताया, तब लोगों ने कहा कि यह झूठ कहता है। हम आपको ऐसे मुनिराज दिखाते हैं। तब इसे ख्याल आया कि एक वादिराज मुनि जो नगर के निकट है; वे कोढ़ी है। तब वह महाराज श्री के पास जाता है। सारी घटना बताता है। कुछ करने का निवेदन करता है। मुनिराज उस संबंध में कुछ भी करने से इंकार हो जाते हैं। दूसरे दिन राजा और नगरवासी सभी साथ देखने जाते हैं। वहाँ वे वादिराज मुनिराज की सुंदर देह को देखते हैं। राजा कहता है आप तो कुष्ठ रोगी थे, फिर यह कैसे हुआ। महाराज ने कहा—न तो हमने कुछ किया है, न हम करने में विश्वास रखते हैं। न मंत्र, न भक्ति, न तंत्र ही किये हैं। यह तो स्वतः ही सुंदर बन गया है। तुम्हें विश्वास न हो तो यह अंगुली देखें। यहाँ कुष्ठ बाकी है। यदि हम करते तो इतना भी बाकी क्यों रखते?

वहाँ उपस्थित अनेक व्यक्ति अनेक ढंग से बात कर रहे थे पर कुछ लोग महाराज से कहते हैं – “आप कुछ भी कहो, पर हम तो इसे आपका चमत्कार ही मानेंगे।” इस अंतिम वाक्य से कथानक समाप्त हो जाता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने अज्ञान की जड़ें कितनी गहरी होती हैं इस तथ्य को जिस सुंदरता के साथ उजागर किया है, उससे समस्त चमत्कारिक कल्पनाओं की वास्तविकता सहज स्पष्ट हो जाती है।

**द्वितीय कहानी** – ‘अक्षम्य अपराध’ है। इसके कथानक में मुनिराज श्रुतसागर, बलि आदि मंत्रियों से वाद-विवाद की बात आचार्य श्री को बतलाते हैं और उसके लिए प्रायश्चित्त माँगते हैं। इस कथानक की मुख्य विशेषता यह है कि जिसे सारा जगत श्रुतसागर की अच्छाई समझता है; उसे श्रुतसागर स्वयं अक्षम्य अपराध समझते हैं। लेखक ने प्रस्तुत कहानी में बताया है कि तात्त्विक अज्ञान के कारण कभी-कभी हम अक्षम्य अपराधों को भी गुणों के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

**तीसरी कहानी** – ‘जागृत विवेक’ है। इसमें दो हजार वर्ष पूर्व धरसेनाचार्य ने श्रुतपरंपरा की सुरक्षा हेतु पुष्पदंत और भूतबली की परीक्षा लेकर किस तरह उनको शिक्षा देने का निर्णय किया। यही मूल कथानक है। इस कहानी में लेखक ने विद्यार्जन में विनय और विवेक के स्थान का निर्धारण किया है। आचार्य धरसेन के निम्नांकित कथन में सब-कुछ आ गया है – “यद्यपि विवेक का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु वह विनय और मर्यादा को भंग करने वाला नहीं होना चाहिए। विवेक के नाम पर कुछ भी कर डालना तो महापाप है; क्योंकि निरंकुश विवेक पूर्वजों से प्राप्त श्रुतपरंपरा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।”<sup>55</sup>

**चतुर्थ कहानी** – ‘अभागा भरत’ के नाम से है। इसकी कथा में भरताधिपति सम्राट भरत के दरबार में जब एक के बाद एक तीन शुभ समाचार आये तो सम्पूर्ण दरबार आनांदातिरेक से झूम उठा, आनंद सागर में डूब गया; पर सम्राट भरत जल से भिन्न कमलवत् अलिप्त ही बने रहे।

इस कथा में अपने कथाकौशल से अद्भुत रंग भर दिया है। जहाँ सारी जनता भरत को भाग्यशाली मान रही है; वही भरत अपने को अभागा मान रहा है और लेखक ने यहाँ भरत के मुख से ही भरत को अभागा स्वीकार कराया है। जब भरत दिग्विजय के लिए निकलते हैं तो माँ के चरणों की वंदना के समय अश्रुधारा बह निकलती है। तब उनकी माँ नंदा कहती है –

“भरतक्षेत्र के भावी भाग्यविधाता, आद्य चक्रवर्ती सम्राट, नंदा के दुग्ध से पुष्ट भाग्यशाली ऋषभपुत्र की इस कातरता का कारण राजमाता जानना चाहती है; क्योंकि उन्हें यह इष्ट प्रतीत नहीं होती।”<sup>56</sup>

इसके प्रत्युत्तर में भरत का कथन द्रष्टव्य है ह

“भरत को और चाहे जो कुछ कहे, पर भाग्यशाली नहीं। आज इस अभागे भरत को अपने सौ भाईयों एवं उन नागरिकों के भाग्य से ईर्ष्या हो

रही है, जिन्हें आज से ही प्रतिदिन दिन में तीन-तीन बार छह-छह घड़ी भगवान ऋषभदेव की दिव्यध्वनि सुनने का अवसर प्राप्त होगा और उसी समय तुम्हारा यह अभागा भरत साम-दाम-दण्ड-भेद की राजनीति में उलझा होगा, युद्ध का संचालन कर रहा होगा।”<sup>57</sup>

कहानी का अंतिम वाक्य भी झकझोरने वाला है ह

“नहीं-नहीं, कदापि नहीं। दुनियाँ कुछ भी कहें पर भरत भाग्यवान् नहीं, अभागा ही है।”<sup>58</sup>

**पंचम कहानी** – ‘उच्छिष्ट भोजी’ नाम की है। मूल कथा यह है कि भरत छह खंड का राज्य जीतकर आ गया है और माँ के चरणों में झुक जाता है। माँ बहुत प्रसन्न है, पर भरत के भाल पर जो दिग्विजय का गर्व तथा व्यवहार में उत्साह नजर आना चाहिए था, वह नहीं आता। तब माता उसका कारण पूछती है। माँ भरत को भाग्यशाली और छह खण्डों को भोगने वाला प्रथम चक्रवर्ती मानती है; जबकि भरत अपने को उच्छिष्ट भोजी।

“नहीं माँ नहीं, मुझे भी भ्रम था; पर जब मैं दिग्विजय के अवसर पर जगप्रसिद्ध शिला पर अपना नाम लिखने गया तो वह शिला उन चक्रवृत्तियों के नामों से भरी पड़ी थी, जिन्होंने अबतक इस भरत के छह खण्डों को भोगा था। मुझे एक चक्रवर्ती का नाम मिटाकर अपना नाम लिखना पड़ा। तब मुझे पता चला कि मैं जिस वसुधा को अभुक्त समझ रहा था, वह उच्छिष्ट है, मैं अभुक्त भोजी नहीं, उच्छिष्ट भोजी हूँ।”<sup>59</sup>

कहानी का अंतिम वाक्य पूर्णतः कथा की मार्मिकता को छू जाता है ह “माँ, तेरे भरत का राग चाहे उसके वश की बात न हो; पर उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान-विवेक धोखा नहीं खा सकता। भले ही भरत इस चक्रवर्तित्व को छोड़ न सके, पर इसमें रहकर गर्व अनुभव नहीं कर सकता, इसमें रम नहीं सकता।

चक्रवर्तित्व भरत का गौरव नहीं; मजबूरी है, मजबूरी।”<sup>60</sup>

**छठी कहानी** – ‘परिवर्तन’ है। इसमें बीसवीं सदी के आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के सम्प्रदाय परिवर्तन की कथा का प्रस्तुतीकरण है।

वे स्थानकवासी जैन संप्रदाय में उत्पन्न हुए थे और उसी में मुनि बने; परन्तु उनको इस सम्प्रदाय का धर्म सत्य भाषित नहीं हुआ। दिगम्बर जैनधर्म सत्य लगा। उन्होंने उस सम्प्रदाय को छोड़कर अपने को दिगंबर धर्म का ‘अव्रती श्रावक’ घोषित कर दिया।

इन्हें कितनी ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, फिर भी वे अचल रहे। स्वामीजी को डराया-धमकाया, रोटी नहीं मिलेगी आदि बातें कही। तब स्वामीजी ने कहा हूँ

“रोटियों की चिंता करने वाले घर नहीं छोड़ा करते। तुम रोटियों की बात करते हो, जो चिंतामणि मुझे प्राप्त हुआ है, उसके लिए मैं संप्रदाय एवं उसका गुरुत्व तो क्या, चक्रवर्ती की संपदा एवं तीर्थंकर जैसा गुरुत्व भी तृणवत् त्याग सकता हूँ। मुझे अशरीरी होने का मार्ग मिल गया है, अब मैं इस शरीर की क्या चिंता करूँ।”<sup>61</sup>

**सातवीं कहानी** – ‘जरा सा अविवेक’ है। सेठ धनपतराय एवं पण्डित सुमतिचंद दोनों घनिष्ठ मित्र थे। वे दोनों ही गाँव के विकास की योजनाएँ बनाते थे। एक बार सेठजी के घर सोने का कड़ा खो जाता है। कड़ा खोजने पर नहीं मिलता है। तब पूछा जाता है कि घर पर कौन-कौन आया था। तब कहा जाता है कि पंडितजी के अलावा कोई नहीं आया। रोज की तरह पण्डित सेठ के घर पहुँचे। तब दरवाजा बंद था और बातचीत हो रही थी; जिसे पंडितजी ने सुन लिया। उन्होंने वैसा ही कड़ा अपने घर से सेठजी को दे दिया और कहा कि मेरे जेब में बच्चों ने खेलते-खेलते कड़ा डाल दिया था। यह कड़ा पंडितजी के देने पर सब नाना प्रकार की बातें करने लगे। सेठजी को जरा भी विश्वास नहीं हो रहा था कि ऐसा

हुआ है, पर पंडितजी बार-बार वही कहा कर रहे थे। एक दिन वर्षा ऋतु में नाली साफ कर रहे थे, वहाँ वह कड़ा मिल जाता है। सारी बात खुल जाती है। वे सब लोग पंडितजी के घर जाते हैं, तब पंडितजी उन तीन कड़ों में एक कड़ा और लाकर रखते हैं, तब लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। सबकी आँखों से अश्रुधारा बह जाती है। सेठानी बिलखती हुई कहती है हूँ

“हे भगवान्! मेरे जरा से अविवेक ने क्या अनर्थ कर डाला? एक ज्ञानी की विराधना कर अनंत ज्ञानियों की विराधना का महापाप तो किया ही, साथ में अपने पति की आंतरिक शांति को भंग कर उनका जीना भी दूभर कर दिया।”<sup>62</sup>

इसप्रकार कहानी में जरा से अविवेक का क्या दुष्परिणाम निकलता है उसे प्रतिबिम्बित किया गया है।

**आठवीं कहानी** ‘गाँठ खोल देखी नहीं’ है। इसमें जयपुर के प्रसिद्ध जौहरी सेठ जवाहरलाल के अपने अंतिम समय में एक लाल मणी (अचेतनलाल) तथा एक उनका पुत्र चेतनलाल दोनों को पत्नी को सौंप कर कहा कि ‘जब चेतनलाल समझदार हो जाए तब उसे अचेतनलाल सौंप देना।’ कहकर स्वर्ग सिधार गये। पूर्व में जवाहरलाल गरीब थे, फिर अमीर हो गये और पुनः गरीब हो गए, विधवा माँ ने अनेक तरह परिश्रम कर चेतन को पढ़ाया लिखाया था। जब समझदार हुआ तो वह नौकरी करने को कहता है तो माँ मना करती है और कहती है ‘ये लाल बेचकर पूँजी प्राप्त कर व्यापार करें।’ वह उस लाल को लेकर जयपुर के अनेक जौहरियों के पास गया। पर किसी ने सही कीमत नहीं आंकी। वह बंबई गया। वहाँ भी वही कीमत आंकी। सेठ माणिकचंद ने उसे अपनी पीढ़ी पर बुलाया। उससे सारी जानकारी ली और कहा कि इस लाल की कीमत हम क्या दे सकते हैं? उससे कहा कि अभी सीजन ऑफ है। सीजन आने पर इसे बेचना। उसके हाथों में ही वह लाल तिजोरी में रखवा दिया और

नौकरों से कह दिया कि जो भी माल खरीदो और बेचो इसे बताकर ही कार्य करोगे। छह माह में वह परिपक्व हो गया। सेठजी ने चेतनलाल से कहा कि अब सीजन आ गई है, चाबी माँ से मंगवालो और अपना हीरा बेच दो। जब वह हीरा उस तिजोरी से निकालता है तो वह देखता है कि यह तो काँच का टुकड़ा है। चेतन सब कुछ समझ गया और सेठजी से कहता है कि आपने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया। अब मैं अपना कर्ज कैसे उतारूँगा। सेठजी कहते हैं तो अब भी 'लाल' की कीमत नहीं चुका सकता हूँ। तुम चेतनलाल हो। तुम ही यह अब सब कार्यभार संभालो और माँ को भी यहाँ ही बुला लो। इस तरह यहाँ 'चेतनलाल' की महत्ता बताई है।

**नवीं कहानी** 'तिरिया चरित्र' है। एक निपुणधारी पंडितजी ने तिरिया चरित्र पर कई शास्त्र लिखे थे, जिन्हें लेकर वे जा रहे थे। वे एक पनघट पर पानी पीने रुके। वहाँ एक पनिहारिन ने उनसे पूछा 'ये कौन है?' तब पंडितजी के शिष्यगणों ने परिचय दिया, विशेष प्रशंसा की। पनिहारिन ने उन सबको उसके घर एक दो दिन ठहरने का निमंत्रण दिया, जिसे पंडितजी ने स्वीकार कर लिया। पनिहारिन पंडितजी को लेकर घर गई। ऊँचे आसन पर बिठाया। घर का किवाड़ बंद कर गृह कार्य में लग गई। काम से निवृत्त होकर पंडितजी से चर्चा की।

पंडित ने कहा ह **स्त्री चरित्रं, पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति; कुतो मनुष्यः** यह ग्रंथराज इस सूक्ति की सत्यता पर प्रश्न चिह्न लगा देने वाला सिद्ध होगा।

वे दोनों बातें कर रहे थे कि बाहर से उसके पति ने दरवाजा खट-खटाया। दोनों घबराये। उस पनिहारिन ने कहा कि पंडितजी ये बड़ा जालिम है। आप इस संदूक में छुप जाओ। उसे संदूक में छुपा दिया, फिर किवाड़ खोला, पति क्रोध से पूछता है कि इतनी देर क्यों हुई। वह हँसती हुई कहती है कि एक आदमी था; उसे छुपाती तब तो खोलती। पति को

विश्वास नहीं हुआ। पर बारबार कहने पर वह संदूक की चाबी उठाने जाता है तो वह जोर से हँसती है, तब वह नहीं खोलता है। पंडितजी अंदर ही घबरा रहे थे। उसका पति भोजन कर चला जाता है और वह उसे बाहर निकालती है। कहती है ह

तिरियाओं का यह चरित्र भी तुम्हारी इन पोथियों में है। पंडितजी पसीना पोछते हुए बोले ह "नहीं, यह तो मैंने आज ही देखा है।" वह उसे समझाती है और कहती है ह "इसलिए तो मैं कहती हूँ कि लिखने से पहले लिखना, देखना, अनुभव करना अत्यावश्यक है।" इसप्रकार इस कहानी में तिरियाचरितं कोऽपि न जानाति' की सिद्धि की है।

**अंतिम दसवीं कहानी** - 'असंतोष की जड़' है। जो पत्र की शैली में लिखी गई है। करुणा अपनी सखी शांता को अपनी पति के समय जो कुछ घटित हुआ, वह लिखती है। शांता की अपने पति के साथ पटरी नहीं बैठती थी। वह तंग आकर कुएँ में गिरने जाती है, वहीं उसका पति उसे गिरने से रोकता है। वह अब अपने पति के साथ रहना चाहती है, पर पति मना करते हैं। वह कहता है ह "नहीं, बिल्कुल नहीं; ऐसे ना समझ साथी के साथ तो कतई नहीं, जो देवी न सही, पर सही अर्थों में मानवी भी न हो, एकदम पशुता पर उतर आये; जिसे दूसरे की न सही, अपने जीवन की भी परवाह न हो, नरक निगोद का भी भय न हो।"<sup>63</sup>

वह लिखती है - "री बहिन! वे बातें मुझे आज बार-बार याद आती है। जब वे कहा करते थे कि आदमी चाहे जितना बड़ा हो जावे, देवता भी क्यों न हो जावे, दुनियाँ उसके चरण चूमें; पर पत्नी को उसमें कुछ न कुछ कमी नजर आती ही रहती है। सच्चे दिल से वह उसे अपने योग्य स्वीकार नहीं कर पाती। वह अपनी कल्पना में एक पति की एक ऐसी काल्पनिक मूर्ति गढ़ लेती है कि जिसकी कसौटी पर आज तक कोई पति खरा नहीं उतर पाया। उसकी यह असंभव कल्पना ही **असंतोष की**

जड़ है।”<sup>64</sup> इसप्रकार प्रस्तुत कहानी में पत्नी को असंतोष क्यों रहता है, उसके मूल कारण पर लेखक ने प्रकाश डाला है।

### वैशिष्ट्य

- (1) यह अपने प्रकार की अनूठी रचना है। इसमें पौराणिक प्रसंगों पर नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। मूलतः बात तो पुरानी ही है, पर प्रस्तुतीकरण एकदम नया है। दिशाबोध देने वाला है।
- (2) अज्ञान की जड़ें कितनी गहरी होती है – इस तथ्य को उजागर किया है।
- (3) सभी कहानियों में अध्यात्म का पुट तिल में तेल की भाँति सर्वत्र अनुष्ण है। जिसमें लेखक की रुचि का स्वतः ज्ञान हो जाता है।
- (4) इन कहानियों में जैनदर्शन के मूल सिद्धांत अकर्तृत्व का पोषण किया गया है।
- (5) लेखक ने प्रत्येक कहानी के माध्यम से कुछ विशेष कहने का प्रयास किया है।
- (6) कथाशिल्प, संप्रेषण, भाषा की दृष्टि से भी कहानियाँ रोचक है।

### ● चैतन्य चमत्कार

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति का नामकरण ‘प्रथम इंटरव्यू’ चैतन्य चमत्कार के आधार पर रखा गया है। जब कानजी स्वामी से इंटरव्यू लिया गया तो उन्होंने कहा था कि हमारे पास तो चैतन्य का चमत्कार है, जादू की लकड़ी का नहीं। बस इस वाक्य में आए ‘चैतन्य चमत्कार’ से इंटरव्यू का शीर्षक चैतन्य चमत्कार किया और जब छह इंटरव्यू का संकलन रूप यह कृति प्रकाशित हुई तो प्रथम इंटरव्यू के शीर्षक से ही सम्पूर्ण कृति का नामकरण किया गया है।

**आधार स्रोत** – आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के जीवन काल में ही उनके संबंध में अनेक भ्रांत धारणाएँ फैली या जान-बूझकर फैलाई गई, जिसमें सम्पूर्ण जैन समाज आंदोलित हो उठा।

जब 1976 में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के हाथ में ‘आत्मधर्म’ (हिन्दी) का संपादन आया तो इन्होंने उन भ्रांत धारणाओं के निराकरण के लिए आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के अनेक इंटरव्यू लिए और उन्हें आत्मधर्म के सम्पादकीयों के रूप में प्रकाशित किया। जिनका प्रभाव समाज पर जादू जैसा हुआ। परिणामस्वरूप उन समस्त इंटरव्यूओं को ‘चैतन्य चमत्कार’ नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया।

**विषयवस्तु** – हिन्दी साहित्य में प्रचलित ‘साक्षात्कार’ विधा के अंतर्गत तैयार की गई यह कृति है। इसमें कानजी स्वामी से लिये गये छह साक्षात्कार हैं। प्रथम साक्षात्कार का नाम ‘चैतन्यचमत्कार’ है। इसमें स्वामीजी के बारे में कुछ धारणाएँ तत्कालीन समाज में प्रश्नों के रूप में उपस्थित थीं। जिनकी चर्चा सर्वत्र होती देखी जाती थी। उन प्रश्नों के उत्तर, उन शंकाओं का समाधान, स्वयं स्वामीजी के मुख से हो ह इसी उद्देश्य से यह इंटरव्यू प्रकाशित किये गये हैं। कुछ प्रश्न या आशंकाएँ इसप्रकार हैं

1. जादू की लकड़ी
2. जो आपके पास आता है, आपका हो जाता है।
3. गुरुदेव क्यों कहते हैं?
4. साधु को नहीं मानते।
5. समयसार ग्रंथ ही पढ़ना।
6. पुण्य को हेय कहने से पूजा-पाठ, दया-दान करना कि नहीं।
7. दान धर्म नहीं तो फिर क्यों करें दान?
8. समाज में सर्वत्र दो दल हो गए हैं। यदि थोड़ा आप झुके और थोड़े वे तो समझौता हो सकता है आदि।

द्वितीय साक्षात्कार का नाम ‘सम्यग्ज्ञान दीपिका’ रखा है। यह साक्षात्कार ‘सम्यग्ज्ञान दीपिका’ कृति को लेकर कतिपय निहित स्वार्थों



द्वारा समाज में अनेक भ्रम फैलाएँ जा रहे थे, उनके समुचित समाधान हेतु डॉ. भारिल्ल द्वारा आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी से सोनगढ़ में दिनांक 16-10-1976 को इंटरव्यू लिया गया था। स्वामीजी से जब कहा गया कि लोग सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर आपका विरोध कर रहे हैं तो स्वामीजी कहते हैं ह्व “कौन किसका विरोध करता है, अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं।”

तीसरा साक्षात्कार ‘अब हम क्या चर्चा करें?’ के नाम से है। स्वामीजी किसी से कोई चर्चा नहीं करते, वे किसी की बात भी नहीं सुनते, अपनी ही कहे जाते हैं। इसप्रकार की चर्चा बुद्धिपूर्वक जोरों से चलाई जा रही थी। उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे, इस पवित्र उद्देश्य से डॉ. भारिल्ल ने पूछा कि ह्व

“प्रश्न वाद-विवाद का नहीं, चर्चा करने का है, वाद विवाद में मत पडिये; पर आप तत्त्वचर्चा से क्यों इंकार करते हैं?”

तब स्वामीजी ने कहा - “चर्चा तो यहाँ प्रतिदिन होती है, शाम को 45 मिनट। पर जिसतरह की चर्चा की वे लोग बात करते हैं, यह तत्त्वचर्चा नहीं, वह वीतराग चर्चा नहीं, वह तो वाद-विवाद ही है। वे लोग बात तो चर्चा की करते हैं और करना चाहते हैं वाद-विवाद।”<sup>65</sup>

चौथा साक्षात्कार ‘हम तो उनके दासानुदास है।’ स्वामीजी मुनि विरोधी है, नया पंथ चला रहे हैं; आदि न जाने कितनी बे सिर-पैर की अफवाहें तत्कालीन समाज में बुद्धिपूर्वक उठाई जा रही थी; अतः उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे, इस पवित्र भावना से डॉ. भारिल्ल द्वारा 27-12-1977 को सोनगढ़ में स्वामी से यह इंटरव्यू लिया था।

इसमें स्वामीजी ने बताया - “हम अपमान तो किसी का भी नहीं करते, निन्दा भी किसी की नहीं करते; फिर मुनिराजों की निन्दा करने का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है, हम तो उनके दासानुदास है।”<sup>66</sup>

वे कहते हैं कि मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्तिमानस्वरूप हैं। मुनिविरोध का अर्थ है ह्व संवर और निर्जरा तत्त्व की अस्वीकृति।

पाँचवाँ साक्षात्कार ‘वह तो नाम मात्र का भी जैन नहीं’ शीर्षक से है। स्वामीजी खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं - आदि न जाने कैसी-कैसी बे सिर पैर की अफवाहें निहित स्वार्थी लोगों द्वारा बुद्धिपूर्वक फैलाई जा रही थी। उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे, इस पवित्र भावना से डॉ. भारिल्ल ने यह इंटरव्यू कुरावड़ (उदयपुर) में पंचकल्याणक के दीक्षा कल्याणक के दिन 18-5-1978 को लिया। इसमें स्वामीजी ने कहा कि जो मद्य, मांस, मधु का सेवन करता है, जिसमें अगणित त्रसजीव पाये जाते हैं ह्व ऐसे पंच उदम्बर फलों को खाता है, वह तो नाम मात्र का भी जैन नहीं, जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं है तथा रात्रि भोजन में माँस भक्षण का दोष है।

छठवाँ साक्षात्कार ‘क्रमबद्धपर्याय’ के नाम से है। तत्कालीन समाज में बहुचर्चित विषय क्रमबद्धपर्याय पर कानजी स्वामी की जन्मजयंती के अवसर पर बंबई में 28-4-1979 को यह इंटरव्यू डॉ. भारिल्ल द्वारा लिया गया। उन्होंने बताया कि धर्म का मूल सर्वज्ञ है, क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय हुए बिना सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हो सकता। धर्म का आरंभ ही क्रमबद्ध के निर्णय से होता है। क्रमबद्ध पर्याय के सिद्धान्त से मूल तो अकर्तापना सिद्ध करना है। क्रमबद्ध जैनदर्शन का मस्तक है। आँख है, वस्तु स्वभाव की मर्यादा है।

### वैशिष्ट्य

1. प्रस्तुत कृति से समाज में फैली अनेक गलत धारणाओं का सरलता से समाधान प्रस्तुत हुआ है एवं होगा।
2. हिन्दी साहित्य की साक्षात्कार विधि का समुचित प्रयोग हुआ है।
3. प्रश्नों के उत्तर से पूरक प्रश्न बनाकर लोगों के मन में उठने वाली शंकाओं का भी सहज समाधान प्रस्तुत कर दिया गया है।

### ● सार समयसार

**नामकरण** – आचार्य कुंदकुंद विरचित 'समयसार' ग्रंथाधिराज का सार होने के कारण इस कृति का नामकरण 'सार समयसार' रखा गया है।

**आधार स्रोत** – 'समयसार' ग्रंथ की प्रस्तावना लिखने का कार्य डॉ. भारिल्ल के हाथ में आया तो इन्होंने समयसार ग्रंथ की जो प्रस्तावना लिखी; उस प्रस्तावना को ही 'सार समयसार' नामक लघुकृति के रूप में प्रकाशित किया। इसे अलग से प्रकाशित करने के पीछे उद्देश्य यह रहा कि कई लोग 'समयसार' ग्रंथ को कठिन व बड़ा जानकर अध्ययन नहीं करते हैं तो वे इस लघुकृति को अवश्य पढ़ेंगे, जिससे उन्हें इस ग्रंथ का निचोड़ ख्याल में आयेगा तो 'समयसार' पढ़ने के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।

**विषय वस्तु** – प्रस्तुत कृति की विषयवस्तु नव अधिकारों के सारांश रूप है। इसकी विषयवस्तु पूर्व में 'आचार्य कुंदकुंद और उनके पंच परमागम' कृति की विषयवस्तु में लिखी जा चुकी है; अतः उस विषयवस्तु को पुनः यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

### वैशिष्ट्य

1. अति संक्षेप में विषयवस्तु को प्रस्तुत कर गागर में सागर भर दिया है।
2. इसमें भाषा दुरुह नहीं होकर सरल ही है।

### ● वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के वीतरागी व्यक्तित्व का उद्घाटन किया जाने के कारण इस कृति का नामकरण वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर रखा गया।

**आधार स्रोत** – समस्त जैन समुदाय भगवान महावीर के वास्तविक व्यक्तित्व से परिचित हो सके ह इसी पवित्र भावना के साथ इस रचना का निर्माण हुआ।

**विषयवस्तु** – इस कृति की विषय वस्तु इसप्रकार है ह

1. भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत जितने गूढ़ गंभीर व ग्राह्य हैं; उनका वर्तमान जीवन (भव) उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है।
2. भगवान महावीर के नामकरण से संबंधित जिन घटनाओं का उल्लेख मिलता है; उन घटनाओं के संदर्भ में गहराई से चिंतन करके ये कहते हैं कि केवलज्ञानी के लिए सन्मति नाम छोटा है; क्योंकि सन्मति नाम मतिज्ञान का सूचक है। जबकि भगवान महावीर केवलज्ञानी हैं। बढ़ते तो अपूर्ण है, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो उसे वर्द्धमान 'कहना' कहाँ तक सार्थक हो सकता है। ये लिखते हैं ह "महावीर को वर्द्धमान, वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हें उस समय दिये गये थे; जब वे नित्य बढ़ रहे थे, सन्मति (मतिज्ञानी) थे, बालक थे, राजकुमार थे। उन्हीं घटनाओं और नामों को लेकर हम तीर्थंकर भगवान महावीर को समझना चाहे तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी, न कि लिखने वाले आचार्यों की।"<sup>67</sup>
3. भगवान महावीर धर्म क्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे; युद्ध के नहीं; क्योंकि दोनों में अंतर है। युद्ध क्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है, जबकि धर्म क्षेत्र में शत्रुता का। युद्ध क्षेत्र में पर को जीता जाता है, धर्म क्षेत्र में स्वयं को।
4. महावीर का जीवन घटना प्रधान क्यों नहीं है? ह इसकी सिद्धि अनेक कारणों का उल्लेख करते हुए की गई है। ये लिखते हैं कि अनेक दुर्घटनाओं का सिलसिला चलाने वाली घटना 'शादी' सौभाग्य से उनके (महावीर) के जीवन में न घटी। "दुर्घटनाएँ बचपन से नहीं, बचपने से घटती है, महावीर के बचपन तो आया था, पर बचपना उनमें नहीं था। जवानी में दुर्घटनाएँ उनके साथ घटती है; जिन पर जवानी चढ़ती है। महावीर तो जवानी पर चढ़े थे, जवानी उन पर नहीं।"<sup>68</sup>
5. राग संबंधी विकृति भोगों में प्रकट होती है और द्वेष संबंधी विद्रोह में। न महावीर रागी थे, न द्वेषी; अतः न वे भोगी थे और न ही द्रोही।

वीतरागी पथ पर चलने वाले वीतरागी महावीर को समझने के लिए उनके अंतर में झाँकना होगा।

6. इस कृति के पृष्ठ 11 व 12 पर डॉ. भारिल्ल ने सिद्ध किया है कि साधु की कोई ड्रेस नहीं है; सब ड्रेसों का त्याग ही साधु का वेश है। दिगंबर कोई वेष नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है; वस्तु का स्वरूप है। महावीर मुनिराज वर्द्धमान 'नगर' छोड़कर वन में चल गए, पर वे वन में भी कहाँ गए हैं? वे तो अपने में चल गये थे।
7. इस कृति के अंत में वे लिखते हैं ह  
 "यदि हमें वास्तविक में महावीर चाहिए तो उन्हें कल्पनाओं के घेरों में न घेरिये, उन्हें समझने का यत्न कीजिए, अपनी विकृत कल्पनाओं को उन पर थोपने की अनधिकार चेष्टा मत कीजिए।"<sup>69</sup>

### वैशिष्ट्य

1. प्रस्तुत कृति भगवान महावीर की वीतरागता की उद्घोषक रचना है।
2. क्या है महावीर की वीतरागता? क्या है उनकी वीरता या अतिवीरता या महावीरता? उनका सन्मति या वर्द्धमानपना? इसका समाधान भगवान महावीर की वीतरागता के परिप्रेक्ष्य में दिया; जिससे लोक प्रचलित गलत धारणाओं का समापन हो सके।
3. यह लघुकृति होकर भी एक श्रेष्ठ कृति है।

### ● तीर्थंकर भगवान महावीर

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन और उनके कतिपय सिद्धान्तों का प्रकाशन करने से उक्त कृति का नामकरण 'तीर्थंकर भगवान महावीर' रखा गया है।

**आधार स्रोत** – भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर एक निबंध लिखा गया था; जिसका प्रकाशन एक लघुकृति के रूप में किया गया।

**विषयवस्तु** ह प्रस्तुत कृति की विषय वस्तु इसप्रकार है ह

जिसमें संसार सागर तिरा जाये उसे तीर्थ कहते हैं और जो ऐसे तीर्थ को अर्थात् संसार-सागर से पार उतरने का मार्ग बतावे उसे तीर्थंकर कहते हैं।

तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन अहिंसा के आधार पर मानव जीवन के चरम विकास की कहानी है। जो वीतरागी और सर्वज्ञ है; वहीं भगवान है। बिना पूर्णज्ञान प्राप्त किए, बिना वीतरागी बने कोई भगवान नहीं हो सकता। भगवान जन्मते नहीं, बनते हैं। अतः महावीर भी जन्म से भगवान न थे। जन्म के समय तो वे हम और आप जैसे मानव ही थे। भगवान तो वे बाद में बने, जब उन्होंने अपने को जीता।

महावीर का जन्म वैशाली गणतंत्र के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला के उदर से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन कुण्डग्राम में हुआ था। उनके पाँच नाम प्रसिद्ध हैं – वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान और महावीर।

वे प्रतिभा सम्पन्न राजकुमार थे। बड़ी से बड़ी समस्याओं का समाधान चुटकियों में कर दिया करते थे। बड़े-बड़े ऋषिगणों की शंकाएँ भी उनके दर्शन मात्र से शांत हो जाती थी। वे शंकाओं का समाधान नहीं करते थे, वरन् वे स्वयं समाधान थे। दुनियाँ ने उन्हें अपने रंग में रंगना चाहा, पर आत्मा के रंग में सर्वांग सराबोर उन पर दुनिया का रंग न चढ़ा। यौवन के पासे, माँ की ममता सब निष्फल रहे, परिणाम स्वरूप तीस वर्ष के भरे यौवन में उन्होंने घर-बार छोड़ा। नग्न दिगंबर हो निर्जन वन में आत्मध्यानरत हो गये। अंतर्बहि घोर तपश्चरण करते बारह वर्ष बीत गए। बयालीस वर्ष की अवस्था में आत्म निमग्नता की दशा में उन्होंने अंतर विद्यमान सूक्ष्म राग का भी अभाव कर पूर्ण वीतराग दशा प्राप्त कर ली। उसके बाद उनका तत्त्वोपदेश होने लगा।

उनकी धर्मसभा को 'समवशरण' कहा जाता है। उसमें प्रत्येक प्राणी को जाने का अधिकार प्राप्त था। प्रमुख विरोधी विद्वान इन्द्रभूति गौतम तो

उनके पट्टशिष्यों में से थे। वे ही उनके प्रथम गणधर थे। श्रावक शिष्यों में मगध सम्राट महाराज श्रेणिक प्रमुख थे। उन्होंने लगातार तीस वर्ष तक उपदेश दिया।

भगवान महावीर ने जो कहा; वह कोई नया सत्य नहीं था। सत्य में नये पुराने का भेद कैसा? उन्होंने जो कहा वह सदा से है, सनातन है, उन्होंने सत्य की स्थापना नहीं, सत्य का उद्घाटन किया। उन्होंने कोई नया धर्म स्थापित नहीं किया। उन्होंने धर्म को नहीं, धर्म में खोई आस्था को स्थापित किया। वे तीर्थंकर थे, उन्होंने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया।

उन्होंने जो उपदेश दिया; उसे आचार्य समन्तभद्र ने सर्वोदय तीर्थ कहा है। भगवान महावीर का सर्वोदय वर्गोदय के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति है। जिसमें प्राणीमात्र के उदय की बात है। महावीर ने जनसाधारण में संभावित शारीरिक हिंसा को कम करने के लिए सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समताभाव पर जोर दिया और वैचारिक हिंसा से बचने के लिए अनेकांत का समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया।

महावीर ने जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। वे योग्यता मूलक समाज व्यवस्था में विश्वास रखते थे; क्योंकि व्यक्ति की ऊँचाई का आधार उसकी योग्यता और आचार-विचार है, न कि जन्म। उनके तीर्थ में न संकीर्णता थी और न मानवकृत सीमाएँ। जीवन की जिस धारा को वे मानव के लिए प्रवाहित करना चाहते थे, वही वस्तुतः सनातन सत्य है।

उन्होंने 'हम एक हैं', का नारा न देकर 'हम सब एक से हैं' का नारा दिया। हम 'सब एक हैं' में व्यक्ति स्वातंत्र्य का अभाव हो जाता है।

वहाँ 'हम सब एक से हैं' में व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ ही समानता के आधार पर एकता भी स्थापित होती है, जो कि वस्तुस्वभाव और मानव मनोविज्ञान के अति निकट है। इसप्रकार उनका उपदेश सार्वभौमिक और विश्वशांति की ओर ले जाने वाला है।

इसप्रकार का उपदेश देते हुए 72 वर्ष की आयु में दीपावली के दिन इस युग के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने भौतिक देह को त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया। निबंध के अंत में लिखते हैं कि भगवान महावीर का जीवन नर से नारायण बनने एवं आत्मा के क्रमिक पूर्ण विकास की कहानी है।

### वैशिष्ट्य

1. भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को कम शब्दों में, सरल शब्दों में, जनसामान्य की भाषा में प्रस्तुत किया गया है।
2. भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है।
3. 'हम एक हैं' के स्थान पर 'हम एक से है' के नारे को महत्त्व दिया गया है।

### ● गोम्मटेश्वर बाहुबली

**नामकरण** – प्रस्तुति कृति में श्रवण बेलगोला गोम्मटेश्वर में स्थित बाहुबली मूर्ति का, बाहुबली के स्वरूप का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। अतः इसका नामकरण 'गोम्मटेश्वर बाहुबली' रखा।

**आधार स्रोत** – फरवरी सन् 1981 में उक्त प्रतिमा का सहस्राब्दी महोत्सव सारे देश में अत्यंत उत्साहपूर्वक मनाया गया। उक्त अवसर पर उस मूर्ति और मूर्तिमान (बाहुबली) के संबंध में बहुत कुछ लिखा गया था।

इसी श्रृंखला में डॉ. भारिल्ल ने 'आत्मधर्म', मार्च 1981 के सम्पादकीय लेख में भगवान बाहुबली की मूर्ति और उनके जीवन के संबंध में बिल्कुल अनूठा और नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था, जिसे ही 'अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन' ने लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया।

**विषयवस्तु** – हिमालय से कन्याकुमारी तक भारत में अनेक विभिन्नताएँ होने पर भी एकता है। इसका कारण हमारे ये तीर्थ हैं, जो उत्तर से लेकर दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। डॉ. भारिल्ल ने लिखा है ह

“यह भी एक विचित्र संयोग ही कहा जाएगा कि श्रमण संस्कृति के चौबीसों तीर्थकर और वैष्णव संस्कृति को चौबीसों अवतार उत्तर भारत में ही हुए हैं तथा दोनों ही संस्कृतियों के प्रमुख आचार्य दक्षिण भारत की देन हैं।”<sup>70</sup>

दक्षिणी भारत में इतनी विशाल मूर्ति के निर्माण के कारणों के विषय में डॉ. भारिल्ल ने कहा कि दक्षिण भारत में धार्मिक इतिहास या पुराणों के अनुसार तीर्थकरों के कल्याणक आदि महत्वपूर्ण स्थान न होने के कारण उत्तर भारत के धार्मिक यात्रियों को दक्षिण भारत आने के लिए आकर्षण पैदा करना भी हो सकता है।

इस विराट दिगम्बर जिनबिम्ब की स्थापना का एक उद्देश्य शिथिलाचारी दिगम्बरों के समक्ष साधुता का एक कठोर रूप प्रस्तुत करना भी रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उस समय शिथिलाचार आरंभ हो गया था।

पद्मासन दिगम्बर जिनबिम्बों का श्वेताम्बरीकरण भी बहुत हुआ है। अतः मूर्तिनिर्माण के हृदय में एक कारण यह भी रहा हो कि ऐसी नग्न दिगम्बर खड्गासन विशाल मूर्ति स्थापित की जावे कि नग्नता स्पष्ट होने से श्वेताम्बरीकरण न किया जा सके और जो नग्न दिगम्बर मुनियों के निर्बाध विहार के प्रमाण के रूप में उपस्थित रहे।

डॉ. भारिल्ल ने मूर्ति के विषय में लिखा है कि यह विशाल मूर्ति उत्तराभिमुख है। यह उत्तर भारत के यात्रियों को दक्षिण यात्रा का आकर्षण रही है। उत्तर और दक्षिण को जोड़ने वाली इस विशाल मूर्ति के सामने जब महामस्तकाभिषेक के अवसर पर बीस प्रांतों से आये बीस भाषा-

भाषी लाखों लोग खड़े होंगे, तब वे सब भेदभाव भूलकर यह अनुभव अवश्य करेंगे कि हम सब इस एक देव के उपासक हैं, एक हैं। यह विशाल मूर्ति एकता की प्रतीक है तथा बाहुबली के असीम धैर्य एवं ध्यान की भी प्रतीक है।

बाहुबली के विषय में कहा गया है कि भूस्वामित्व को हार कर तो सभी को छोड़ना पड़ता है; पर बाहुबली ने इसे जीतकर छोड़ा था। बाहुबली का त्याग अप्राप्ति की मजबूरी नहीं, अपितु प्राप्ति का परित्याग था। धीर-वीर बाहुबली के जीवन प्रसंगों में सर्वाधिक चर्चित प्रसंग है - भरत बाहुबली युद्ध। इस पर डॉ. भारिल्ल ने प्रकाश डाला है। जब दोनों ओर की सेनाएँ समरभूमि में युद्ध के लिए सन्नद्ध थीं, तभी मंत्रियों की ओर से प्रस्ताव आता है कि युद्ध सेनाओं में नहीं, दोनों भाइयों में हो और वह भी बिना हथियार के। तब निश्चित हुए तीन युद्ध ह नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध।

मंत्रीगण हर प्रकार से युद्ध टालना चाहते थे। वे जानते थे कि समस्या राज्य छीनने और पराधीनता स्वीकार करने की उतनी नहीं है, जितनी मानापमान की है।

मंत्रियों ने सोचा क्यों न दोनों भाइयों को आपस में मिला दिया जाय। जब उनकी आँख से आँख मिलेगी तो सब द्वेष गल जायेगा, स्नेह उमड़ पड़ेगा और समस्या का सहज समाधान हो जायेगा। नेत्रयुद्ध और कुछ नहीं था, मात्र दोनों की आँख में आँख मिलाने का उपक्रम था; पर नेत्र युद्ध में बात कुछ बनी नहीं तो मंत्रियों ने जलक्रीड़ा प्रतियोगिता रखी कि पानी में जाने से दोनों की गर्मी ठंडी पड़ेगी, तथा छीटें पड़ने से होश में आवेंगे तो युद्ध मिलन में बदल जावेगा; पर यहाँ भी सफलता नहीं मिली और भिड़ने की बारी आई अर्थात् मल्लयुद्ध हुआ। दोनों की रगों में एक पिता का खून बह रहा है, जब वह आपस में स्पर्शित होगा तो अपना कमाल दिखाये बिना रहेगा नहीं, यह धारणा दोनों पक्षों के मंत्रियों की

थी, जो सही भी निकली। बाहुबली का द्वेष राग में बदल गया। उन्होंने भरत को हाथों पर ऊपर उठा लिया, पर नीचे पटक नहीं; क्योंकि जो जीतना चाहता था, बाहुबली का वह मान गल गया था। भरत ने हार का अनुभव किया, क्रोध प्रज्वलित हो उठा। भाई पर चक्र चलाया। पर चक्र बाहुबली को प्यार कर भरत के हाथ में पुनः आ गया। इसप्रकार उस चक्र ने निर्णय दे दिया कि चक्रवर्ती तो भरत ही हैं, बाहुबली नहीं। बाहुबली का द्वेष जो भरत के स्पर्श से राग में बदल गया था। इस घटना से वह राग वैराग्य में बदल गया। इसतरह द्वेष राग में और राग वैराग्य में परिणित हो गया। भरत चक्रवर्ती बन गये और बाहुबली उनके भी पूज्य।

डॉ. भारिल्ल ने उक्त घटना से प्रेरणा दी है कि गलतफहमियों से उत्पन्न आपसी समस्याओं को यदि हम आमने-सामने बैठकर निर्णय लें तो व्यर्थ के संघर्षों से बहुत बच सकते हैं।

### वैशिष्ट्य

1. डॉ. भारिल्ल ने मूर्तिस्थापना के कारणों के संबंध में प्रचलित किंवदंतियों से हटकर बौद्धिक प्रतिपत्तियों के आधार पर मूर्ति स्थापना के कारणों को स्पष्ट किया है।
2. मूर्तिमान् की धैर्यता का कम शब्दों में अधिक वर्णन किया है।
3. नेत्र, जल, मल्लयुद्ध को नये दृष्टिकोण से अर्थात् मनोवैज्ञानिकता के आधार पर स्पष्टीकरण किया है।
4. इस निबंध के माध्यम से अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है।

### ● पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य

**नामकरण** – प्रस्तुति कृति डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखित शोध कृति 'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' का साररूप है। शोध कृति आम व्यक्ति नहीं पढ़ता है। यह ग्रंथ बड़ा भी होता है। सभी लोग टोडरमलजी के जीवन और साहित्य के विषय में जाने, इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर यह लघुकृति तैयार की गई है।

**विषयवस्तु** – विक्रम का उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दिनों में जयपुर जैनियों की काशी बन रहा था। पण्डित टोडरमलजी की अगाध विद्वता और प्रतिभा से प्रभावित होकर सम्पूर्ण भारत का तत्त्वज्ञानसु समाज जयपुर की ओर चातक दृष्टि से निहारता था। पण्डित टोडरमलजी का समय विक्रम की अठाहरवीं सदी का अंत एवं उन्नीसवीं सदी का आरंभ काल है। वह संक्रांति का युग था।

वे गंभीर प्रकृति के आध्यात्मिक महापुरुष थे। उनके पिता का नाम जोगीदास एवं माता का नाम रंभादेवी था। जाति खंडेलवाल, गोत्र गोदिका (बड़जात्या) था। इनके दो पुत्र थे – हरिचंद और गुमानीराम। गुमानीराम उच्चकोटि के विद्वान थे। उनके नाम से गुमानपंथ भी चला। पंडित टोडरमलजी की सामान्य शिक्षा जयपुर की आध्यात्मिक (तेरापंथ) शैली में हुई; जिसका बाद में उन्होंने सफल संचालन भी किया। गूढ़तत्त्वों के तो टोडरमलजी स्वयंबुद्ध ज्ञाता थे। प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त उन्हें कन्नड़ भाषा का भी ज्ञान था। मूल ग्रंथों को वे कन्नड़ लिपि में पढ़-लिख सकते थे। यद्यपि उनका अधिकांश जीवन जयपुर में ही बीता, तथापि उन्हें अपनी आजीविका के लिए कुछ समय सिंघाणा रहना पड़ा। वहाँ वे दिल्ली के एक साहूकार के यहाँ कार्य करते थे।

डॉ. भारिल्ल ने सिद्ध किया है कि दीवान अमरचन्दजी ने उनके पढ़ाने की व्यवस्था नहीं की और न उन्हें राजपद दिलाया; क्योंकि पंडितजी के दिवंगत होने तक अमरचंदजी दीवान पद पर प्रतिष्ठित नहीं हुए थे। इन्होंने पंडितजी की उम्र 27 वर्ष के स्थान पर 47 वर्ष सिद्ध की है। उनकी मृत्यु तिथि विक्रमसंवत् 1823-24 के लगभग निश्चित है। अतः उनका जन्म विक्रम संवत् 1776-77 में होना चाहिए। कहा जाता है कि उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचला कर मारा गया था।

पंडितजी का कार्य क्षेत्र आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का प्रचार व प्रसार करना था। जिसे वे लेखन प्रवचन आदि के माध्यम से करते थे। उनका

सम्पर्क तत्कालीन आध्यात्मिक समाज से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से दूर-दूर तक था। अनेक जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आकर विद्वान बने। उनका कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण भारत वर्ष था। उनका प्रचार कार्य ठोस था। अध्ययन और ध्यान यही उनकी साधना थी। निरंतर आध्यात्मिक अध्ययन चिंतन, मनन के फलस्वरूप 'मैं टोडरमल 'हूँ' की अपेक्षा 'मैं जीव हूँ' की अनुभूति उनमें अधिक प्रबल हो उठी थी। अभिमान से दूर थे।

उनके द्वारा लिखित सात ग्रंथों की टीका और पाँच मौलिक रचनाएँ प्राप्त होती है। संस्कृत ग्रंथों की टीकाएँ 'आत्मानुशासन भाषा टीका' और 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय भाषा 'टीका' है। प्राकृत ग्रंथों में 'गोम्मटसार जीवकांड', 'गोम्मटसार कर्मकांड', 'लब्धिसार', 'क्षपणासार' और 'त्रिलोकसार' है, जिनकी भाषा टीकाएँ उन्होंने लिखी है। गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार की भाषा टीकाओं को मिलाकर एक कर दिया तथा उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान चंद्रिका' रखा। मौलिक रचनाएँ मोक्षमार्ग प्रकाशक, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका की पीठिका, रहस्यपूर्ण चिट्ठी, अर्थ संदृष्टि अधिकार और गोम्मटसार पूजा है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पंडित टोडरमलजी का एक महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ का आधार कोई एक ग्रंथ न होकर सम्पूर्ण जैन साहित्य है। यह सम्पूर्ण जैन सिद्धान्तों को अपने में समेट लेने का एक सार्थक प्रयत्न था, पर यह ग्रंथराज पूर्ण न हो सका। इसमें नौ अधिकार है। नौवा अधिकार अपूर्ण है।

इस कृति में डॉ. भारिल्ल ने टोडरमलजी के मन में मोक्षमार्ग प्रकाशक रचना का क्या स्वरूप होगा; उसकी एक संभावित रूपरेखा का चार्ट प्रस्तुत कर इस ग्रंथ के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखा गया है। प्रश्नोत्तरी द्वारा विषय को बहुत गहराई से स्पष्ट किया गया है। पंडितजी का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत में निबद्ध आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को भाषा गद्य के माध्यम

से व्यक्त किया और तत्त्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी। टीकाकार होते हुए भी पंडितजी ने गद्य शैली का निर्माण स्वयं ने किया, उनकी शैली दृष्टांत युक्त प्रश्नोत्तरमयी तथा सुगम है। डॉ. भारिल्ल ने लिखा है ह

“लोक भाषा काव्य शैली में रामचरित मानस लिखकर महाकवि तुलसीदास ने जो काम किया; वहीं काम उनके दो सौ वर्षों बाद गद्य में जिन-अध्यात्म को लेकर पंडित टोडरमलजी ने किया। इसलिए उन्हें आचार्यकल्प कहा गया।”

अंत में लिखा है कि प्रतिभाओं का लीक पर चलना कठिन होता है, पर ऐसी प्रतिभाएँ बहुत कम होती है जो लीक छोड़कर चले और भटक न जाये। पंडित टोडरमल भी उन्हीं में से एक हैं, जो लीक छोड़कर चले पर भटके नहीं।

### वैशिष्ट्य

1. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व कृति का संक्षिप्त सार इसमें प्रस्तुत हो गया है।
2. विद्वानों व शोधार्थी के अलावा सामान्य जनता की दृष्टि से यह कृति उपयोगी बन गई।
3. अपनी बात की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण स्वरूप उद्धरण भी प्रस्तुत किए गये हैं।
4. मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ की 'प्रस्तावना' भी इसकी विषय-वस्तु ही है।

### ● बालबोध पाठमाला भाग-2 से तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-2 तक

**नामकरण** - बालकों को बोध कराने वाले पाठों की माला की दृष्टि से बालबोध पाठमाला नाम रखा। फिर वीतराग विज्ञान परीक्षा बोर्ड एवं वीतराग विज्ञान के सिद्धान्तों की पाठमाला की दृष्टि से वीतराग विज्ञान पाठमाला, और तत्त्वज्ञान की मुख्यता की दृष्टि से तत्त्वज्ञान पाठमाला नाम रखा।

**आधारस्रोत** – पुरानी परिपाटी से चली आ रही शिक्षण पद्धति से बालकों के ऊबाऊपन को हटाकर नई सरल मनोवैज्ञानिक पद्धति से बालकों को ज्ञान प्रदान करने की उत्कृष्ट भावना ही इसका मूल आधारस्रोत है।

**विषयवस्तु** ह्व बालबोध पाठमाला भाग-2 में कुल आठ पाठ हैं। प्रथम पाठ देवस्तुति है, जो संकलित है, पर इसका सरलार्थ डॉ. भारिल्ल ने लिखा है। दूसरा पाठ 'पाप' नाम से है। यह पुत्र पिता के संवाद रूप में लिखा गया है। इसमें बताया है कि सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है, क्योंकि इसके वश में होकर जीव, घोर पाप करता है। उल्टी मान्यता का नाम मिथ्यात्व है। यदि व्यक्ति अपनी आत्मा को सही समझ ले तो मिथ्यात्व छोड़ सकता है।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पाँच पाप है। प्रत्येक के दो भेद है ह्व भावपाप व द्रव्यपाप। जैसे ह्व आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोहरागद्वेष ही भावहिंसा हैं, दूसरों को सताना आदि द्रव्यहिंसा है।

समस्त पापों की जड़ मिथ्यात्व और कषायें ही हैं।

तीसरा पाठ 'कषाय' हैं। यह सुबोध और प्रबोध के संवाद रूप में लिखा गया है। क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं। कषाय आत्मा का स्वभाव नहीं, विभाव है। मिथ्यात्व के कारण परपदार्थ इष्ट या अनिष्ट मालूम पड़ते हैं तो कषाय उत्पन्न होती है। आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है। चौथा पाठ 'सदाचार' का है। इसे बालसभा के रूप में लिखा गया है। इसमें अध्यक्ष, शांतिलाल, निर्मला, एक छात्र मुख्य पात्र हैं, शेष कक्षा चार के छात्र मूकपात्र हैं। यहाँ रात्रि भोजन नहीं करने के संबंधी कहानी, हठी बालक की कहानी है। पानी में लाखों जीव होने से पानी छानकर पीने की प्रेरणा दी है।

पाँचवाँ 'गतियाँ' नामक पाठ है, जिसमें कहा गया है कि जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं। मनुष्य, तिर्यच, नरक, देव ये चार गतियाँ है। जीव कहीं से मरकर मनुष्य शरीर धारण करता है, उसे मनुष्य

गति कहते हैं। इसी तरह अन्य तीनों की भी परिभाषा दी है। सिद्धपद को पंचमगति कहा है। एक वीतराग भाव ही पंचमगति (मोक्ष) का कारण है। वीतराग भाव प्राप्त करने के लिए ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए।

छठवाँ पाठ 'द्रव्य' नाम से हैं, छात्र-अध्यापक संवाद रूप है। इसमें कहा कि छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं। यह विश्व अनादि अनन्त स्वनिर्मित है। गुणों के समूह द्रव्य कहते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य हैं। जिसमें ज्ञान पाया जाता है, वह जीव है। शेष पाँच द्रव्य अजीव हैं। सब द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय के कर्ता हैं, कोई भी पर का कर्ता नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की परिभाषा भी दी गई है। अंत में कहा गया है कि इन्द्रियाँ रूपी पुद्गल को जानने में ही निमित्त हो सकती है, आत्मा को जानने में नहीं।

सातवाँ पाठ 'भगवान महावीर' नाम से है यह। अध्यापक-छात्र संवाद रूप है। यहाँ समझाया गया है कि भगवान जन्मते नहीं, बनते हैं।

बालक वर्धमान का जन्म चैत्र शुक्ला तेरस के दिन हुआ था। यही बालक आत्म साधना का अपूर्व पुरुषार्थ कर भगवान महावीर बना। इनके पाँच नाम प्रसिद्ध हैं ह्व वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्धमान और महावीर।

ये नाथ वंशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। पिता सिद्धार्थ, माता त्रिशला थी। उन्होंने शादी नहीं की थी। 30 वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली, 42 वर्ष की अवस्था में केवल ज्ञान प्राप्त किया। 72 वर्ष में पावापुर में दीपावली के दिन मोक्ष प्राप्त किया। उसी दिन उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति भी दी है। जिसमें पहली शिक्षा में लिखा है कि सभी आत्माएँ बराबर हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है। आठवाँ पाठ 'जिनवाणी स्तुति' है, जो डॉ. भारिल्ल कृत नहीं है, इसका सरलार्थ इनके द्वारा लिखा गया है। जिनवाणी



को मिथ्यात्व का नाश करने वाली, ज्ञान का प्रकाश करने वाली बताया गया है।

‘बालबोध पाठमाला भाग-3’ नामक इनकी इस कृति में भी आठ पाठ हैं। जिसमें पहला व आठवाँ पाठ संकलित है। पर सामान्य अर्थ इन्होंने लिखा है। प्रथम पाठ ‘देवदर्शन’ व अंतिम पाठ ‘जिनवाणी स्तुति’ का है। पहला, दूसरा, आठवाँ, पाँचों पाठ संवाद रूप है। दूसरा पाठ ‘पंच परमेष्ठी’ नामक है। इसमें, अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पाँचों परमेष्ठी का स्वरूप मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ के आधार पर दिया है तथा कहा है कि जो परमपद में स्थित हो उसे परमेष्ठी कहते हैं। अरहंत के निश्चय से चार, व्यवहार से 46 गुण, सिद्ध के 8 गुण, आचार्य के 36, उपाध्याय के 25 तथा साधु के 28 मूलगुण होते हैं। इनका स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय हैं। अतः ये पूज्य हैं।

तीसरा पाठ ‘श्रावक के अष्ट मूलगुण’ है।

इसमें कहा है कि निश्चय से तो समस्त पर पदार्थों से दृष्टि हटाकर अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता की मुमुक्षु श्रावक के मूलगुण हैं, पर व्यवहार से मद्य-त्याग, मांस-त्याग और मधुत्याग तथा पाँच उदुम्बर (बड़, पीपल, ऊमर, कठुमर, पाकर) फलों के त्याग को अष्टमूलगुण कहते हैं। चौथा पाठ ‘इंद्रियाँ’ है। इसमें बतलाया है कि जिसने मोह राग, द्वेष और इंद्रियों को जीता सो जिन है, जिन की आज्ञा माने सो जैन। संसारी आत्मा को ज्ञान में निमित्त शरीर के चिह्न विशेष ही इंद्रियाँ हैं। ये पाँच हैं हृ स्पर्शन (शरीर), रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आँख), कर्ण (कान)। इंद्रियाँ पुद्गलों को जानने में निमित्त है; आत्मा को नहीं। इंद्रिय सुख की भाँति इंद्रिय ज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

पाँचवाँ पाठ ‘सदाचार’ का है; जिसमें त्रसघात, बहुघात, अनुपसेव्य, नशाकारक, अनिष्टकारक इन पाँच अभक्ष्यों का वर्णन है। छठवाँ पाठ

‘द्रव्य गुण पर्याय’ नामक हैं। गुणों के समूह को द्रव्य, गुणों के परिणमन को पर्याय और जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं में रहता है, उसको गुण कहते हैं।

गुण दो प्रकार के होते हैं ह्र सामान्य और विशेष। सामान्य गुण सब द्रव्यों में रहते हैं और विशेष गुण अपने-अपने द्रव्य में रहते हैं। इसमें छः सामान्य गुणों-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, और प्रदेशत्व के लक्षण बतलाएँ गये हैं। सातवाँ पाठ ‘भगवान नेमिनाथ’ है। इसमें स्पष्ट किया है कि नेमिनाथ बाल ब्रह्मचारी थे। इनकी सगाई राजुल के साथ हुई अवश्य थी; पर जब बारात जा रही थी, तब निरीह मूक पशुओं को देख संसार का स्वार्थपन और क्रूरपन लक्ष्य में आते ही उन्हें वैराग्य हो गया, वे गिरनार चले गये, दीक्षा ले ली। राजकुमारी भी तत्त्वप्रेमी थी, अतः उसने भी नेमी का मार्ग अपनाया। नेमि के पिता सौरीपुर के राजा समुद्रविजय तथा माता शिवादेवी थी। नेमिनाथ को दीक्षा के 56 दिन बाद केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इन्हें उसके सात सौ वर्षों बाद गिरनार से मुक्ति की प्राप्ति हुई।

‘वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-1’ नामक इनकी कृति में भी आठ पाठ हैं। इसमें पहला व आठवाँ पाठ संकलित पद्य रचनाएँ हैं। शेष दो से सातवें पाठ तक सभी पाठ डॉ. भारिल्ल द्वारा संवाद रूप में लिखे गए हैं। इस कृति में पहले उनका परिचय दिया गया है जिनके ग्रंथ के आधार से इन्होंने पाठ को तैयार किया है।

पहला पाठ पण्डित दौलतरामजी कृत देवस्तुति है। इस पर सरलार्थ डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखा गया है।

दूसरा पाठ ‘आत्मा और परमात्मा’ है। यह पाठ योगीन्दु मुनिराज के लिखित ग्रंथ परमात्मा प्रकाश और योगसार के आधार पर लिखा गया है। इसमें कहा है ज्ञानस्वभावी जीव तत्त्व को ही आत्मा कहते हैं। यह अवस्था की अपेक्षा तीन प्रकार का होता है ह्र बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा।

आत्मा और शरीर को एक मानने वाला बहिरात्मा, भेदविज्ञान करने वाला अंतरात्मा। आत्मा की पूर्ण दशा को प्राप्त करने वाला परमात्मा हैं। सबको पुरुषार्थपूर्वक बहिरात्मपन छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा बनने की भावना करनी चाहिये।

तीसरा पाठ 'सात तत्त्व' नामक है। पहले आचार्य उमास्वामी का परिचय दिया है तथा कहा गया है कि जीवादि सात प्रयोजनभूत तत्त्व है। इन तत्त्वों की सच्ची श्रद्धा बिना मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। साथ ही द्रव्यदृष्टि और सात तत्त्वों के लक्षण बतलाएँ है। अंत में कहा है कि सातों तत्त्वों को भलीभाँति जानकर एवं समस्त परपदार्थों पर से दृष्टि हटाकर अपने आत्मतत्त्व पर दृष्टि ले जाना ही सच्चा सुख प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

चौथा पाठ 'छह आवश्यक' है। यहाँ कहा कि आत्मा को समझकर लीन होना निश्चय और इसके साथ-साथ शुभ विकल्प होना व्यवहार आवश्यक है। देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये गृहस्थी के छह आवश्यक है। प्रत्येक का निश्चय व व्यवहार परक लक्षण दिया गया है।

ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि निश्चय से भावदेवपूजा है और सच्चे देव का स्वरूप समझकर उनके गुणों का स्तवन ही व्यवहार से भावदेवपूजा है। निश्चय आवश्यक शुद्ध धर्म परिणति है, यह बंध के अभाव का कारण है तथा व्यवहार आवश्यक पुण्य बंध का कारण है।

पाठ पाँचवाँ 'कर्म' है। इसमें नेमिचंद्राचार्य का संक्षिप्त व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व दिया है तथा बताया है कि जीव अपने स्वभाव को भूलकर दुखी है; कर्म के कारण नहीं, वे तो निमित्त मात्र है। मोह, राग, द्वेष भाव तो भाव कर्म और कार्माण वर्गणा का कर्मरूप परिणमित रजपिंड द्रव्य कर्म कहलाता है। ज्ञानावरणी आदि आठ द्रव्यकर्म है। इनकी परिभाषा व इनके प्रभेद भी यहाँ बताए हैं। कुल कर्म की 148 प्रकृतियाँ बताई है।

छठवाँ पाठ 'रक्षा बंधन' है। जिसमें 'रक्षा बंधन' पर्व क्यों मनाया जाता है, इस संबंध में घटित घटना को रूपांकित किया है। विष्णुकुमार मुनि ने मुनिपद छोड़कर बावनिया का वेश बनाकर अंकपनाचार्य आदि सात सौ मुनिराजों की रक्षा की और बलि आदि मंत्रियों का बंधन किया; इसकारण रक्षाबंधन पर्व मनाया जाता है।

यहाँ विष्णुकुमार, श्रुतसागर की अपेक्षा अंकपनाचार्य आदि सातसौ मुनिराजों को विशेष महत्व दिया है; क्योंकि उन्होंने कितनी विपत्तियों में भी आत्मध्यान नहीं छोड़ा।

सातवाँ पाठ 'जम्बू स्वामी' नामक है। पहले पंडित राजमलजी पांडे का जीवन परिचय दिया है। पश्चात् इस युग के अंतिम केवली जंबूस्वामी का चरित्र प्रस्तुत किया है।

जंबूकुमार के पिता अर्हदास और माता जिनमती थी। जंबूकुमार शादी नहीं करना चाहते थे, मजबूरी वश शादी की; पर प्रातः ही दीक्षा ले ली। इसका प्रभाव विद्युच्चर नामक चोर पर भी पड़ा। उसने भी दीक्षा ले ली। उन चार कन्याओं ने जिनके साथ इनकी शादी हुई थी, उन्होंने तथा इनके माता-पिता ने भी दीक्षा ले ली। सारा वातावरण वैराग्यमय हो गया।

उन्हें माघ सुदी सप्तमी के दिन केवलज्ञान हुआ। अंत में चौरासी (मथुरा) से मोक्ष पधारे।

आठवाँ पाठ पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा कृत 'बारह भावना' है। इसका सरलार्थ डॉ. भारिल्ल ने लिखा है।

वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-2 में कुल दस पाठ है। इसमें प्रथम पूजन का है। यह देवशास्त्रगुरु की पूजन श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा द्वारा लिखित है। शेष नौ पाठ डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखित है। दूसरा, चौथा, आठवाँ, नववाँ पाठ संवाद के रूप में लिखे गये हैं। यहाँ

भी पाठ निर्माण में जिनका आधार लिया गया है; उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

दूसरा पाठ 'देवशास्त्रगुरु' है। यह आचार्य समन्तभद्र के रत्नकरंड श्रावकाचार के प्रथम अध्याय के आधार पर लिखा गया है। जो वीतरागी सर्वज्ञ और हितापदेशी है, उसे सच्चा देव कहते हैं। इनकी वाणी सच्ची व अच्छी इसलिए होती है कि ये सर्वज्ञ व वीतरागी है। सच्चे देव की वाणी को शास्त्र कहते हैं। यह वीतरागता की पोषक होती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र जिसमें हो तथा जिसका बाह्याचरण भी आगमानुकूल हो, उसे सच्चा गुरु कहते हैं।

तीसरा पाठ 'सात तत्त्वों संबंधी भूल' नामक है। यहाँ पण्डित दौलतरामजी का जीवन परिचय दिया है। यह पाठ इनके छहढाला ग्रंथ की दूसरी ढाल पर आधारित है। यहाँ जीव द्वारा जीवादि सात तत्त्वों में किस तरह भूल होती है वह बतलाया है। जैसे ह्व मुक्ति में पूर्ण निराकुलता रूप सच्चा सुख है, उसे तो जानता नहीं और भोग संबंधी सुख को ही सुख मानता है और मुक्ति में भी इसी जाति के सुख की कल्पना करता है वह यही इसकी मोक्ष तत्त्व संबंधी भूल है।

चौथा पाठ 'चार अनुयोग' का है। इसमें टोडरमलजी का परिचय दिया है। उन्हीं के अनुसार प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग की परिभाषा दी है। यथा जिन शास्त्रों में महापुरुषों के चरित्रों द्वारा पुण्य-पाप के फल का वर्णन होता है और अंत में वीतरागता को हितकर बताया जाता है; उन्हें प्रथमानुयोग के शास्त्र कहते हैं। कहा कि मुख्य रूप से तो निचली दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है। चारों अनुयोग वीतरागता के ही पोषक है। अतः अपनी रुचि अनुसार हमें अभ्यास करना चाहिए।

पाँचवाँ पाठ 'तीन लोक' संबंधी है। यहाँ आचार्य उमास्वामी का परिचय दिया है। जंबूद्वीप का नक्शा दिया है। सारा विश्व तीन भागों में

बँटा हुआ है। हम मध्यलोक के जंबूद्वीप में रहते हैं। यह एक लाख योजन विस्तार वाला है। इसके मध्य सुमेरु पर्वत है। जंबूद्वीप को विभाजित करने वाले छः महापर्वत हैं। जिससे सात क्षेत्र बनते हैं।

यहाँ लेखक ने छः पर्वत, सात क्षेत्र, चौदह नदियाँ, सात नरक, सोलह स्वर्ग के नाम दिये हैं। बताया है कि ऊर्ध्वलोक में इन सोलह स्वर्ग के ऊपर नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पाँच अनुत्तर विमान हैं, इसके ऊपर सिद्ध शिला है।

छठवाँ पाठ 'सप्त व्यसन' नामक है। प्रथम पण्डित बनारसीदास का परिचय दिया है, तत्पश्चात् उनके 'नाटक समयसार' के आधार पर सप्त व्यसनह्वजुआ, माँस खाना, मदिरापान, वेश्यागमन, शिकार खेलना, परस्त्रीरमण करना और चोरी करना - बताये हैं। इनकी परिभाषायें दी हैं तथा कहा है कि इनके त्यागे बिना आत्मा को नहीं जाना जा सकता।

सातवाँ पाठ 'अहिंसा : एक विवेचन' निबंध है। प्रथम आचार्य अमृतचंद्र का परिचय दिया है, फिर उनके ग्रंथ पुरुषार्थसिद्धयुपाय के आधार पर निबंध लिखा गया है। जिसमें अहिंसा व हिंसा की वास्तविकता से परिचय कराते हुए कहा कि अपनी आत्मा में राग-द्वेष मोह आदि विकारी भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और उन भावों का उत्पन्न नहीं होना ही अहिंसा है। सम्पूर्ण निबंध में इसी बात पर बल दिया गया है।

आठवाँ पाठ 'अष्टाहिनका महापर्व' का है; जिसमें कहा गया है कि यह पर्व आठ दिन तक चलता है अतः अष्टाहिनका कहते हैं। यह पर्व वर्ष में तीन बार आता है कार्तिक, फागुन, आषाढ़ माह की अष्टमी से पूर्णिमा तक। इससमय देवता लोग नंदीश्वर द्वीप जाते हैं। मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत से आगे नहीं जा सकते हैं। अतः वे यहीं भक्ति करते हैं। विशेष बात यह बताई गई है कि इस अवसर पर सिद्ध चक्र पाठ करते हैं, पर यह सिद्ध चक्र का पाठ हमें अपनी लौकिक कामना के लिए नहीं; आत्मा-साधना के लिए करना चाहिए।

नवमाँ पाठ 'भगवान पार्श्वनाथ' का है। जिसमें प्रथम पण्डित भूधरदासजी का परिचय दिया है, पश्चात् संवाद के माध्यम से भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की झाँकी प्रदर्शित की गई है। कहा गया है कि पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी (बनारस) में, राजा अश्वसेन के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम वामादेवी था। ये बाल ब्रह्मचारी थे। इन्होंने जलते हुए नाग-नागिनी को संबोधित किया, जिससे वे धरणेन्द्र व पद्मावती हुए। उन्होंने पौष कृष्णा एकादशी के दिन दीक्षा तथा चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को केवलज्ञान प्राप्त किया। सौ वर्ष की आयु में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेदशिखर को सुवर्ण भद्रकुट से निर्वाण पधारे।

अंतिम दसवाँ पाठ 'देवशास्त्रगुरु' की स्तुति है। इसका वर्णन 'अर्चना' कृति के वर्णन के समय किया जाएगा।

'वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग-3' इनकी सम्पादित कृति है। इसमें कुछ पाठ इनके लिखे हुए हैं। कुछ अन्यो के हैं। कुल ग्यारह पाठ हैं। प्रथम पाठ 'सिद्ध पूजन' का है। इसका 'अर्चना' कृति के समय वर्णन होगा। पाँचवाँ पाठ 'मैं कौन हूँ' निबंध है इसकी विषयवस्तु 'मैं कौन हूँ?' कृति के प्रतिपादन में बताई जा चुकी है। ग्यारहवाँ पाठ समयसार स्तुति गुजराती में है। यह इन्होंने नहीं लिखी है।

'तत्त्वज्ञान पाठमाला, भाग-1' इनकी संपादित कृति है। जिसमें 9 पाठों में से पहला, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, आठवाँ हूँ ये पाँच पाठ इन्होंने लिखे हैं। पहला पाठ 'श्री सीमंधरपूजन' है। इसकी विषयवस्तु अर्चना कृति की विषयवस्तु के समय उल्लिखित की गई है।

तीसरा पाठ 'लक्षण और लक्षणाभास' है; जिसमें प्रथम धर्मभूषण यति का परिचय दिया है। उनके ग्रंथ न्यायदीपिका के आधार पर यह पाठ लिखा है।

कहा गया है कि परस्पर मिली हुई वस्तुओं में से कोई एक वस्तु जिसके द्वारा अलग की जाती है, उसे लक्षण कहते हैं। जिसका लक्षण

किया जाय, उसे लक्ष्य कहते हैं। इसीतरह आत्मभूत, अनात्मभूत के लक्षण दिए हैं। जो लक्षण संदोष हो, उन्हें लक्षणाभास कहा जाता है। दोष के तीन भेद हैं ह्र अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष। इनके लक्षण बताकर विषय वस्तु स्पष्ट की है। पाँचवाँ पाठ 'सुख क्या हैं' नामक है। इसकी विषय वस्तु 'मैं कौन हूँ?' कृति की विषयवस्तु के समय स्पष्ट कर दी गई है।

सातवाँ पाठ 'चार अभाव' है। यहाँ आचार्य समन्तभद्र का परिचय दिया है तथा स्पष्ट किया है कि एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अस्तित्व न होने को अभाव कहते हैं। ये चार हैं ह्र प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव। इन चारों की परिभाषा दी गई है। इन चारों के अभाव के न मानने में क्या हानि तथा मानने से क्या लाभ होता है। वह भी स्पष्ट किया है। अंत में लिखा है कि चारों अभावों का स्वरूप अच्छी तरह समझकर मोह, राग, द्वेषादि विकार का अभाव करने के प्रति सावधान होना चाहिए।

आठवाँ पाठ 'पाँच पाण्डव' नाम से है। यह संवाद रूप में प्रस्तुत किया है। प्रथम आचार्य जिनसेन का परिचय दिया है। पांडुराज के पाँच पुत्र-युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हूँ पाँच पांडव के नाम से जाने जाते हैं। इनके जीवन से घटित विविध घटनाओं का यहाँ उल्लेख किया है। द्रोपदी का स्वयंवर, वहाँ कौरव व पाण्डवों का पुनः मिलन, शर्त लगाकर जुआ खेलना, दीक्षा काल में गर्म लोहे के गहने पहनाना, तथा शत्रुंजय गिरि से तीन पांडवों के मोक्ष जाने आदि का वर्णन किया है।

'तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-2' इनकी संपादित कृति है। इसमें इन्होंने तीन पाठ लिखे हैं। तीसरा, पाँचवाँ, आठवाँ। कुल इसमें नौ पाठ हैं।

'पुण्य-पाप' के पाठ में पुण्य-पाप किसे कहते हैं और उनका मुक्ति के मार्ग में क्या स्थान है? इस विषय पर इस निबंध में प्रकाश डालते हुए

लिखा है कि पुण्य-पाप दोनों ही बंध के कारण है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से पाप की अपेक्षा पुण्य अच्छा है व इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर शास्त्रों में उसे व्यवहार से धर्म भी कहा गया है; तथापि मुक्ति के मार्ग में उसका स्थान अभावात्मक ही है।

पाँचवाँ पाठ 'आत्मानुभूति और तत्त्वविचार' है। इसकी विषयवस्तु 'मैं कौन हूँ?' कृति के वर्णन के समय प्रस्तुत की गई है। इसी तरह आठवाँ पाठ 'तीर्थंकर भगवान महावीर' है। इसकी विषयवस्तु 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक कृति के वर्णन के समय प्रस्तुत की जा चुकी है।

### वैशिष्ट्य

1. उक्त कृतियों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का पूरा ध्यान रखा गया है। याने उदाहरण से सिद्धांत की ओर, सरलता से कठिनता की ओर मार्ग का चयन किया है।
2. अधिकांश पाठ नाटकीय प्रवृत्ति से प्रस्तुत करने से रोचकता उत्पन्न हो गई है।
3. पाठों का चयन छात्रों के स्तरानुकूल किया गया है। पहले भागों में विषय सरल, फिर कठिन है।
4. भागों में विषय-वस्तु की तारतम्यता है।
5. पाठों में महापुरुषों का परिचय, आचार्यों का परिचय, विद्वानों का परिचय देकर छात्रों में उनके प्रति पूज्य व आदर भाव के साथ श्रद्धा भाव उत्पन्न किया गया है।

### ● बिखरे मोती

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति डॉ. भारिल्ल द्वारा समय-समय पर लिखे गये विविध लेखों का संकलन है; जो पत्र-पत्रिकाओं में, विशेषांकों में प्रकाशित हुए थे। इन बिखरे हुए लेखों को समग्र रूप से एक साथ प्रकाशित करने के कारण इस कृति का नामकरण 'बिखरे मोती' रखा गया है।

**आधार स्रोत** – सर्वोदय स्वाध्याय समिति बेलगाँव (कर्नाटक) ने जब डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया; तब पण्डित श्री एम.बी. पाटील, बेलगाँव ने ब्र. यशपालजी से यह विचार रखा कि डॉ. भारिल्ल के फुटकर रूप में लिखित रचनाओं को भी अभिनंदन समारोह के निमित्त पुस्तक रूप में प्रकाशित करना चाहिए। यह विचार यशपालजी को अच्छा लगा। उन्होंने सामग्री संकलित कर संपादन कर इस कृति का प्रकाशन कराया।

**विषयवस्तु** – प्रस्तुत कृति को तीन खंडों में विभक्त किया गया है। प्रथम खंड 'जिन्हें भूलना संभव नहीं' के नाम से है। इसमें आचार्य कुंदकुंद, आचार्य अमृतचंद्र, पण्डित बनारसीदास, गुरुदेव श्री कानजी स्वामी, रामजीभाई, खीमचन्दभाई, पण्डित बाबूभाई, पण्डित फूलचन्दजी, पण्डित माणिकचन्द चवरे, पूरणचंदजी गोदिका, नेमीचंदजी पाटनी आदि की जीवन चर्या एवं उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को लेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन व्यक्तियों की क्या महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ रही है, उनका उल्लेख किया है। प्रथम लेख इसमें 'कुंदकुंद विदेह गये थे या नहीं?' है।

इसमें इन्होंने कुंदकुंद के विदेह जाने को सिद्ध किया है। वहीं उन लोगों की आशंकाओं का निवारण भी किया कि कुंदकुंद ने स्वयं अपने विदेह जाने की बात का उल्लेख क्यों नहीं किया। इन्होंने बतलाया कि कुंदकुंद दूरदृष्टि थे। वे लिखते हैं ह

“किसी भी रूप में दिगंबरों का संबंध भरतक्षेत्र से टूटकर विदेहक्षेत्र से न जुड़ जावे – हो सकता है ह इस बात को ध्यान में रखकर ही कुंदकुंद ने विदेहक्षेत्र गमन की घटना का कहीं जिक्र तक न किया हो।”<sup>71</sup>

आगे वे लिखते हैं कि यह उनकी विशुद्ध व्यक्तिगत उपलब्धि थी। वे विदेहगमन की घोषणा के आधार पर अपने को महान् साबित नहीं करना चाहते थे।

‘अजात शत्रु : पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता’ लेख में ये लिखते हैं ह “वे अध्यात्म प्रेमी थे, आध्यात्मिक प्रवक्ता थे, कुशल कार्यकर्ता थे, सफल नियोजक एवं लोकप्रिय धार्मिक नेता थे। अध्यात्म उनके जीवन में तिल में तेल की भाँति समाया हुआ था।”<sup>72</sup>

“यद्यपि मेरे हृदय में उनके प्रति जितना सम्मान था, वह मैं ही जानता हूँ; तथापि लोग उनके सामने जितने विनत रहते थे, उतना मैं नहीं; मैं उनका मुँह लगा बीरबल था। काम की बातों के अतिरिक्त मैं उनसे व्यंग्य-विनोद भी कम नहीं करता था। भयंकर पीड़ा में भी जबतक एक बार उन्हें खिलखिला कर हँसा न लूँ, न मुझे चैन पड़ता था न उन्हें। उनके अभाव में मैंने एक सच्चा मित्र, सन्मार्गदर्शक, अग्रज एवं समर्थ साथी खो दिया है।”<sup>73</sup>

गुरुदेव कानजीस्वामी संबंधी चार लेख हैं। उसमें कानजी स्वामी के व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। वे ‘आचार्य कुंदकुंद की वाणी के प्रचार प्रसार में कानजी स्वामी का योगदान लेख में ये लिखते हैं ह

“वे आचार्य कुंदकुंद और उनके समयसार पर ऐसे समर्पित हुए कि उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय एवं उसका गुरुतर गुरुत्व सब कुछ एक झटके में ही निछावर कर दिया और स्वयं को दिगम्बर श्रावक के रूप में घोषित कर दिया तथा पिछला सबकुछ भूलकर निराकुल हो समयसार के स्वाध्याय में जुट गये।”<sup>74</sup>

इसी तरह ‘हा गुरुदेव! अब कौन.....?’ लेख में लिखते हैं ह

“अब इस आर्थिक युग में धन को धूल कौन कहेगा? कौन गायेगा त्रिकाली आत्मा के गीत? पुण्य के गीत गाने वाले तो गली-गली में मिल जावेंगे, पर धर्म का सच्चा स्वरूप डंके की चोट अब समयसार का मर्म और कौन बतायेगा आत्मा का धर्म?”<sup>75</sup>

इसीतरह अन्य व्यक्तियों का भी परिचय है तथा दो इंटरव्यू दिए हैं। एक इंटरव्यू डॉ. भारिल्ल द्वारा नेमीचंद पाटनी का खानियाँ तत्त्वचर्चा पर लिया गया है। दूसरा इंटरव्यू जैन यूथ फोरम के मुख पत्र ‘छात्र त्रय’ तमिल मासिक पत्रिका के संपादक श्री प्रोफेसर आदिनाथन द्वारा भारिल्ल से टोडरमल स्मारक भवन में संचालित गतिविधियों के संदर्भ में लिया गया है।

इस कृति का दूसरा खंड ‘सामाजिक’ नाम से है; जिसमें 17 लेख हैं। इसमें आपातकालीन प्रसंगों पर लेखक द्वारा समाज को यथोचित मार्गदर्शन देने हेतु यथा अवसर लिखे गए लेखों का संकलन है। इस खंड के विषय में संपादक यशपालजी लिखते हैं ह

“मैं यह अपेक्षा रखता हूँ – कोई भी जैन या जैनेतर भाई ‘सामाजिक खंड’ को मनोयोगपूर्वक पढ़ेगा तो उसका दिल व दिमाग अत्यंत संतुलित हुए बिना नहीं रहेगा। इस खंड में व्यक्त रीति-नीति से प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन सुखी एवं समाधानी हुए बिना नहीं रहेगा। जिसका जीवन आध्यात्मिक विचारों से सराबोर रहता है; उनका सामाजिक जीवन कितना सहज व शांतिमय बन जाता, इसका यह विभाग उदाहरण है।”<sup>76</sup>

डॉ. भारिल्ल के सामाजिक लेखों के विषय जिनवाणी के बहिष्कार करने वालों के संबंध में, सामाजिकता, महासमिति, वीतराग-विज्ञान पत्रिका, सागर प्रशिक्षण शिविर आदि के सम्बन्ध में हैं। इसके कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं ह

‘निर्माण या विध्वंस’ लेख में ये लिखते हैं ह

“यदि आपको कोई तकलीफ है तो उससे सस्ता साहित्य प्रकाशित कीजिए, उसे कम से कम मूल्य में घर-घर पहुँचाइये, जलाने और डुबाने का नकारात्मक मार्ग छोड़िये। अपने संगठन को बल दीजिए। दूसरे की खींची लकीर छोटी करने के लिए उसे मिटाइये नहीं, बल्कि उसे बगल में बड़ी लकीरें खींचिये।”<sup>77</sup>

इसी तरह एक लेख ह्व 'यदि जोड़ नहीं सकते तो...' में लिखते हैं ह्व "महात्मा गाँधी के दुर्भाग्यपूर्ण अंत पर डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा था कि एक सबसे बड़ा हिन्दू हिन्दुत्व की रक्षा के नाम पर हिन्दू द्वारा ही मारा गया। कानजीस्वामी को गैर दिगम्बर घोषित करने की सोच वालों को एकबार गंभीरता से सोचना चाहिए कि एक बार फिर किसी राधाकृष्णन को यह न लिखना पड़े कि कुंदकुंदाचार्य के सबसे बड़े भक्त को कुंदकुंदाचार्य के तथाकथित भक्तों द्वारा कुंदकुंद की रक्षा के नाम पर गैर दिगम्बर घोषित किया गया।" 78

सन् 1987 के दिसम्बर माह में नागपुर में जिनवाणी के अपमान से जनता में माहौल बहुत उत्तेजित हो चुका था। उस समय डॉ. भारिल्ल ने शांति का उद्बोधन दिया। जिससे शांति हुई। उन्होंने कहा ह्व

"मेरा तो कहना है कि गोली का जवाब गोली से देने की बात तो बहुत दूर, हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है। ऐसा पाप हमसे तो होगा नहीं।" 79

इसप्रकार डॉ. भारिल्ल ने समय-समय पर जनता का मार्गदर्शन-प्रवचन, उद्बोधन, प्रलेखन के माध्यम से किया है।

इस कृति का तीसरा खंड 'सैद्धांतिक' है। इसमें छह लेख हैं, पहला लेख 'समयसार का प्रतिपादन केन्द्र बिन्दु भगवान आत्मा' है। इस लेख में 'समयसार' ग्रन्थ में आत्मा विषयक जो बातें कही गई हैं, उसे प्रमाण सहित बताया है। ये कहते हैं ह्व "परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत इस भगवान आत्मा को जिनागम में विशेषकर समयसार में - 'ज्ञायकभाव, परमभाव, परमपदार्थ, परमार्थ, परमात्मा, कारणपरमात्मा, निजभाव, ज्ञानघन, त्रिकालीध्रुव, समय, समयसार, एकत्वविभक्त, अतीन्द्रिय, महापदार्थ आदि नामों से अभिहित किया गया है।" 80

डॉ. भारिल्ल ने इस लेख में कहा है कि समयसार की ही यह विशेषता है कि जिसमें दृष्टि के विषय सम्यग्दर्शन के विषयभूत भगवान आत्मा को - हाथ में रखे आंखों के समान दिखाने का प्रयास किया गया है।

इस खण्ड का दूसरा लेख 'जैनदर्शन का तात्त्विक पक्ष : वस्तुस्वातंत्र्य' नामक है; जिसमें यह सिद्ध किया है कि जैनदर्शन न केवल जन-जन की स्वतंत्रता की घोषणा करता है; अपितु कण-कण की स्वतंत्रता की उद्घोषणा करता है।

तीसरा लेख 'दुःख निवृत्ति और सुख प्राप्ति का सहज उपाय' है। इसमें बताया कि यदि यह आत्मा आत्मस्वभाव को अपने अनुभव का विषय बनाये तो जिन कारणों से दुःख परंपरा की उत्पत्ति होती है, उनका अभाव होकर निराकुलतारूप अनंत सुख की सृष्टि हो सकती है।

चौथा लेख 'सम्यक्त्व और मिथ्यात्व' नामक है। यह अति संक्षिप्त लेख है। यहाँ सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के विषय में प्रकाश डाला गया है। सम्यक्त्व मुक्ति का कारण तथा मिथ्यात्व को संसार का कारण बताया है।

पाँचवाँ लेख 'विवेकी कभी क्रुद्ध नहीं होता' नामक है। जिसमें क्रोध के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। विवेकी क्रुद्ध नहीं होता, इसकी सिद्धि की है। यह लेख आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चरित्र में आई सूक्ति 'विवेके हि न रौद्रता' पर लिखा गया है।

'बिखरे मोती' के इस तृतीय खंड का अंतिम लेख 'जरा गंभीरता से विचार करें' नामक है। जिसमें वर्तमान में हो रही 'गौ हत्या' के विषय पर लिखा गया है। ये कहते हैं ह्व

"अरे भाई! माँ का दूध तो अकेले अबोध बालक ही पीते हैं, पर गाय माता का हम सभी पीते हैं; हम सब प्रतिदिन ही गाय माता के दूध, दही, घी का उपयोग करते हैं। उनकी सुरक्षा करना हम सभी का परम कर्तव्य है?" 81

इन्होंने इस लेख में कहा है कि हमें जीवन की बाजी लगाकर भी गोहत्या के दुष्कृत्य को रोकना चाहिए।

### वैशिष्ट्य

1. इसमें आचार्यों एवं विद्वानों के चरित्र का सुंदर रीति से अंकन किया

गया है, जिससे पाठक के हृदय में सहज उनके प्रति श्रद्धाभाव जागृत हो जाता है।

2. सामाजिक खंड के लेखों से पाठक को अहिंसक रीति से अपनी समस्याओं का समाधान करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
3. सैद्धान्तिक खंड से जैनदर्शन की मूल विषयवस्तु से व्यक्ति का परिचय हो जाता है।
4. यत्र-तत्र बिखरी सामग्री का संकलन व्यवस्थित क्रम में प्रकाशित हुआ है।

### 3.2.2. पद्य कृतियों का अनुशीलन

#### ● बारह भावना

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में जैनदर्शन व समाज में प्रसिद्ध वैराग्य उत्पादक द्वादश अनुपेक्षाओं का वर्णन किया गया है। द्वादश अनुपेक्षा को लोक प्रचलन में बारह भावना नाम से अभिहित किया गया है। इसी दृष्टि से इसका नामकरण 'बारह भावना' रखा गया है।

**आधारस्रोत** – इन बारह भावनाओं के लेखन के विषय में डॉ. भारिल्ल ने लिखा है ह

“आत्मधर्म व वीतराग विज्ञान के आरंभ में ही प्रथम पृष्ठ पर हम एक आध्यात्मिक भजन देते रहे हैं। 'बारह भावना : एक अनुशीलन' लेखमाला आरंभ करते समय विचार आया कि अनुशीलन के साथ-साथ बारह भावनाएँ पद्य में भी लिखी जायें और उन्हें अनुशीलन के साथ-साथ प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित किया जावे। उक्त सन्दर्भ में बहुत पहले लिखी बारह भावनाएँ बहुत खोजी, पर हमारी यह खोज निष्फल ही रही; परंतु अनुशीलन से उत्पन्न विशुद्धि के बल पर मैंने पुनः पद्यमय बारह भावनाएँ लिखने का संकल्प किया, परिणामस्वरूप यह पद्यमय बारह भावनाएँ एवं 'बारह भावना : एक अनुशीलन' आपके समक्ष सहज ही

प्रस्तुत हो गया है।”<sup>82</sup> कहा जा सकता है कि उक्त कारण ही इसका आधार स्रोत रहा है।

**विषयवस्तु** – प्रस्तुत कृति पद्यमय है। इसमें कुल 48 छन्द हैं। प्रत्येक भावना में चार-चार छन्द की रचना कर भावना के स्वरूप का वर्णन आगम व अध्यात्म की दृष्टि से किया गया है। प्रथम 'अनित्य भावना' में डॉ. भारिल्ल ने लिखा है कि संयोग, भोग और पर्यायें क्षणभंगुर हैं और आत्मा त्रिकाली शाश्वत, ध्रुवधाम है। इस सत्य को स्वीकारना अनित्य भावना का सार है और त्रिकाली ध्रुवधाम निज आत्मा की आराधना ही वास्तविक आराधना है।

अनित्य भावना की निम्नांकित चार पंक्तियाँ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई हैं ह

“अंजुली जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।

प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही।

काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मंडरा रही।

किंतु पल-पल विषय तृष्णा तरुण होती जा रही ॥”<sup>83</sup>

'अशरण भावना' में बताया गया है कि सभी संयोग, जीवन, मरण अशरण है। संसार में कोई भी शरण नहीं है। निश्चय से निज आत्मा और व्यवहार से पंच परमेष्ठी शरण हैं, इन्हें छोड़कर अन्य कोई भी शरणभूत नहीं है। संयोगों के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होने वाली दुखमय, मलिन और सम्पूर्णतः, निस्सार चिद्वृत्तियाँ ही वास्तविक संसार है और भ्रमरोग के वश होकर भव-भव में परिभ्रमण ही संसार का मूल आधार है।

जिसप्रकार जल का मंथन चाहे दिन-रात ही क्यों न करें, पर उसमें से घी की प्राप्ति संभव नहीं है, उसीप्रकार निज आत्मा को जाने बिना संसार में सुख की प्राप्ति संभव नहीं है। संसार तो मात्र अध्रुव पर्याय में है, निज ध्रुवधाम आत्मा में नहीं है।

'एकत्व भावना' में बतलाया गया है कि आत्मा, जीवन-मरण और



सुख-दुख को अकेले ही भोगता है और नरक, निगोद, स्वर्ग या मोक्ष में भी अकेला ही जाता है। बहिरात्मा इससे अपरिचित रहते हैं, जबकि ज्ञानी इस तथ्य को समझकर निज आत्मा में जमकर परमात्मा बन जाते हैं।

एकत्व की महिमा में कहा है ह

“एकत्व ही शिव सत्य है सौन्दर्य है एकत्व में।

स्वाधीनता सुख शांति का आवास है एकत्व में ॥

एकत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।

एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥”<sup>84</sup>

जिस देह में यह आत्मा रहता है, जब वह एक क्षेत्रवगाही देह भी आत्मा से भिन्न है तो जो क्षेत्र से भिन्न है, वे (भाई, बहन, माता-पिता, मकान आदि) तो सर्वथा भिन्न ही है। इतना ही नहीं पर के लक्ष्य से आत्मा में ही उत्पन्न होने वाली शुभाशुभभावरूप तथा स्वलक्ष्य से उत्पन्न होने वाली शुद्धभावरूप वृत्तियाँ भी आत्मा से अन्य ही हैं, भिन्न ही है; चैतन्यमय ध्रुव आत्मा तो गुणभेद से भी भिन्न परमपदार्थ है। अन्यत्व भावना का सार आत्मा का पर से भिन्नत्व पहिचानना ही है।

‘अशुचि भावना’ में स्पष्ट किया गया है कि यह आत्मा जिस देह को अपना मानकर दिन-रात रम रहा है; वह देह अत्यंत मलिन, मल, मूत्र, खून, मांस, पीप एवं चर्बी का घर है। यद्यपि यह शरीर जड़ रूप है; तथापि इसमें चैतन्य भगवान आत्मा विराजमान है। देह इतनी अशुचि है कि इसके संयोग में पवित्र से पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है, मलिन हो जाती है किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इस महामलिन देह में रहकर भी यह भगवान आत्मा सदा निर्मल ही रहा है।

‘आस्रवभावना’ में समझाया गया है कि राग-द्वेष वृत्तियाँ भ्रम का कुँआ है, आस्रवभावरूप है, दुखस्वरूप है, दुख की कारण है और वही भगवान आत्मा भ्रमरोग को हरण करने वाला, संतोष करने वाला, सुख करने वाला और आनंद रूप है। आत्मा और आस्रव के इस भेद को नहीं

जानना ही संसार का मूल कारण है। शुभाशुभ सम्पूर्ण आस्रव हेय हैं और अपना शुद्धात्मा श्रद्धेय, उपादेय, ध्येय है। इस सत्य को पहिचानना ही आस्रव भावना का सार है।

‘संवर भावना’ की रचना करते समय डॉ. भारिल्ल ने लिखा है कि देह व राग से भिन्न तो है ही पर यह आत्मा अनंत गुणवाला होने पर भी यह आत्मा गुणभेद से भिन्न एवं निर्मल पर्यायों से भी पार है। ऐसा शुद्धात्मा मैं ही हूँ। चैतन्य रूपी सूर्य आनन्द का कन्द और ज्ञान का घनपिण्ड आत्मा मैं ही हूँ। ऐसा सच्चा ज्ञान श्रद्धान एवं सही साधना आराधना ही संवरतत्त्व है, संवरभावना है। संवरभावना का सार शुद्धात्मा को जानना ही है।

‘निर्जरा भावना’ के विषय में कहा गया है कि शुद्धात्मा की साधना, ममता रहित निर्मल दशा, निज आत्मा की ओर नित्य वृद्धिगत भावना ही निर्जरा है। यह राग का नाश तथा वैराग्य को उत्पन्न करने वाली है। यह निर्जरा तप और त्याग सुख और शांति का विस्तार करने वाली है। आराधकों के काम की तो एकमात्र अविपाक निर्जरा ही है, सविपाक या अकाम निर्जरा नहीं।

षट्द्रव्यमय और तीन लोक वाले इस लोक में यह आत्मा, आत्मा के ज्ञान बिना भ्रमरूपी रोग के वश होकर भव भव में भ्रमण करता रहा है। छह द्रव्यों वाले इस लोक में एक आत्मा ही सारभूत पदार्थ है। वह ज्ञान स्वभावी आत्मा ही वास्तविक लोक है यथा ह

“निष्काम है निष्क्रोध है निर्मान है निर्मोह है।

निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है निग्रन्थ है निर्दोष है।

निर्मूढ़ है नीराग है आलोक है चिल्लोक है।

जिसमें झलकते लोक सब वह आत्मा ही लोक है ॥”<sup>85</sup>

‘बोधिदुर्लभ भावना’ में कहा है कि मनुष्य भव, उत्तम देश, परिपूर्ण आयु, शुभ आजीविका, दुर्वासनाओं की मंदता, परिवार की अनुकूलता,

सज्जनों की संगति, सद्धर्म की आराधना, आत्मा की साधना करने की वृत्ति होना क्रमशः एक से एक महादुर्लभ है; पर जब निज को जानना, पहिचानना एवं निज की साधना, आराधना ही बोधि है, तो फिर बोधि की आराधना दुर्लभ कैसे हो सकती है? सुलभ ही समझना चाहिए।

अंतिम 'धर्मभावना' में कहा गया है कि निज आत्मा को जानना, पहिचानना ही धर्म है। निज आत्मा की ओर बढ़ती हुई भावना ही धर्म भावना है। कामधेनु, कल्पवृक्ष तो नाम मात्र के ही संकटहरण है; जबकि धर्म एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसमें याचना की आवश्यकता नहीं होती। शुद्धात्मा की साधना ही धर्मभावना का या बारहभावनाओं का सार है। वैराग्योत्पादक धर्मभावना या बारह भावनाओं का एक मात्र आधार निजशुद्धात्मा ही है।

### वैशिष्ट्य

1. बारह भावनाएँ अध्यात्म से ओत-प्रोत हैं।
2. ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है। यह प्रत्येक भावना के अन्त में बताया गया है।
3. निश्चय व्यवहार का पूर्ण सुमेल रखते हुए परमार्थ पर जोर दिया गया है।
4. सभी भावनाओं में निज आत्मा को जानने, पहिचानने पर जोर दिया गया है।
5. सभी पद्य लयात्मक, तुकबन्धात्मक और प्रवाहपूर्ण हैं।

### ● जिनेन्द्र वंदना

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में चौबीस तीर्थंकर रूपी जिनेन्द्रों की वंदना की गई है, अतः इसका नामकरण 'जिनेन्द्र-वंदना' रखा गया है।

**आधार स्रोत** – इस जिनेन्द्र-वंदना का प्रकाशन आध्यात्मिक मासिक 'वीतराग विज्ञान' के प्रथम पृष्ठ पर हुआ है। इसे ही बाद में पुस्तकाकार

रूप में प्रकाशित कराने का भाव उत्पन्न हुआ। अतः इसे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया है।

**विषयवस्तु** – इसमें तीर्थंकर भगवान आदिनाथ से लेकर तीर्थंकर भगवान महावीर तक वर्तमान चौबीसी की वंदना की गई है। चौबीस प्रकार के परिग्रहों से रहित चौबीस तीर्थंकरों की इस वंदना में क्रमशः एक-एक परिग्रह के अभाव को गर्भित किया गया है। यथा आदिनाथ को अनादि मिथ्या मोह से, अजितनाथ को क्रोध से, संभवनाथ को मान से, अभिनंदन को माया से, सुमतिनाथ को लोभ से, पद्मप्रभु को हास्य से, सुपार्श्वनाथ को रति से, चंद्रप्रभु को अरति से, पुष्पदंत को शोक से, शीतलनाथ को भय से, श्रेयांसनाथ को जुगुप्सा से, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ को स्त्री-पुरुष-नपुसंक वेदों से, धर्मनाथ को क्षेत्र से, शांतिनाथ को मकान से, कुंथुनाथ अरनाथ को धन-धान्य से, मल्लिनाथ को द्रुपद से, मुनिसुव्रत को चतुष्पद से, नेमिनाथ को यान (सवारी) से, नेमिनाथ को शय्यासन से, पार्श्वनाथ को वस्त्रादि से, महावीर को भांड (बर्तन) से रहित बताया है।

वस्तुतः तो चौबीस ही तीर्थंकर चौबीसों परिग्रहों से ही रहित हैं। पर कवि ने एक-एक परिग्रह को आधार बनाकर भगवान की वंदना की है। नेमिनाथ की वंदना का पद द्रष्टव्य है ह

“आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन ।

सद्बोध पाया आपने जग को बताया नेमि जिन ॥

स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन ।

पर द्रव्य से पृथक पर हर द्रव्य अपने में मगन ॥”<sup>86</sup>

### वैशिष्ट्य

1. यह विशुद्ध आध्यात्मिक स्तुति है, इसमें कहीं भी कर्त्तावाद को प्रोत्साहित नहीं किया गया है।
2. इसमें जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों का उद्घाटन किया गया है, मुक्ति के मार्ग को यथा-स्थान सर्वत्र प्रदर्शित किया गया है।

3. इस कृति की एक विशेषता यह भी है कि स्तुति के साथ ही उसका गद्य में सामान्य अर्थ भी दिया गया है, जिससे पाठकगण स्तुति के सम्पूर्ण भाव को हृदयंगम कर सकें।
4. चौबीस परिग्रहों के माध्यम से चौबीस तीर्थकरों की वंदना की गई है उनका अभाव प्रदर्शित करके।
5. भाषा में प्रवाह, सहजता, आलंकारिकता और तुकबंदी का सुंदर संयोग है।

#### ● अर्चना

**नामकरण** – प्रस्तुत कृति में देव-शास्त्र-गुरु, सिद्ध भगवान, सीमंधर भगवान, महावीर भगवान की अर्चना चार पूजनों द्वारा की गई है। अतः इस कृति का नामकरण 'अर्चना' रखा गया है।

**आधारस्रोत** ह्व डॉ. भारिल्ल ने अलग-अलग समयों पर कुल चार पूजाएँ लिखी। उन चार पूजाओं का संकलन कर एक साथ प्रकाशित करने का भाव उत्पन्न हुआ। इसके प्रतिफल स्वरूप पॉकेट आकार में इस 'अर्चना' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

**विषयवस्तु** – इस कृति में कुल चार पूजाएँ हैं। प्रथम देव-शास्त्र-गुरु की पूजा है। जिसमें सर्वप्रथम देव-शास्त्र-गुरु को नमस्कार किया गया है। आगे द्रव्य-अष्टक है; जिनमें कहा है कि मेरी विषय भोगों रूपी जल से प्यास नहीं बुझी। अतः हे प्रभुवर हम इसे आपको लौटाकर समता रस पीने आये हैं। जब हृदय क्रोधानल से दग्ध हो गया, तब चन्दन से शीतलता प्राप्त नहीं हुई। अतएव यह चंदन आपके चरणों में अर्पणकर शीतलता प्राप्त करने आया हूँ। आज तक मैंने अक्षय निधि को नहीं पहिचाना और लौकिक निधि पर अभिमान किया। अब इसे नष्ट करने के लिए आपको पहिचान लिया है। मैं माया की जाल में फँसकर कामुकता से बाँधा गया। मैंने विविध व्यंजनों का भक्षण किया पर भूख शांत नहीं हुई। अतएव संयमभाव जगाना चाहता हूँ। मैंने अपनी अज्ञानता को जड़ दीपकों एवं

विद्युत बल्बों से मिटानी चाहा; जबकि यह भेदज्ञान के नेत्र द्वारा नष्ट होती है।

हे प्रभुवर! मैं आज तक यह मानता था कि शुभ कर्म से सुख, अशुभ कर्म से दुख होता है; पर आज सत्य समझ में आया कि दोनों ही दुख के कारण हैं। अतः इसे जलाने आया हूँ। मैंने भोगों को अमृतफल जाना जबकि वे विषफल थे; अतः अब मैं शुद्धात्मप्रभारूप अनुपम फल को प्राप्त करने उपस्थित हुआ हूँ। पूर्णता प्राप्ति में बहुमूल्य जगत की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मैं स्वयं पूर्ण हूँ।

इसी तरह जयमाला में देव-शास्त्र-गुरु के विषय में कहा गया है कि हे वीतरागी सर्वज्ञ प्रभो! मैं तो अबतक आपके भरोसे रहा कि आप सुखी कर दोगे; पर आप वीतरागी हो, जग से कृत कृत्य हो अतः आप पर के कर्त्ता-धर्त्ता नहीं हो। इसकारण मुझे अपना कल्याण स्वयं करना होगा।

वीतरागता का पोषण करने वाले ग्रंथ जिनवाणी कहलाती है। यह जिनवाणी मुक्ति का मार्ग दिखाती है। गुरु दिगम्बर, निग्रंथ, सद्ज्ञानी, ध्यानी, समरससानी, चलते-फिरते सिद्ध हैं। यथा ह्व

“चलते-फिरते सिद्धों से गुरु चरणों में शीश झुकाते हैं।

हम चले आपके कदमों पर नित यही भावना भाते हैं।”<sup>87</sup>

द्वितीय पूजन 'सिद्ध पूजन' है। इसमें प्रथम तो सिद्ध भगवान के विशेषण कहे हैं। सिद्ध भगवान चिदानंद, स्वातमरसी आदि हैं। फिर द्रव्य-अष्टक में कहा कि मैं संसार से निराश होकर अब सिद्ध भगवान की शरण में आया हूँ; क्योंकि जल के द्वारा तृष्णा की आग नहीं बुझी, चंदन से शरीर का रोग तो शांत हुआ, पर आत्मा का रोग नहीं हुआ। हे सिद्ध भगवान! आप अक्षत, अखंड, अविनाशी हो। आपने जगत का प्रबल शत्रु कामभाव को जीत लिया है। मैं भी उस कामदेव को ठुकराना चाहता हूँ; अतः आपकी शरण में आया हूँ।

मेरी मान्यता थी कि भोजन से जीवन चलता है; पर नारकी बिना भोजन के जीवित है और मनुष्य भोजन करके भी मर रहा है। मेरा मानना था कि प्रकाश ज्ञान का कारण है। सचमुच तो मेरा स्वभाव ही ज्ञानमयी है। मैं धूप को नहीं, जड़कर्मों की धूल को उड़ाने आपकी शरण में आया हूँ। रागादि भावों का फल आकुलता ही है।

हे सिद्ध भगवान! जब आप पर मेरी दृष्टि तो मुझे अपने स्वभाव का ज्ञान हुआ तथा विषय भोगों में सुख नहीं है, ऐसा सच्चा ज्ञान होने से मैं जल से फल तक का सारा वैभव त्यागने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।

इसकी जयमाला में सिद्ध भगवान के अनेक गुणों को बताया गया है वे निर्द्वन्द्व, निराकुल, निर्मम आदि हैं तथा इसकी आठ पंक्तियाँ सात तत्त्व संबंधी भूलों की ओर संकेत करने वाली हैं। जैसे-जीव-अजीव तत्त्व संबंधी भूल - “चेतन जड़मय लिया जान, तन को अपनाया लिया मान।”<sup>88</sup> अंत में कहा गया है कि आप पर के कर्ता नहीं, मात्र ज्ञाता हो। निज पद ही आनंद का धाम है। अतः मैं भी इसे प्राप्त करूँ।

तीसरी पूजन में सीमंधर पूजन की स्थापना में सीमंधर भगवान के विशेषण दिए हैं कि आप अनंत चतुष्टयधारी, चैतन्यविहारी, अरिनाशक हो। अष्टक द्रव्य छंदों में कहा कि हे सीमंधर भगवान। आप जल से भी शीतल, निर्मल, अविकारी, मिथ्यामल को धोने वाले, सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो; आप चंदन के समान हो, भव-दुःख हर्ता हो। हमारे अंतर्दाह मिटाने के लिए आप मलयागिरि चंदन हो।

आप अक्षतपुर के वासी हो। अतः मैं आपका विश्वासी हूँ। आपने अक्षत का साम्राज्य लिया। मैं भी अक्षत का अभिलाषी हूँ। आप तो सुगंधित ज्ञान सुमन हो, आप में राग द्वेष की दुर्गंध नहीं है, आप चैतन्यरूप विपिन के चितरंजन हो, आप आनंद रसामृत के द्रव्य हो ह्व यह जानकर आपकी शरण ली है। तब मेरी क्षुत्पीड़ा कैसे समाप्त नहीं होगी।

आप लोकालोक के प्रकाशक हो, कैवल्यकिरण से ज्योतित हो; अतः आप मेरे अंतरंग को प्रकाशित कर दो। आप उत्तमक्षमादि दशधर्मों से सुरभित हो। धूम यह संदेश दे रहा है कि आप जग से ऊर्ध्वगामी हो। शुभ-अशुभ वृत्तियाँ मात्र दुःख का ही कारण है और काँटों के समान चैतन्य भवन के आंगन में पैदा हो जाती है। अतः आपकी पूजा का फल यही प्राप्त हो कि ये शुभाशुभ की ज्वाला शांत हो जावें। जब योगों की चपलता और कर्मों का ईंधन ध्वस्त हो गया; तब आप धवल निरंजन स्वस्थ हो गये।

जयमाला में सीमंधर भगवान की विशेषताएँ बताई है कि आप देह में रहते हुए भी विदेही हो। आप अपनी सीमा में रहकर भी तीन लोक के राजा हो। आपसे आचार्य कुंदकुंद ने दिव्य ज्ञान की प्राप्ति की थी, समयसार की प्राप्ति की थी, जिससे अन्य जीवों ने भी समयसार पाया।

इसकी निम्नांकित पंक्तियाँ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है ह्व

“पाया था उसने समयसार अपनाया उसने समयसार।

समझाया उसने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार ॥

दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।

है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार ॥”<sup>89</sup>

चौथी पूजन ‘महावीर पूजन’ जिसमें कहा गया है कि जो मोहादि के मर्दन में वीर है, ध्यान में धीर है, भवजलधि के तीर है ह्व ऐसे महावीर तीर्थकर मेरे द्वारा वंदनीय है। प्रत्येक अष्टक की दो पंक्तियाँ कोमन हैं, जिसमें कहा गया है कि जिनके गुणों के गान में आकुलित चित्त शांत हो जाते हैं; ऐसे भगवान वर्द्धमान हमारे ध्यान में सदा विचरण करें। अन्य पंक्तियों में कहा है कि भगवान महावीर के गुणों का स्तवन पवित्र करने वाला, मल का हर्ता है। जिसप्रकार चंदन पर कितने ही विषधर लिपटे हों, पर वह निर्विष ही रहता है; उसीप्रकार शत्रुओं ने कितने विघ्न किये हों, पर आप शांत ही रहे। आप अक्षत के समान अखंड हो, दिनकर के

समान प्रचंड हो। आप त्रिभुवनजयी हो, आप परगंध से रहित हो, पर निज गंध से सुरभित हों। आप क्षुधा आदि बाधा से रहित हों। आप कर्म ईधन के नाशक तथा पूर्ण ज्ञाता हो। जगत अपने पुण्य-पाप का फल भोगता है, पर आपने इनका त्याग कर दिया है। अतः आपका जीवन सफल है। आपके अनअर्घ पद के सामने मेरे अर्घ चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। आपने परमपद को पा लिया है।

पाँच अर्घ के छंद हैं। जिसमें बताया है कि आप आषाढ़ शुक्ला षष्ठमी को गर्भ में आये, चैत्र शुक्ला तेरस को अंतिम जन्म लिया, मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को कर्म कालिमा को नष्ट करने की दीक्षा ली; वैशाख दशमी को केवलज्ञान हुआ और कार्तिक कृष्णा अमावस्या को निर्वाण हुआ। अतः हम दीपावली मनाते हैं।

इसकी जयमाला में बतलाया गया कि आप बिना युद्ध, बिना हथियारों के अहिंसक आचरण से महावीर बने। आप जग के फंदे से रहित हो। आपका सभी जीव गुणगान करते हैं। तुम वीतरागी हो। जो आपको पहिचान लेता है, वह मोह रिपु का अभाव कर लेता है। वह दर्शन ज्ञान चारित्र की प्राप्ति कर वीतरागी बन जाता है। जो आपको नहीं जानता है, वह जिनका आप त्याग कर चुके हैं। उन्हीं की माँग करता है। यथा ह

“जो तुमको नहीं जाने जिनेश, वे पावें भव-भव भ्रमण क्लेश।  
वे माँगे तुमसे धन समाज, वैभव पुत्रादिक राज काज ॥  
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान ॥”<sup>90</sup>

इसकी निम्न पंक्तियाँ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई ह

“भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।  
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥”<sup>91</sup>

### ● वैशिष्ट्य

1. ये चारों पूजने पूर्व प्रचलित धारा से हटकर अध्यात्म धारा में लिखी गई हैं।

2. इन पूजनों ने जैन समाज में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। कारण कि इन पूजनों में गहरा भाव भरा हुआ है।
3. प्रत्येक पूजन की कुछ पंक्तियाँ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई, जिनका उल्लेख समय-समय पर विद्वान अपने व्याख्यानों में और जनमानस यथाअवसर अपने वार्तालाप में प्रयोग करते हैं। जैसे देव-शास्त्र-गुरु पूजन की निम्न पंक्तियाँ ह  
“जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।”<sup>92</sup>  
“चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।  
हम चले आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं ॥”<sup>93</sup>
4. पूजन लयबद्ध, गंभीर प्रकृति की हैं। सामान्य जनमानस पूजनों के भावों को समझ सकने में समर्थ हैं।

### ● फुटकर रचनाएँ

1. ‘मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।’ यह अध्यात्मगीत है। इसे पूरनचन्दजी गोदिका (टोडरमल स्मारक के निर्माता) ने डॉ. भारिल्ल से आग्रह कर बनवाया था। यह पूर्णतः आत्मस्वरूप का बयान करने वाला गीत है। इसमें कहा गया है कि मैं परिपूर्ण हूँ, अरस, अरूपी, अस्पर्शी हूँ, राग-रंग से भिन्न अखण्ड चैतन्य पिंड हूँ, खुद का कर्ता-धर्ता खुद हूँ। मैं आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व हूँ। यह कहा जाए कि इस गीत में ‘समयसार’ ग्रंथाधिराज का सार आ गया है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।
2. ‘महावीर वंदना’ – इसमें भगवान महावीर की वंदना की गई है। इसमें कहा गया है कि महावीर मोहादि का मर्दन करनेवाले, ध्यान में धीर, भव-जलधि के तीर, वीतरागी, आत्मध्यानी, केवलज्ञानी, सर्वज्ञ हैं। ऐसे महावीर हमारे ध्यान में विचरण करें। जिनका चरित्र जलनिधि के समान अपार है, जिनके गुणों की महिमा गणधर भी करने में समर्थ नहीं हैं हूँ ऐसे सन्मति को शतबार वंदना है। इनका उपदेश

सर्वहितोपदेशी है। इन्होंने कण-कण की स्वाधीनता की उद्घोषणा की है। आपका (महावीर का) संदेश सर्वोदयी, आत्मा से परमात्मा बनने का है। इस कविता की प्रारंभ की चार पंक्तियाँ इसप्रकार हैं ह

“जो मोह माया मान मत्सर मदन मर्दन वीर है।

जो विपुल विघ्नो ब्रीच में भी ध्यान धारण धीर हैं॥

जो तरण-तारण भय निवारण भय जलधि के तीर हैं।

वे वंदनीय जिनेश तीर्थकर स्वयं महावीर हैं॥”<sup>94</sup>

ये चारों पंक्तियाँ महावीर पूजन में स्थापना की पंक्तियाँ भी है।

3. ‘श्री कान गुरु जाते रहे?’ - यह कविता कानजी स्वामी के चतुर्थ स्मृति दिवस के अवसर पर रची गई थी। वीतराग विज्ञान, (मासिक) नवंबर, 1984 के अंक में प्रकाशित हुई है। इसे अब ‘बिखरे मोती’ कृति में संकलित किया गया है। इस कविता के माध्यम से कवि ने कहा है कि जिसने क्रमबद्धता को, स्व-पर में भिन्नता को, जन-जन, कण-कण की स्वाधीनता का शंखनाद किया ह ऐसे कहान गुरु का उपदेश भव्य जीवों को कान लगाकर श्रवण करना चाहिए। यद्यपि शुद्धात्मा के गीत गाने वाले, गुण-पर्याय में भी भिन्न आत्मा को बताने वाले, आत्मा के ध्याता श्री कहान गुरु जाते रहे; तथापि उनका बताया तत्व आज भी गूँजता है, स्वप्न में आता है। तब कौन कह सकता है कि इस हृदय से कहान गुरु जाते रहे। इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ इसप्रकार हैं ह

“प्रत्येक दिन वे आज तक जब स्वप्न में आते रहे।

तब कौन कहता इस हृदय से कान गुरु जाते रहे॥”<sup>95</sup>

### 3.3. डॉ. भारिल्ल की अप्रकाशित रचनाओं का अनुशीलन

डॉ. भारिल्ल की कुछ अप्रकाशित रचनाएँ शोधकर्ता को प्राप्त हुई हैं। ये रचनाएँ डॉ. भारिल्ल के टोडरमल स्मारक भवन में आने (सन्

1967) के पहले की लिखी हुई हैं। अप्रकाशित रचनाएँ गद्य-पद्य दोनों प्रकार की हैं।

पूर्व में डॉ. भारिल्ल की प्रकाशित कृतियों की विषय-वस्तु का उल्लेख किया जा चुका है। अब यहाँ अप्रकाशित रचनाओं की विषय-वस्तु का उल्लेख किया जा रहा है।

#### 3.3.1 गद्य रचनाओं का अनुशीलन

‘गद्य रचनाओं में एक नाटक है। दो पहेलियाँ है। चार कहानियाँ और दो लेख हैं।

##### ● गरीब की दीवाली (नाटक)

**नामकरण** - प्रस्तुत कृति का नामकरण गरीब की दीवाली इसलिए रखा गया है कि इस नाटक में गरीब की जीत बताई गई है। दीवाली पर्व खुशी का सूचक है। इसीप्रकार गरीब की न्यायालय में जीत होती है तो उसे खुशी होती है। इसी दृष्टि से इसका नाम गरीब की दीवाली रखा गया है; परन्तु इसका नाम गरीब या किसान की जीत या ‘सत्य की जीत’ रखा जाता तो अति उत्तम रहता; क्योंकि इस नाटक में सत्य की जीत को प्रसिद्ध किया है।

**विषयवस्तु** - ‘गरीब की दीवाली’ एक लघु नाटक है। इसमें सेठ, किसान, वकील कुछ आदमी आदि पात्र हैं। इसमें किसान की न्यायालय में जीत बताई है। इस नाटक का प्रारंभ सूत्रधार द्वारा ‘मैंने देखा किसान का घर’ गाने की एक पंक्ति से होता है। सेठ सोनाचंदजी के मकान पर सेठजी स्वयं, मुनीमजी, दो चार आदमी बैठे हुए हैं। सेठजी वार्तालाप प्रारंभ करते हैं। वे मुनीमजी से कहते हैं कि आज इस हलकुआ का हिसाब तो देखो। मुनीमजी ‘जी हुजूर’ कहकर बही के पन्ने उलटने लगते हैं। फिर सेठजी व खलका (किसान) के बीच नोक-झोंक होती है। किसान सेठजी का पैर पकड़ता है, पर सेठजी मूछों पर ताव देते हुए क्रोध

में कहते हैं कि तू कैसे भी कर कल तक सब चुकारा कर देना नहीं तो जेल.....। तब खलका कहता है कि सेठजी राम के नाम पर दया करो। कल कहाँ से लाऊँगा। आप ही बताइये? सेठजी उसे धक्का देकर निकाल देते हैं और कहते हैं कि प्रार्थना करनी है तो किसी मंदिर में जा। किसान गिर जाता है, कुछ देर में होश आता है। इतने में किसान का पुत्र रामसिंह आता है। पिताजी को पड़ा देखकर पूछता है 'हे ददुआ! यह क्या! तुमको किसने मारा है? तब किसान गाने लगता है ह

“गरीब के भगवान अमीरों पर तेरी महर है।

पलटकर देख रे तेरा ध्यान किधर हैं।।<sup>१६</sup>”

इतने में सेठजी वहाँ आ जाते हैं। उन्हें वहाँ से भगाते हैं। रामसिंह अपने पिता को ले जाता है। सेठजी को कह जाता है ह 'सेठ साहब ध्यान रखना'। उधर सेठजी वकील के पास जाते हैं। वकील ने इनकी जीत पक्की बताई। इधर किसानों की सभा होती है। रामसिंह क्रांतिकारी भाषण देता है।

दृश्य परिवर्तन होता है। सेठजी के मकान पर किसान आदि उपस्थित हैं। सेठजी कल घटी घटना की बात पूछते हैं। किसान ऊपरी मन से सेठजी की हाँ में हाँ मिलाते हैं। इनके वार्तालाप के बीच वकील साहब सेठ के घर आते हैं तथा औपचारिकता के बाद वकील साहब सेठजी से कहते हैं कि आप वह मामला नहीं जीत सकते हो। सेठजी चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। यहाँ पर गीत ह 'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान कितना बदल गया इंसान' गाया जाता है।

दूसरी तरफ डाकुओं ने सेठजी को लूटने की योजना बनाई। वे वहाँ जाते हैं। सेठजी को पीटते, धमकाते हैं। तभी रामसिंह यह आवाज सुनता है। वह डाकुओं से भिड़ता है, उन्हें वहाँ से भगाता है। इसके बाद गाँव के लोग इकट्ठे होते हैं, पुलिस का आना होता है। सेठजी कहते हैं ह

‘दरोगाजी इन्होंने मुझे लूट लिया, इसने (रामसिंह) ने पिस्तौल चलाई है। दरोगाजी रामसिंह को फटकारते हैं तथा सिपाहियों से बंधवाते हैं। फौजदारी केश होता है। बात अदालत में पहुँचती है। वहाँ जज, मुँशी, सेठजी, रामसिंह सब उपस्थित हैं। सेठजी वहाँ अपना बयान देते हैं। रामसिंह भी देता है, सभी गवाह सेठजी के पक्ष में बयान देते हैं। तब जज, रामसिंह से पूछते हैं कि तुम्हें क्या कहना है? तब वह कहता है ह

“कुछ नहीं, यह दुनियाँ ही मेरे लिए सूनी है, इन शोषितों के मुँह भी रुपयों ने बंद कर दिया। हम पशुओं से भी बुरे हैं, रोना भी गुनाह है” जज पिस्तौल मँगवाता है। पिस्तौल नं. 1525 देखकर जज निर्णय देता है कि यह पिस्तौल कुँवर बहादुरसिंहजी की है, रामसिंह की नहीं। अतः सेठजी का कहना झूठा है।

जज ने फौजदारी केश में रामसिंह के पक्ष में निर्णय दिया। जब दीवानी केश के संबंध में बात चली। जब रामसिंह ने 40 वर्षों का हिसाब सेठ से माँगा। जज ने रोकड़बहियें मँगवाई। रोकड़बही सही नहीं लिखी थी। जज पुलिस से रामसिंह को छोड़ने का और सेठ सोनाचंद के हाथों में हथकड़ियाँ डालने का आदेश देता है। जज सबको सम्बोधित कर कहता है कि आप देश द्रोहियों को न पनपने दें। आप भूल जाइए कि पैसा सब-कुछ कर सकता है। इसी के साथ नाटक का अन्त हो जाता है।

### वैशिष्ट्य

1. प्रस्तुत कृति में साहूकारों द्वारा किसानों का किस तरह शोषण होता है, इसे सुन्दर रीति से प्रदर्शित किया है।
2. सत्य को उजागर कर उसकी जीत दिखाई है।
3. नाटक में यथा अवसर रंगमंचीय निर्देश भी दिए गए हैं। बीच-बीच में गीतों की योजना की गई है।
4. डॉ. भारिल्ल के अग्रज रतनचंदजी भारिल्ल ने मुझे बताया कि इस नाटक का मंचन इनके गाँव बरौदास्वामी में किया गया था। इसमें ये

दोनों भाई प्रमुख पात्र थे तथा अन्य कुछ साथी भी पात्र बनाए गये थे। इस नाटक को देखने के बाद साहूकार इनसे बहुत नाराज हो गए; क्योंकि साहूकारों की इस नाटक में कुट आलोचना की गई है। यह नाटक 20 वर्ष की उम्र में लेखक ने लिखा था।

### फुटकर रचनाओं की विषय-वस्तु

#### 1. पहेली-1 'ये हैं मेरी परमपूज्य माताएँ'

यह पहेली 18 पृष्ठ में लिखी गई है। इसमें चार माताएँ मानी है - पहली माता 'जननी' (गर्भ धारण करने वाली) माता है। इसे अनेक विशेषणों से संबोधित किया है। प्रथम इसे 'हे जननी!' कहकर कहा है कि यदि आप में जनन क्षमता न होती तो जननी कैसे कहलाती। मातृत्व नारियों के हाथ में ही रहा है। यह उनकी हृदय शालीनता का प्रमाण है। फिर ह

द्वितीय 'हे माता!' से संबोधित किया है। कहा गया है कि यदि आपमें मातृस्नेह न होता तो माता कैसे कहलाती। क्या मातायें भी निर्दयी हो सकती हैं? कदापि नहीं, आप लाख कहो पर मैं नहीं मान सकता।

तीसरा विशेषण 'हे अम्बे!' दिया। जिसमें कहा कि लोग कहते हैं कि कोई किसी का साथ नहीं देगा, दुःख नहीं हटायेगा, ऐसे योगी, ज्ञानियों की बात मुझे प्रभावित नहीं करती। क्या माता तुमने हमारे हजारों दुःख नहीं बाँटे, तो फिर इनके उक्त वचन झूठ क्यों नहीं?

चौथा विशेषण 'हे आदि गुरु!' दिया है और कहा है कि सर्वप्रथम आपने ही मुझे अस्मरणीय ज्ञान दिया है। रोटी-पानी क्या है बतलाया। आदिगुरु ही नहीं, अंतगुरु भी यह माँ ही है; क्योंकि आज तक भी वह कुछ न कुछ सिखलाती है।

पाँचवाँ विशेषण 'क्षमाशालिने' दिया। इसमें कहा गया है कि जननी माँ जैसी क्षमाशीलता और कहीं नहीं मिलेगी, क्योंकि इस पर मल-मूत्र भी गिर जाए तो भी क्षमा कर देती है।

छठवाँ विशेषण 'विशाल हृदय' देते हुए कहा गया है कि जिसे भाई, बहन, भाभी, पत्नी सब दुत्कार दे, पर तू कभी दुत्कारती नहीं। लंगड़ा, अंधा, काना, बहरा, बेटा कैसा भी हो, तू उसे पुचकारती ही है।

अंत में लेखक लिखता है कि इससे माँ तुम यह मत समझना कि मैं तुम्हारा कर्जदार हूँ। अभिन्नता में कर्ज नहीं होता। मैं आपका सेवक अवश्य हूँ। मैं तुम्हें प्रणाम कर अपना कर्तव्य पूरा करना चाहता हूँ। इसके अंत में काव्य की निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं ह

'हे जननी! जन्म दायनी!! तुमको हो मेरा नमस्कार  
चाहे कितना अपराध करूँ पर नहीं करती हो तुम विचार।  
एक बार से क्या होगा, नत मस्तक हूँ मैं बार-बार।  
और नहीं है कुछ माता बस केवल सूखा नमस्कार,  
क्या सूखे नमस्कार से होगी नहीं प्रसन्न।  
क्यों नहीं! उत्तर मिला धन्य धन्य तुम धन्य ॥'<sup>97</sup>

**दूसरी माता - 'सरस्वती'** (ज्ञान) माता है, जिसे लेखक ने पहले 'हे जगदम्बे! सरस्वती माते' विशेषण से संबोधित किया है, तत्पश्चात् कहा कि क्या पुत्र माँ के गुणों का वर्णन कर सकता है। मैं गुण नहीं भक्ति जानता हूँ। दूसरा विशेषण ह 'हे अम्बे!' दिया है। तदन्तर लेखक ने अनेक तरह के उलाहने दिए। फिर उन उलाहनों का जवाब भी स्वयं देते हैं। यथा 'माँ माफ करना, अभी-अभी कहने लगा था कि मुझे ही काम क्यों बताती हो, अभी-अभी कहने लगा कि काम क्यों नहीं बताती, यह तो बालकों का स्वभाव ही है।' लेखक ने लिखा है मैं कहता हूँ वह पढ़ाती है न मारती है, न पीटती है; अतः तुम मास्ट्रो के पास न जाकर मेरे माँ के पास पढ़ने आ जाओ। अन्त में छह पंक्तियाँ काव्य में लिखी है। कहा है कि 'तू मुझे छोड़कर मत जाना। मुझे सद्ज्ञान से युक्त कर देना।'

**तीसरी माता 'मातृभूमि'** बताई है। इसे प्रथम 'हे मातृभूमि' से संबोधित किया। कहा है कि मैं तेरी मिट्टी से ही बना हूँ। तेरे अन्तस्थल में



अनंत भंडार है। माता तेरी क्षमता धन्य है। दूसरा संबोधन जगदम्बे देते हुए लिखा है कि तुम सारे देश की ही क्या, विश्व जननी हो, अन्यथा तुम्हें जगदम्बे क्यों कहा जाता? तीसरा संबोधन 'हे वसुधे-वसुंधरे!' दिया है। 'तूने हमेशा हमारा पालन किया है। तूने सुधापान कराया। अतः तू वसुधा कहलाई। इस माँ के सामने संसार की सारी निधि तुच्छ है। चौथा संबोधन 'हे अम्बे! हे वीर प्रसूते!' दिया है। अंत में 'हे माता' से संबोधित करते हुए कहा है कि माता तेरे प्रत्युपकार पर शीश झुकाने के अलावा कुछ नहीं है। अंत में एक कविता लिखी है। जिसमें कहा कि हे भारत माता तुम मुझको मत भूलना। मुझे वर दो कि मैं तुम्हें भी न भूलूँ। मैं इस समय तो तुम्हें शीश ही झुकाता हूँ और जब प्राण देने का अवसर आयेगा तब प्राण देने को भी तैयार रहूँगा।

**चौथी माता 'धन माता'** बताई है। इसमें लिखा है कि इसे सरस्वती माता से चिड़ (ईर्ष्या) रहती है। इस माता की मुझ पर अकृपा ही रहती है। 'लक्ष्मी माँ' की कृपा जिस पर हो जाती है; उसकी चाँदी ही चाँदी होती है। ठाट-बाट निराले होते हैं। यह जिसके पास हो, उनके नाम भी बदल जाते हैं। अनेक कुरीतियाँ भी पैदा कर देती है। हे धन माता। मैं आपके बिना कितना दुःख पा रहा हूँ। तुम मुझ पर कृपा करो। तुम मेरे यहाँ आओ या नहीं, पर अभिमान और अवगुण साथ में मत लाना। अंत में कविता की छह पंक्तियाँ लिखी हैं तथा कहा है कि हे जननी! मेरे कृपा करो। तुम्हारे बिना संसार में कोई किसी को भी नहीं पूछता है।

## 2. पहली - II - 'ये है मेरी रानियाँ'

इसमें चार रानियों का रूपक बाधा है। ये चार रानियाँ है - 1. हास्य रानी 2. लेखनी रानी 3. निद्रा रानी 4. आशा रानी। पहली 'हास्य रानी' हैं। जिसके विषय में लिखा है कि यह हानि-लाभ दोनों कराती है। कई जगह इसके कारण हानि भी होती है। पर रोगियों की राम-बाण औषधि है, मेरी हमेशा अनुगामिनी एवं आज्ञाकारिणी है। अतः इसे मैं नहीं छोड़ सकता

हूँ। राम ने पहले सीताजी को छोड़ दिया; पर राम ने जो किया, वह आज के मानवशास्त्र में अविवेक की पराकाष्ठा थी। जो भी हो, पर मैं उनके इस आदर्श को नहीं अपना सकता। मैं इस निर्दोष अबला का परित्याग नहीं कर सकता हूँ।

दूसरी रानी 'लेखनी रानी' हैं। जिसके विषय में लिखा है कि ऐसी वीर एवं निर्भीक सहचारी बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। जिसने भी इसे अपनाया है, उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। यद्यपि यह काले मुख वाली है, पर मैं (लेखक) इसके रूप रंग को नहीं, गुणों को देखता हूँ। अतः इसे अपनाया है। यह दुनियाँ को नचा सकती है, जो चाहे कर सकती है। तुम मेरे हाथों में हरदम रहती हो, अंगुलियों को काला भी कर देती, इतने मात्र दोष से मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। मैं तुम्हें वित्तीय पटरानी के पद से सम्मानित करता हूँ। अन्त में लिखा है ह

“आओ हे सहचरि लेखनि जलने वालों को जलने दो।

हम रहे प्रेम से हरदम कर मलने वालों को मलने दो ॥”<sup>98</sup>

तीसरी रानी 'निद्रा रानी' है। जिसमें लेखक कहते हैं ह मैं तुम पर लडू हूँ। तुम प्रतिदिन की थकान दूर करने वाली, पाँचों इन्द्रियों को विराम देने वाली हो, तुम्हें कौन ठुकरायेगा? तुम्हें तीसरा स्थान दिया ह यह भूल हुई, पर चिन्ता की आवश्यकता नहीं, तुम्हारा तृतीयांश सदा सुरक्षित रहेगा। 24 घण्टों में 8 घण्टे तुम्हारे समागम में रहूँगा। रात की 10 बजे से 6 बजे तक। मैं इस रानी को वचन दे चुका हूँ। अतः नहीं उठ सकता हूँ। यदि उठता हूँ तो वचन भंग होता है। दस बजे मैं शयनागार में नहीं पहुँचता तो यह बुला लेती, अपना काम प्रारम्भ कर देती। आँख झपने लगती है। अतः इसे दोष देना उचित नहीं, इसके सम्मान में लेखक ने लिखा है -

“पुरुषों में सबसे बड़ी कमजोरी तो यही है कि पहले वे अपनी नारियों को प्रसन्न करने के उद्देश्य मात्र से चाहे जो कर डालते हैं और फिर

नारी की बुद्धि पर तरस खाने लगते हैं, पर वे अपनी बुद्धि पर क्यों नहीं पछताते। कुछ भी हो, जब मैं अब बंधन में बंध चुका तो तोड़ नहीं सकता, आगे अवश्य सतर्क रहूँगा।’

अंत में पाठकों को सम्बोधित कर कहा कि मैं दशरथ से कम नहीं, उनकी भी चार पटरानियाँ थी और मेरी भी चार। पर नाम मात्र का भेद अवश्य है। वे भी तृतीय पटरानी कैकयी से वचनबद्ध थे और मैं भी इस तृतीय रानी से। वर्णन समाप्ति पर कविता की पंक्तियाँ लिखीं ह

“आओ हे निन्द्रा देवी, मुझमें थकान कुछ आई।

निन्द्रा किंचित् मुस्काई, बोली मैं आई आई।”

चौथी रानी ‘आशा रानी’ है। इसमें आशा के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। कहा गया है कि आशा से ही सारी पृथ्वी टिकी है। इसे हे प्रिय, हे श्रम परिहारिके, हे शांतिदायिने, हे निर्माणकारिके आदि विशेषणों से अलंकृत किया है। प्रत्येक व्यक्ति आशा के बल पर ही जीता है। इस आशा को बड़े-बड़े योगी भी नहीं छोड़ सके। आदमी मरते समय भी दो पैसे की दवा खाने, मकान बनाने, युद्ध जीतने आदि की आशा लगाए रहते हैं। आशा असफलता के दुःख को अपने कंधों पर लेकर सबको शांति प्रदान करती है। आशा प्राणीवर्ग के विनाश का दुःख भुलाकर निर्माण की ओर प्रेरित करती है। आशा के आधार पर ही दुनियाँ का निर्माण हुआ करता है। अंत में कविता की पंक्तियों द्वारा इसका स्वागत किया गया है और कहा है कि ह ‘जीवन से लगी रहो। अमृत धारा के समान सदा बहा करो।’

### 3. ‘प्रेम क्या है?’ (कहानी)

सुरेश नाम का एक व्यक्ति था। वह ‘प्रेम क्या है?’ इस विषय पर छह माह से चिन्तन कर रहा था, पर वह प्रेम की कोई परिभाषा नहीं बना पा रहा था, वह चिन्तन द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि इन्द्रियभोग

प्रेम से कोई संबंध नहीं रखते। पर ‘प्रेम क्या है?’ इसका उत्तर अनुत्तरित था।

सुरेश हम्मीरपुर का निवासी था। यह विवाहित था। पिताजी सम्पन्न थे। उस गाँव में डाकुओं का बोलबोला था। उसके घर पर दो पहरेदार पहले लगाते थे। पिताजी का स्वर्गवास हो गया। माँ अत्यन्त वृद्ध थी। एक बार माँ बीमार होने से वैद्यजी को घर बुलाया। रात होने से वैद्यजी सुरेश के घर ही सो जाते हैं। ये दोनों आँगन में सोते हैं। रात को डाकू आते हैं। सुरेश जाग जाता है। पहरेदारों को आवाज लगाता है, पर कोई नहीं आता। डाकू मारने लगते हैं, पर उसे बचाने कोई नहीं आता है। वह विचार करता है ह

‘क्या प्रेम यही है, मेरे पैसे पर पलने वाले तथा यह कहने वाले कि ‘पहले हम मरेंगे, बाद में आप।’ वह पहरेदार भी गायब। पत्नी भी नहीं आई। तब उसे डाकुओं पर गुस्सा नहीं आता, उसे प्रेम का ढिंढोरा पीटने वालों पर गुस्सा आता है, पर इतने में ही उसकी असमर्थ माँ डाकुओं के पास आकर कहती है ह ‘पहले मुझे मारो...। इतना ही कह पाई कि चक्कर खाकर गिर पड़ी। सुरेश उसकी छाती से लिपट गया। माँ, बेटा! कहते हुए स्वर्ग सिधार जाती है। सुरेश विलाप करता है। कहने लगा ‘हे भगवन् आपने मुझे प्रेम के दर्शन तो दिये, पर दो मिनट को – मैं...अब... समझा..... कि प्रेम ..... क्या है....। इस तरह इस कहानी में माँ की ममता को ही प्रेम के रूप में प्रदर्शित किया है।

### 4. उद्धार (कहानी)

प्रस्तुत कहानी के दो मुख्य पात्र हैं। एक सेठ सरदारमलजी जो पचपन वर्ष के हैं। दूसरे समाज सुधारकजी। सेठ निरक्षर भट्टाचार्य हैं; पर अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष हैं, अनेक मिल-कम्पनियों एवं प्रेस के मालिक हैं। वे निरक्षर हैं; फिर भी अनेक लेख उनके नाम से निकलते थे। दोष अनेक व्याप्त होने पर भी धनाढ्यपने के कारण दबे हुए थे।

एक दिन समाजसुधारकजी दिन में दो बजे बैठे-बैठे सोच रहे थे कि बहुत दिनों से कोई शिकार नहीं फँसा, कोई बखेड़ा करना चाहिए। यही विचार आते ही तय किया कि 'डूबी हुई समाज : उद्धार' नामक सम्पादकीय लिख दूँ। समाज में खलबली मच जावेगी। सम्पादकीय के साथ विज्ञापन भी निकाल दूँ कि जो नव युवक-युवती विधवा-विधुर ब्याह के इच्छुक हो, शीघ्र हमसे मिले। इन्होंने ऐसा ही किया। बड़ा विज्ञापन छापा। इस विज्ञापन को सेठजी ने पढ़ा। इन्होंने तत्काल 5000 रु. का ड्राफ्ट पंडितजी के नाम भेज दिया तथा पंडितजी को आमंत्रित किया। पंडितजी आ गए। सेठजी ने एकान्त में पंडितजी से कहा कि आपको इसलिए कष्ट देना पड़ा कि मैं रसोईयों के हाथों रोटियाँ खाते परेशान हो गया हूँ, तीन शादियाँ हुईं, पर तीनों पत्नियाँ मर गईं। चार बच्चे शादी शुदा हैं, पर मैं तो सांसारिक सुख से वंचित हूँ। पंडितजी सेठजी की मनसा को समझते हुए बोले कि आपकी करुण कहानी को मैं समझ गया। अतः मुझे आपकी सहायता करनी होगी।

आप कल दूसरी बत्तीसी लगवा लीजिए। मूँछ रंगवा लीजिए। रुपये खर्च करने पड़ेंगे। ऐसा उसके कहने पर उन्होंने चैक काट दिया। सुधारकजी ने कहा ह

‘कन्या से नहीं, पर विधवा से आपका ब्याह हो जायेगा। आप लाभ में रहेंगे। देशोद्धारक कहलायेंगे, ब्याह हो जायेगा, खर्च भी कम होगा। तब सेठजी ने उदास स्वर में कहा ह

“जैसा आप उचित समझें, बस उसके बच्चे न हो तो ठीक।”

तीसरे दिन सेठजी का उजड़ा हुआ घर बस गया। सेठजी परिणिता के समागम में दुकान, प्रेस जाना सब भूल गये। पर वह देवी प्रसन्न न हुई। जब सब युक्तियाँ बेकार गईं तो सेठजी ने अपनी गृह की रजिस्ट्री स्व. पत्नी के नाम कर दी और सोचा कि यह तीर खाली न जायेगा। पर आश्चर्य तो तब हुआ जब विधवा उद्धार के बजाय उस विधवा ने ही

सेठजी का उद्धार कर दिया। (व्यंग) और वह फिर नये वर की तलाश में चल दी। इस तरह इस कहानी में बुढ़ापे में भी जो शादी का विचार रखते हैं, उनपर करारा व्यंग्य किया है तथा करनी का फल बताया है।

### 5. अभिमान (कहानी)

एक जगतमल नाम के धनिक थे। वे बहुत अभिमानी थे। जबकि वे पूर्व में एक-एक दाने के लिए तरसते थे। करोड़ीमल सेठ के मर जाने के बाद गाँव में प्रमुख धनी ये ही माने जाते थे। चबूतरों पर बैठकर लोगों के बीच गप मारते, लोग इनकी बड़ाई करते। किसी ने कहा कि आपके दो हजार का घाटा हो गया है। वे हँस के कहते दस हजार का भी हो जाए तो कोई चिन्ता नहीं। इस तरह वे रोजाना गप लगाते।

एक दिन जगतमल का बड़ा पुत्र किशोरीलाल व लेखक साथ-साथ घूमने जाते हैं। किशोरीलाल से पूछा कि बिहारीलाल की शादी कब करोगे? तो वह बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बात करता है। सच्चाई थी कि उसका भाई कमजोर, बदसूरत था और वह कहता है कि हिम्मतनगर से रिश्तेवाले आये थे, पर हमने कहा - ‘आपकी मर्जी हो तो करो नहीं तो नहीं। पर हमारी इज्जत रखनी पड़ेगी।’ लेखक का माथा ठनकता है। वह उससे पूछता है कि आपकी इज्जत का क्या अर्थ? उसने कहा तुम इतना भी नहीं समझते।

एकदिन जगतमलजी के घर चोरी हो जाती है। चोर सबकुछ ले जाते हैं। बिहारी एवं जगतमलजी सहित सब रोते हैं। लेखक ने लिखा है कि जो एक-एक पैसे के लिए व्याकुल हो जाए उसका सर्वनाश हो जाए तो क्या कहना? उस दिन से उनके मुख से पूर्ववत् बातें सुनने को नहीं मिलती। अभिमान नष्ट हो गया। इसप्रकार कहानीकार ने इस कहानी में अभिमानियों की क्या दशा होती है? इसको रूपांकित करने का प्रयास किया है।

## 6. मेरा साम्राज्य (कहानी)

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने अपने ऊपर ही कल्पना कर लिखी है। बचपन में ही सुन रखा था कि प्रत्येक मनुष्य दो दिन के वास्ते राजा बन जाता है। अतः उस दिन की इंतजार करता हुआ वह विचार करता है कि मैं कब राजा बनूँगा, आकाश में खूब घोड़ा दौड़ाऊँगा आदि।

एक दिन 15 फरवरी को एक पत्र प्राप्त होता है कि 5 मार्च को शादी है, तुम शीघ्र चले आओ। तब उसका माथा भन्नाता है। वह सोचता है क्या वह परीक्षा न दे सकेगा। इसने पत्र लिखा कि 5 मार्च परीक्षा है; अतः वह नहीं आ सकता। तब पत्र मिलते ही पिताजी आ गये। पिताजी ने फटकारा। वह सोचने लगा कि मैंने कोई गलत तो लिखा नहीं। सोचा एक बार फटकार दूँ। फिर हिम्मत नहीं हुई। बिस्तर बाँधने लगता है। इतने में उसका मित्र सुरेश आता है, कहता है कि अब तो दुल्हे राजा बनने जा रहे हो। तब उसे एकदम राजा बनने की बात याद आ गई।

अब समझा कि उसे साम्राज्य मिलने वाला है। यह साम्राज्य बहुत महंगा पड़ेगा। हुआ भी वही। शादी के बाद पढ़ाई छूट गई। जब वह घर जाता है तो नाई द्वारा टाट कराई जाती है, अर्थात् शिर का मुंडन करा दिया जाता है, जबकि वह नहीं चाहता, पर करानी पड़ी। फिर सिर पर हल्दी मल दी जाती है। फिर पगड़ी बाँध दी है। सिर जकड़ दिया जाता है। सब उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहा था, पर राजा जो बना था, अतः करना ही था, फिर कोट पहनाया, घोड़ी पर बिठाया, पर लगाम हाथ में नहीं दी। वह हँस नहीं सकता था। उसे गम्भीर रहना पड़ा था। लोग जो कहे उसे सुनते रहो। यही उसके साम्राज्य की प्रथम स्वायत्तता थी। उसे हल्दी से पीला किया, मेहंदी लगाई। गले में हार-मालायें आदि डाल दी गई।

वह जो भी दैनिक आवश्यक क्रियाएँ करे, पूछकर करना, उसके लिए मजबूरी हो गई। बरात गई। जब शादी होती, तब वह सात प्रतिज्ञाओं

में से एक प्रतिज्ञा दुहराने के लिए इन्कार करता है, परन्तु सभी की आँखों की फटकारों से वह दोहरानी पड़ी। बरात घर आ गई। दोनों को एक गाँठ में बाँध दिया। सभी जगह माथा टेकने व चरण-स्पर्श का क्रम चला। अंत में उसे व नवदुल्हन को एक कमरे में बंद कर दिया। एकान्त पाकर दुल्हन ने कहा हे प्राणनाथ! हे मेरे राजा! मानस के नायक! इस तरह सम्बोधित करती हुई जब वह उसके पैरों पर गिर गई, तब उसे अनुभव हुआ कि उसका साम्राज्य यह है। जब वे बाहर आये तो छोटी भाभी ने कहा - 'दुल्हा राजा' यह सुनकर तो प्रसन्नता हुई, परन्तु तभी किसी ने कहा - 'राजा वाजा कुछ नहीं, चलो काम करो।' तब यह शब्द उसके मानस में तीर सा चुभ गया। एकदम मुख से निकला कि राजा-वाजा कुछ नहीं, क्यों नहीं? कैसे नहीं, उसी समय रात का कालाचित्र घूमने लगा। हृदयवेग उठा कि - 'तू अवश्य अब भी महाराजा है। तेरा साम्राज्य छिपा है घूँघट की ओर जरा खोल के देख' इसी के साथ कहानी समाप्त हो जाती है।

## 7. 'सुख कहाँ है?' (लेख)

'सुख कहाँ है?' इस प्रश्न पर लेखक ने चिन्तन कर यह प्रस्तुत किया है कि संसार में कहीं सुख नहीं है। एक निर्धन व्यक्ति का उदाहरण देकर अपनी बात प्रस्तुत की। एक निर्धन व्यक्ति पंडितजी के पास जाता है और कहता है 'हे गुरुदेव! हमें कोई सुख का उपाय बताइये। पंडितजी ने कहा - 'धर्मधारण करो'। तब वह कहता है - मैं भूखा हूँ। भूखे भजन न होय गोपाला। आप 100-50 रुपये दिला दो। पंडितजी ने दिलाए। उसने पान की दुकान की, फिर पंडितजी ने पूछा कि सुखी तो हो? सुखी तो हूँ पर सुबह से रात की 10 बजे तक बैठना पड़ता है। पैसा बढ़ा, कपड़े की दुकान की, मुनीम बिना दुःखी। पैसा बढ़ा, सोने-चाँदी की दुकान की, शादी की, पर बच्चे नहीं, अतः दुःखी। इस तरह व्यक्ति को कहीं सुख नहीं है, सिद्ध करते हुए कहा कि सुख तो अपनी आत्मा में ही है;

निराकुलता में ही है जैसा कि पं. दौलतरामजी ने छहढाला में कहा है – ‘आतम को हित है सुख’ से लेख पूर्ण किया है।

### 8. भारत की भावात्मक एकता (लेख)

प्रस्तुत लेख में लेखक ने विचार प्रस्तुत किया है कि हमारी दृष्टि में भारत में व्याप्त अनेकता में एकता पर न जाकर, अनेकता पर जाती है।

अतः कुछ लोगों की कल्पना है कि धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि समाप्त कर सब एक धर्म, सम्प्रदाय को मानने लग जाए; पर इससे भी एकता नहीं आ सकती, ऐसा करने में बड़ा दोष यह है कि व्यक्ति के आचार-विचार की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। दूसरा ह्व क्या एक ही धर्म व सम्प्रदाय के लोग आपस में झगड़ते नहीं हैं। अतः हमें अनेकता के बीच ही एकता का मार्ग खोजना है; क्योंकि हममें भावनात्मक एकता विद्यमान है।

भारत में कई घरों में विभिन्न धर्मों को मानने वाले तथा विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में सक्रिय भाग लेने वाले सदस्य परस्पर प्रेमपूर्वक रहते देखे जाते हैं। ऊपर से अनेकता दिखती है, पर गहराई से विचार करें तो एकता की जड़े गहरी व मजबूत हैं। इसका प्रमाण सन् 62 में चीन, 65 व 71 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के मध्य हमारे देश में यह एकता हमें प्रत्यक्ष देखने को मिली। लेखक ने कहा है कि हम सबका प्रयास अनेकता की अपेक्षा एकता की ओर देखने का अधिक होना चाहिये। एकता की ओर देखने से एकता दृढ़ होगी तथा अनेकता की ओर देखने से अनेकता। अतः हमारा कर्तव्य है कि हमारे देश के कण-कण तथा जन-जन में विद्यमान भावात्मक एकता को ही लक्ष्य में रखे, अनेकता को नहीं। भावात्मक एकता के लिए समानता तथा सहिष्णुता एकता के दो सुदृढ़ स्तम्भ हैं। अंत में लेखक ने कहा है कि भावात्मक एकता के लिए हमारा आचरण समानता के आधार पर पूर्णरूपेण सहिष्णु हो।

### 3.3.2. पद्य रचनाओं का अनुशीलन –

पद्य रचनाओं में अप्रकाशित एक खण्ड काव्य, एक महाकाव्य तथा ग्यारह कविताएँ

#### ● पश्चाताप (खण्ड काव्य)

**नामकरण** – प्रस्तुत खण्डकाव्य का नामकरण ‘पश्चाताप’ इसलिए किया गया है कि इसमें ‘रामचन्द्रजी’ द्वारा सीताजी को वनवास देने के पश्चात् वे विचार में पड़ जाते हैं और वनवास के निर्णय को गलत मानते हुए वे ‘पश्चाताप’ करते हैं; अतः उक्त नामकरण सार्थक है।

**आधारस्रोत** – प्रस्तुत कृति के निर्माण के विषय में डॉ. भारिल्ल ने लिखा है ह

‘मेरे दिमाग में ये विचार बहुत दिनों से चक्कर काट रहे थे कि प्रायः हम लोग श्रद्धेय महात्माओं के अज्ञानता एवं मोह या आवेश में किये गये अपराधों को गुण मान लेते हैं। इससे वस्तुतः हमारी भावनार्यें खराबियों में भी अच्छाईयाँ देखकर अपने को पतन की ओर ले जाती हैं।

हालाँकि महात्मा लोग गलती करना नहीं चाहते, पर संसार में कुछ कार्य नहीं चाहने पर भी हो जाते हैं, जिस पर स्वयं वे लोग घंटों पश्चाताप करते रहते हैं, पर हम उन अवगुणों को जिनके कारण महात्मा लोग अपने को पश्चाताप की अग्नि में तपाते हैं, गुण कहकर एक तरह से उनका व्यंग्य ही करते हैं। जैसे हम दगाबाज से कहें कि आप बड़े सरीफ हैं तभी तो हमें धोखा दिया। तो बताओ वह व्यंग्य के सिवाय और क्या होगा? उसीतरह हम कहें कि राम बड़े न्यायवंत राजा थे, तभी तो उन्होंने निर्दोष सीता को वन में अकेली छोड़ दिया था तो बताओ व्यंग्य के सिवाय क्या होगा?

यही मैंने इसमें दिखाने का प्रयत्न किया है। पर राम की न्यायप्रियता को पूर्ण सुरक्षित रखा है। जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट झलकता है ह

“प्रजा की सुनकर करुण पुकार, किया यदि रामचंद्र ने न्याय।

किन्तु हुआ है जनक सुता के साथ, महाअन्याय महाअन्याय ॥”<sup>100</sup>

तथा बाद में उन्हें शोकाग्नि में तपाकर और भी पवित्र कर दिया गया है। यहाँ तक कि उनकी भी अग्निपरीक्षा रूपक द्वारा करा दी गई है। इस तरह राम की शालीनता को अक्षुण्य रखते हुये मैंने अपने विषय को प्रतिपादित किया है। उक्त कथन में इस कृति के निर्माण का उद्देश्य ज्ञात हो जाता कि कहीं हम अवगुणों को गुण नहीं स्वीकार लें।

**विषयवस्तु** हू जब सीता अग्नि परीक्षा द्वारा अपने सतीत्व का प्रमाण देकर आर्यिका व्रत लेने की घोषणा करती है; उस समय सीता को रोकने के लिए सीता के समक्ष राम 'पश्चाताप' करते हैं।

पर वे विचार करते हैं कि यद्यपि सीता अपनी अग्नि परीक्षा में खरी उतरी है, शील ने उसकी रक्षा की है, पर इससे मैं न्यायी तो नहीं कहा जा सकता। मैं दुष्ट न्यायाधीश था। मुझे न्याय करना ही नहीं आता फिर भी मुझे जज बना दिया गया।

भाग्य ही सब खेल करता है, वह भवन से वन में भेज देता है। जनता को अपना राजा चुनने का अधिकार है, पर प्रजा योग्य व्यक्ति को चुनें। उसने मुझ जैसे अयोग्य को राजा चुना; किन्तु मैं उसके कहने से राजा क्यों बना? समस्त जगत भले ही न्यायप्रिय कहे, परन्तु मैं सीता को दण्ड देकर महान् नहीं हो गया। निरपराधी को दण्ड देना, न्याय है या पाखण्ड। अब सीता वन में जा रही है, मैं कैसे मुख दिखलाऊँ। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

**“जिसने निर्जन वन में छोड़ा, उदर में था लव-कुश जोड़ा**

**पूर्व मैंने नाता तोड़ा, आज उसने मुझसे मुखड़ा मोड़ा।।”<sup>101</sup>**

यद्यपि सीता में वैराग्य जागृत हो गया है। वह भवभय से भयभीत है, पर मैं सीता को नहीं जाने दूँगा। वे अत्यन्त गद्गद् होते हुए सीता से कहते हैं हू हे मेरी सीता रानी! मैंने तुम्हें नहीं पहिचाना। मेरा अपराध क्षमा करो। मुझे शोकानल ने घेर लिया है। तब सीता कहती है हू

**“नहीं अपराध तुम्हारा है, कर्म बंध सबसे न्यारा है।”**

सत्य तो सदा सत्य ही रहता है। उसकी जब जाँच होती है तो उस पर

कुछ आँच नहीं आती है। अब समय बीत गया है। मैं जगत को देख चुकी हूँ। मैं तो तुमसे मात्र इतना ही कहना चाहती हूँ कि हू

**“मेरी निन्दा सुनकर जग से, त्याद दिया तुमने मुझको।**

**दया धर्म की निन्दा सुन, तुम छोड़ नहीं देना उसको।।”<sup>102</sup>**

इसप्रकार कहकर सीता तपस्या का भाव लिए वन की ओर चलने लगती है। तब राम, लव-कुश, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सब अपने प्रेम की दुहाई देकर अपना रिश्ता बताकर उसे वन में जाने से रोकते हैं। तब सीता कहती हैं कि 'मुझे अब नाता (रिश्ता) नहीं रखना है। ये संबंध ही जगत का बंधन है। वह भ्रम में डालने वाला है। जन्म-मरण का कारण है। ऐसा कहकर वह वन में प्रस्थान कर जाती है। सारी भीड़ देख रही है, आँखों में अश्रुधारा है। राम की आँखों से भी अश्रुधार निकल पड़ी। वे पश्चाताप करते हैं कि न्याय दूसरों के कथनानुसार नहीं होता, दूसरों की बात के आधार पर न्याय करना कायरता है। जनता कितना ही विद्रोह करे, पर अपना न्याय सही हो तो हिलने की आवश्यकता नहीं। सीता की सत्यता पर संदेह करने के कारण राम स्वयं को दोषी करार देते हैं। वे कहते हैं हू

**“सीता अबतक परित्यक्ता थी, पर हुआ आज मैं परित्यक्त।”<sup>103</sup>**

वे कहते हैं हू आज तक मैं समझ रहा था कि नारी ही परित्यक्ता होती है, पर वह नायक का अन्याय देख स्वयं उससे विरक्त हो जाती है। जो नर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह तो नारी से हार ही जाता है। जबकि वह उस नारी से पैदा हुआ है, परन्तु अपने को विद्वान समझ उसका अपमान करता है।

कवि ने राम के द्वारा ही नारी को उच्च स्थान प्रदान कराया है। वे कहते हैं हू नारी त्यागशील है। वह नररत्न को जन्म देती है। यदि उसे कोई त्रास देवे तो उन्हें छोड़ चल देती है। क्या कोई भगवान का अपवाद करे तो क्या भगवान को त्याग देते? मैंने मात्र लोकापवाद के कारण ही सीता को छोड़ा, यह क्या मेरा पाखण्ड नहीं है?

वे लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम चुप क्यों हो? मैं अन्यायी हूँ। तुम मुझसे नाता तोड़ दो। वे लव-कुश से कहते हैं कि तुम मुझे पिता कहकर मत पुकारना, क्योंकि ऐसा अन्यायी तुम वीरों का पिता नहीं हो सकता। आज मुझे प्रासाद खण्डहर के समान, अमृत विष के समान लग रहे हैं। वे सीता को याद कर कहते हैं ह

हे सीते! मैं अपराधी हूँ। उसका फल भोगूँ। तुम पवित्र हो, मैं अब तुम्हें नहीं रोकूँगा। कैकयी ने तो धीर वीर नर (राम) को वनवास दिया था, पर मैंने अबला को एकाकी वन में छोड़ दिया। मैं कितना दुष्ट हूँ। सारा जगत जिस व्यक्ति को अच्छा कहे, पर जिसने अपराध किया हो, वह व्यक्ति अपनी ही नजरों में अपराधी हो जाता है। जब व्यक्ति स्वयं ही अपनी गवाही देता हो तो अन्य किसी प्रमाण की क्या आवश्यकता है। उसी बात को कहते हैं ह

“हे राम! राम!! तू बता राम!!! क्या सोच रहा है तू मन में।

अन्याय प्रमाणित हो जिसका, कैसी पवित्रता उस जन में।”<sup>104</sup>

वैसे तो पुरुष का नाम स्त्री के आगे लिया जाना चाहिए था, पर राम के अपराध की सजा है कि राम का नाम सीता के बाद लिया जाता है। तब से ही यह परम्परा चल पड़ी कि पुरुष का नाम स्त्री के पीछे जुड़ गया। इसी को कवि ने कहा ह

“कहना भारत माँ के सपूत, जब मिले परस्पर सीताराम।

जिससे तुमको नित याद रहे। सीता अनुगामी हुये राम।।”<sup>105</sup>

अंत में राम के पश्चाताप को व्यक्त कर अंत में साकेत की प्रजा के द्वारा राम और सीता की महानता बताई ह

“साकेत प्रजा तब गूँज उठी, सीता धन्या!! सीता धन्या!!!

ना रामचन्द्र सा राजा भी, अब तक जगती में हुआ अन्य।

जय रामचन्द्र से राजा की, शतबार धन्य! शतबार धन्य!!”<sup>106</sup>

इसप्रकार सम्पूर्ण काव्य में कवि ने राम द्वारा सीता के प्रति हुए

अन्याय को राम के मुख से ही व्यक्त कर ‘पश्चाताप’ के माध्यम से अनेक बिन्दुओं को स्पर्श किया है।

### वैशिष्ट्य

1. यह एक अनुपम कृति है। इसमें अवगुणों को गुण नहीं स्वीकारने की प्रेरणा दी है।
2. नारी को उच्च स्थान प्रदान किया है।
3. काव्य की भाषा क्लिष्टता रहित अलंकार युक्त है।
4. इस कृति की खास विशेषता यह है कि डॉ. भारिल्ल द्वारा सबसे पहली लिखी रचना यही है। जो इन्होंने अपने पूज्य पिता को समर्पित की है जैसा कि इन्होंने लिखा है ह  
“जो हमें आपने सिखलाया, जो कुछ जैसा यह अर्पण है।  
हे पूज्य पिता तुम ग्रहों आज, मेरा यह प्रथम समर्पण है।।”<sup>107</sup>
5. काव्यकृति को पढ़ते समय ऐसा लगता है मानों राम-सीता हमारे समक्ष खड़े होकर अपनी भावना व्यक्त कर रहे हो।
6. यह कृति सन् 1954 में 12 दिसम्बर को लिखी गई थी, उस समय कवि की उम्र मात्र 19 वर्ष थी। इतनी कम उम्र में लिखे जाने के बावजूद भी इसमें उसी प्रौढ़ता की झलक मिलती है, जो लेखक में आज की उम्र में होनी चाहिए। इसी कारण यह कृति और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।
7. प्रस्तुत कृति पर मैथिलीशरण के महाकाव्य ‘साकेत’ का प्रभाव लक्षित होता है। खासकर उस प्रसंग का जब चित्रकूट की सभा में कैकयी राम वनगमन के लिए अपनी भूल पर पश्चाताप करती हुई गहरी ग्लानि में डूब जाती है; क्योंकि यहाँ सीता के वन गमन पर राम के पश्चाताप को प्रस्तुत किया है।  
गुप्तजी एवं भारिल्ल की निम्न पंक्तियों में साम्य भी दिखाई देता है ह

“पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई  
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई”<sup>108</sup>

हृ मैथिलीशरण गुप्त

साकेत प्रजा तब गूँज उठी, सीता सी नहीं और अन्या  
हे जगत्पूज्य सीता धन्या! सीता धन्या!! सीता धन्या!!!”<sup>109</sup>

हृ डॉ. भारिल्ल

### ●वैराग्य (महाकाव्य)

नामकरण हृ प्रस्तुत कृति में नेमि राजुल के वैराग्य को प्रस्तुत किया गया है। अतः इस महाकाव्य का नामकरण ‘वैराग्य’ रखा गया।

विषयवस्तु हृ तेरह सर्गों में लिखा गया यह अधूरा महाकाव्य है। इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में मंगलाचरण किया गया। जिसमें शासन नायक तीर्थकर भगवान वर्द्धमान को और कथानायक नेमिनाथ को नमस्कार किया है। साथ में सन्तों व जिनवाणी को याद किया। फिर द्वारिका नगरी का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया। जैसे वह नगरी बारह योजन लम्बी, नव योजन चौड़ी है। स्वर्ग के समान दिख रही है। वहाँ कोई दरिद्री, भिक्षुक नहीं। व्यापार आदि से सज्जित नगरी है। वहाँ के नर-नारी, घर-मंदिर आदि सुन्दर है। राज दरबार में राज सभा हो रही थी। जिसमें नेमी, कृष्ण सहित कवि, ज्योतिषी सभी पधारे हैं। कविवर की कविता सुनकर मन फूला नहीं समाता है। शृंगारपरक कुछ वर्णन किया गया है। यथा हृ

“कोई आवाज नहीं सुनले इंगित करती वह चुप रहके।

जिस तरह षोडसी बालाएँ निर्दय अनंग के वश होकर ॥

मिल जाना वो चाहे पति से अपना तन-मन-धन सब खोकर।

उस तरह बसंती यह बाला व्याकुल होकर घबराती है ॥”<sup>110</sup>

अंत में बसंत ऋतु के प्रभाव को दिखाते हुए प्रथम सर्ग पूरा किया है।

द्वितीय सर्ग हृ इसमें प्राकृतिक छटा का सुन्दर वर्णन किया गया है।

कवि ने कल्पना की है कि एक तरफ बलदेव और दूसरी तरफ श्रीकृष्ण

मानो युद्ध के लिए तैयार है। दोनों की सेनाएँ वन में स्थित है। वन फल-फूलों से सज्जित है। नेमिनाथ तथा रूक्मणी आपस में होली खेलते हैं। तभी बीच में कृष्ण आकर रंगरेली करते हैं। तब सत्यभामा आकर कृष्ण के गुलाल लगा देती है। रूक्मणी अपने देवर नेमी को ब्याह के लिए प्रेरित करती है। अंत में जलक्रीड़ा कर सभी सूर्यास्त के समय घर चले जाते हैं। इस तरह द्वितीय सर्ग समाप्त होता है।

तृतीयसर्ग में कृष्ण व रूक्मणी की परस्पर हँसी मजाक, इससे सत्यभामा को ईर्ष्या होना, कृष्ण द्वारा सत्यभामा को समझाना, नेमीकुँवर एवं इनकी भाभियों के बीच वार्तालाप, सभी का मनोहर कुण्ड में स्नान के लिए जाना, वहाँ सत्यभामा व नेमि के बीच टकराहट का होना, नेमि द्वारा आयुध शाला में शंख बजाना, जिससे लोगों का भयाक्रांत होना एवं कृष्ण द्वारा नेमि को समझाना आदि का वर्णन किया है।

चतुर्थसर्ग में नेमिनाथ की शंख बजाने आदि प्रतिक्रिया से कृष्ण का सोचना, अपने आपको नेमि के कारण निष्कण्टक नहीं मानना, रात्रि में नींद नहीं आना, अनेक रीति से विचार करने की स्थिति में है और नेमिनाथ भी स्वयं के द्वारा की गई क्रिया पर पश्चाताप करते हैं, तो सत्यभामा भी पश्चाताप करती हैं। इसी के साथ चतुर्थ सर्ग पूर्ण होता है।

पंचमसर्ग के प्रारम्भ में विस्तृत रूप से पूर्व दिशा की प्रातःकालीन लालिमा का प्राकृतिक वर्णन, तत्पश्चात् राजसभा का लगना, कृष्ण द्वारा महिलाओं को छोड़ उपवन में चलकर मल्ल प्रतियोगिता का आयोजन करने का कहना, नेमिनाथ द्वारा कृष्ण की चतुराई को अवधिज्ञान द्वारा जान लेना एवं नेमिनाथ एवं कृष्ण के बीच संवाद को प्रस्तुत किया है।

षष्ठसर्ग में कृष्ण व नेमिनाथ के बीच प्रतियोगिता, नेमिनाथ द्वारा कृष्ण को उठाकर सिंहासन पर बैठाना, जनता द्वारा विविध वार्तालाप एवं अंत में सूर्यास्त के द्वारा संध्या का प्राकृतिक वर्णन कर सर्ग पूर्ण किया है।



सप्तमसर्ग में कवि ने प्रारम्भ में रात का रोमांचक वर्णन किया है। कृष्ण को रात में नींद नहीं आती और वे सोचते रहते हैं कि नेमिनाथ का कोई अपराध नहीं है, उन्होंने तो मुझे ही सिंहासन पर बैठाया है, फिर भी वे मेरे बाधक हैं, अतः उन्हें वैराग्य हो जाए, ऐसा कोई उपाय करना चाहिए आदि विचार करते हुए सो जाते हैं और सर्ग के अंत में कृष्ण के द्वारा प्रातः उठते मथुरानगरी के राजा उग्रसेन के यहाँ चलने का वर्णन कर सर्ग को विराम दिया।

अष्टम सर्ग में कवि ने मथुरापुरी नगरी का सौन्दर्यात्मक वर्णन, तत्पश्चात् उग्रसेन की पुत्री राजमती (राजुल) के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि ने अन्त में कहा -

“कहाँ लो बखान करो राजमती कन्या का  
ताहि के समान तीन लोक में न पाइये।”<sup>111</sup>

उग्रसेन द्वारा कृष्ण के आगमन के समाचार जानकर अपनी चतुरंगी सेना, जनता सहित उनके स्वागत के लिए चल देने का वर्णन कर सर्ग समाप्त किया।

नवमसर्ग में राजा उग्रसेन द्वारा कृष्णराज का जोरदार स्वागत करना, रथ का नगर की तरफ चलने का, महिलाओं द्वारा कृष्ण विषयक विविध वार्तालाप, कृष्ण का राजमहल में प्रवेश, उग्रसेन व कृष्ण के बीच वार्तालाप, नेमीकुंवर के लिए राजमती से सगाई पक्की करना, कृष्ण द्वारा राजमती को अंगूठी पहनाना, शादी का तय होना, राजमती का नेमि के प्रति आकर्षण को प्रस्तुत किया है। राजमती कहती हैं ह

“जब से नेमी का नाम सुना तब से कुछ नहीं भाता है  
उनके अभाव में हे आली! मेरा मन यह घबड़ाता है।”<sup>112</sup>

सर्ग के अंत में नेमी युवराज कृष्ण का द्वारिका में वापस आने एवं नेमि की शादी की तैयारी के आदेश का उल्लेख करते हुए सर्ग पूर्ण हुआ है।

दशम सर्ग में नेमि की बरात द्वारिका से सज-धजकर अनेक राजाओं के साथ मथुरापुरी की ओर जाने, बारात पहुँचने, वहाँ बाड़े के बंधन में निरीहमूक पशुओं को देख एवं संसार की स्वार्थीवृत्ति का नेमि को ख्याल में आने का वर्णन किया है। नेमि सोचते हैं ह

“मोही अज्ञानी यह दुनियाँ बस सुख ही खोजा करती है।  
सुख नहीं किन्तु उसको मिलता, वह चक्कर खाती रहती है।।”<sup>113</sup>

नेमिनाथ द्वारा संसार की दशा का विचार करना, उन्हें वैराग्य को प्राप्त होना, कृष्ण का हर्षित होने को दिखाकर सर्ग की इतिश्री की है।

एकादश सर्ग में नेमिनाथ के वैराग्य परक चिन्तन बारह भावना के माध्यम से प्रस्तुत किया है। संसार की दशा अजब-गजब की है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मारना चाहता है। न्याय की परवाह नहीं, संसार में कोई किसी का नहीं है। संसार क्षणभंगुर है। मृत्यु से कोई बचाने में समर्थ नहीं है। ये मोह लोभ मानव के राक्षस हैं। ये जीव को ठग रहे हैं। व्यक्ति अकेला आया है और अकेला जायेगा। शरीर रोगों का घर है। शरीर भी अन्त तक साथ नहीं देता। वे कहते हैं ह

“देह भी जब साथ अपना अंत तक देती नहीं।  
धर्म के पद काम में कुछ भाग भी लेती नहीं  
किन्तु यह पंचेन्द्रियाँ बस निज विषय पहचानती।।”<sup>114</sup>

नेमिनाथ विचार करते हैं कि जीव मिथ्यात्व भाव में क्यों फँस रहा है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग आस्रव के कारण हैं। मात्र संसार में सार रूप धर्म ही है। ऐसा वैराग्य परक चिन्तन कर रहे हैं। तभी लौकान्तिक देव आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना करते हैं। इसी के साथ सर्ग की इति होती है।

द्वादश सर्ग में वर्णन किया है कि नेमिनाथ के दीक्षा के समय समस्तदेव, राजा, महाराजा, नर-नारी उपस्थित होते हैं। वे रथ से उतरकर निर्जनप्रान्त की ओर चलने लगते हैं। उस समय कुछ लोग प्रसन्न, कुछ दुःखी, कुछ

मध्यस्थ थे। देवेन्द्रों ने आकर पालकी में नेमि को बैठाया और जंगल की ओर चल दिए। एक शिला के ऊपर वे रुक गए। 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दीक्षा ले ली। तब देव उनकी अनेक प्रकार से स्तुति करते हैं। वे कहते हैं ह

“तुम हो निश्चय निश्चल योगी मैंने अब निश्चय जान लिया।  
तुम ही हो त्रैलोक्य पती निश्चय मैंने पहचान लिया।  
ब्रह्मा विष्णु औ रूद्रादिक सबको अनंग ने जीत लिया।  
महाबली उस कामदेव को हेय मानी तुम ने जीत लिया।”<sup>115</sup>

अंत में वापस कवि उस वियोगिनी राजुल की दशा के प्रसंग को छेड़ता है और नये सर्ग की सूचना करता है। यथा ह

“उस राजुल को सहचरी चल कर देखे जल्द।  
नेमिश्वर को छोड़कर चर्चा जल्दी बल्द।”<sup>116</sup>

त्रयोदश सर्ग में प्रारम्भ में भूमिका बाँधते हुए यह कहा है कि जो कर्मवीर होते हैं; वे ही धर्मवीर होते हैं। राजुल खुशी में झूम रही है। यह कल्पना लोक में विचरण करती है। तभी नेमि को वैराग्य के समाचार मिलते हैं। वह बेहोश हो जाती है। होश में आने पर नेमि-नेमि कहकर चिल्लाती है।

राजुल की उस समय की दशा करुणाजनक थी। बहुत देर बाद वह सो जाती है। फिर जैसे ही नींद खुलती है, वह आकुलित हो जाती है। सखी से कहती है कि मुझे कल तक आशा थी, पर वह आज टूट गई। सारी दुनिया आशा पर जीवित रहती है। मेरे रोम-रोम से दुःख टपक रहा है। इस तरह कवि ने अनेक प्रकार से राजुल के वियोग को प्रस्तुत किया है। वह कहती है कि मेरे जीवन में पहली बार ऐसा कठिन वियोग आया है। ये मेरे पाप का फल है। मैंने संयोग देखा ही नहीं। वह कहती हैं ह

“जीवन में सखि एक बार भी आया नहीं सुयोग

अरे मैं, क्या जानूँ, संयोग

कैसा कैसा होता है संयोग?”<sup>117</sup>

तत्पश्चात् यह महाकाव्य अधूरा है।

## वैशिष्ट्य

1. इस महाकाव्य में यथावसर प्रकृति का सुंदर रीति से वर्णन किया गया है।
2. नेमी के चरित्र को उनके पद व गरिमा के अनुकूल प्रकट किया है।
3. शान्त रस की प्रमुखता के साथ शृंगार आदि रसों के भी दर्शन होते हैं।
4. अलंकार व भाषा की दृष्टि से यह महाकाव्य श्रेष्ठ है।
5. यह पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर लिखा गया महाकाव्य है।

## ● फुटकर काव्य रचनाएँ (कविता संग्रह)

1. 'हृदयंगत भावना मालोऽयम्' हूँ यह कविता संस्कृत में लिखी गई है। जो 10 नवम्बर, 1954 ई. को लिखी गई है। इसमें अपने परिवार विषयक बातें प्रारम्भ में कही हैं। फिर अपने अग्रज व भाभी की विशेषताओं को प्रस्तुत किया है। इस कविता में लिखा है कि भारिल्ल कुल में उत्पन्न बरौदास्वामी ग्राम में जगन्नाथ जिनभक्त थे। उनके चरणों में नमस्कार। इनके पुत्र हरिदास है। जिनके रतनचंदादि पुत्र हैं। पित्राज्ञा पालक, क्षमाशील, प्रज्ञावान ऐसे इनके बड़े पुत्र, मेरे अग्रज रतनचन्द भारिल्ल को नमस्कार। ये शास्त्रों के ज्ञाता, दीनों पर दया करने वाले, मेरे मार्गदर्शक हैं। भाभी कमला मेरी रक्षक हैं। कमला कमल नयन वाली हैं। कमल से भी कान्तिवान् हैं। भाई रत्न हैं, पर अजीव नहीं। पुरुष में पुरुषोत्तम हैं। विवादज्ञ हैं पर अविवादित हैं। वह माता धन्य हैं जिसके उदर में रतनचन्द जैसे पुत्र तथा मेरा जन्म हुआ।

2. 'मैं उलझन में फँस जाता' हूँ इस कविता में कवि ने विविध परिस्थितियों के कारण अपनी उलझनों को प्रस्तुत किया है। यह कविता 16 मार्च, 1955 ई. को इनके द्वारा लिखी गई थी। इसमें कवि ने लिखा है कि बादलों से आवेष्टित चन्द्रमा, पिंजरे में सिंह, बलशाली का बंधन, धनवानों का धनमद, धनिकों के भोग विलास, दीनों की कुंठित श्वासों, जन-जन की विषमता, नर की निर्ममता, भूखी-नंगी इस जनता को

देखकर मैं उलझन में फँस जाता हूँ। भारत में स्वराज्य तो आया है, पर सन्मति नहीं आई। रामराज्य की कल्पना स्वप्न मात्र ही रह गई। कवि के शब्दों में ह

“कहते आवेगा रामराज मानवता युत होगा समाज  
पर नहीं देखता यह जब मैं आशा विहीन हो जाता हूँ।  
मैं उलझन में फँस जाता हूँ।<sup>118</sup>”

3. ‘सुनने वाला कौन हैं?’ हूँ इस कविता में कवि ने युवकों को संबोधित करते हुए कहा है कि देखकर चलना, क्योंकि संसार के रास्ते में काँटे हैं अर्थात् संघर्ष हैं। जो तुम्हें फूल दिख रहे हैं, पर उनमें तीक्ष्ण काँटे हैं। प्रत्येक रास्ता प्रतिकूल है। तू सुगंधित फूल चाहता है, वह त्रिशूल है। तू शान्ति चाहता है पर यह शान्तिदायक है कहाँ? तू आराधक बन गया, पर तेरा आराध्य कहाँ? जगत में तो पैसे की कीमत है, मनुष्य का परीक्षक यहाँ कौन है? ऐसे जगत की व्यथा को जानकर हे चन्द्रमा तू क्यों मौन है? हे सिद्धार्थ नन्दन महावीर यहाँ सुनने वाला कौन है?

4. ‘नारी क्या जग का बंधन है?’ हूँ इस कविता में नारी क्या बंधन है? यह प्रश्न खड़ाकर इसे नकारा गया है और कहा गया है कि जब पुरुष किशोरावस्था को प्राप्त करता है तो काम की मादकता उत्पन्न होती है, आँखों में मस्ती छा जाती, व्याकुलित होता, पागल हो जाता, कोई सहारा नहीं, न कोई दवा काम करती है; तब उसके लिए नारी ही चन्दन बन जाती है, व्यक्ति, भाई, भाभी, बहन कोई भी उसके मन को शान्त नहीं कर पाते, मात्र नारी ही उसका आकर्षण होती है। अतः नारी को जग का बंधन कैसे कह सकते हैं?

5. ‘कुलांगना नृत्य’ हूँ प्रस्तुत कविता में मेवाड़ प्रान्त में होने वाले विवाहोत्सवों में जो कुलांगना नृत्य होता है, उसे प्रस्तुत किया है। कुलांगना नृत्य के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि डम-डम नगाड़ों की आवाज, नारियों की पायल की छम-छम, नीले घाँघरे पर जड़ीदार साड़ियाँ से

सुशोभित सुंदर नृत्य करती है। प्रौढ़-वृद्ध बालिका सभी नाचते हैं। नंदलाल का नृत्य हो रहा है। चार-चार, पाँच-पाँच साथ में नाचती है।

6. ‘नहा रही युवती सर में’ – इस कविता में कवि ने एक तालाब पर स्नान कर रही युवती का चित्रण किया है। कवि के शब्दों में वह कट-कट कपड़े कूट रही है, गोरे उसके कपोल है, उसने धोती, लहंगा आदि अनेक वस्त्रों को धो दिया है, इतनी शक्ति किसी नर में है क्या? युवकों को देखकर वह शरमा जाती है। वह हाथों को ऊपर करते हुए, वक्षस्थल को फुलाते हुए, खूब-मल-मलकर नहा रही है। वह मदमाती हुई सरोवर में कूद-कूदकर नहाती है। उसने पतली साड़ी पहनी है, सोने के गहने पहने हुए हैं। जल में स्नान करने से साड़ी तन से चिपट गई है। जिसके कारण उसका शरीर पूरा दिखाई दे रहा है। फिर भी उसके मन में जरा भी लज्जा नहीं है, मेरा मन उस पर गया, पर वह युवती अपने हृदय में किसे बसाएँ हुए हैं, क्या पता? वह साबुन लगाती जाती, मुस्काती रहती है। सखी से मजाक कर रही है। कवि यह नहीं बता सकता है कि वह किस नर में अपना मन लगाए हुए हैं?

7. ‘यमदूत पकड़ने आवेंगे’ – इस कविता में कवि ने व्यक्तियों को संबोधित करते हुए कहा है कि जब मृत्यु आयेगी तब शर्मा, वर्मा कोई भी नहीं बचा सकता। हमारे सारे उपाय, औषधियाँ, मंत्र-तंत्र निरर्थक साबित हो जायेंगे। हमारा अभिमान कहाँ गायब हो जायेगा। अंत समय में हमारी रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकेगा।

8. ‘देखो आ रही मुगल कन्या’ – इस कविता में कवि ने एक मुगलकन्या के रूप का वर्णन किया है। वह चाँदी के गहने पहने हुए, चूड़ीदार पाजामा पहने हुए हैं। कमर को मचकाती हुई चल रही है। पुरुष को देखकर शरमाती है तथा वह मनुष्यों को लुभाती है हूँ इत्यादि वर्णन किया है।

9. 'तो दे देना कुछ ध्यान' – इस कविता में गरीब की दयनीय दशा का तथा पूँजीपति द्वारा इनके शोषण का वर्णन है। कवि के अनुसार स्वतंत्रता के बाद भी किस तरह भ्रष्टाचार है, बाँध बनाने के बहाने हवेली बन जाती है। इस संबंध में कोई अवश्य ध्यान देवे। यदि मेरे पास पैसा होता तो राज-दरबार में मेरी पूछ होती। यदि मेरा भाई मंत्रिमंडल में होता तो मैं भी किसी एक विभाग का अधिकारी होता। हे वीर प्रभु मैं तो तुझे छोड़ कहाँ जा सकता हूँ।

10. 'हम निश दिन मरते रहते हैं' – इस कविता में कवि ने कहा कि पल-पल करके छिन-छिन करके दिन-रात गुजर जाते हैं। जो जन्मा है, वह मरेगा। जब यह ध्रुव सत्य है कि वस्तु का उत्पाद-व्यय (नाश) होगा ही, तो फिर मृत्यु से डरने की क्या आवश्यकता है। जन्म में प्रसन्नता एवं मृत्यु में रोने की आवश्यकता कहाँ है?

11. 'मानव कुछ ऐसे काम करो' ह्व इस कविता में कवि ने सीख दी है कि धान तिजोरियों में रखने से कोई लाभ नहीं, उसमें दीमक लग जायेगा। उसका सही उपयोग करो। भावी भारत के कर्णधार इन बच्चों में शक्ति भरकर मानवता का विकास करो। जिससे लाभ हो सके।

### 3.4 उपसंहार

जहाँ डॉ. भारिल्ल प्रकाशित साहित्य अपने-आप में बेजोड है; वहीं इनका अप्रकाशित साहित्य भी अपने-आप में विशिष्टता को लिए हुए हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल ने साहित्य की विविध विधाओं में लेखन कर साहित्य की श्री वृद्धि की है और साहित्यकार के रूप में अपनी प्रतिष्ठा भी बनाई है।

### सन्दर्भ सूची

1. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : परमभाव प्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ - 10
2. वही, पृष्ठ-19
3. वही, पृष्ठ - 23
4. वही, पृष्ठ - 37
5. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : शाकाहार, पृष्ठ-3
6. सिद्धान्तशास्त्री पं. फूलचन्द : जैन तत्त्व मीमांसा, पृष्ठ - 268
7. आचार्य रविषेण : पद्मपुराण, सर्ग-110, श्लोक-40
8. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-43
9. वही, पृष्ठ-48
10. वही, पृष्ठ-69
11. वही, पृष्ठ - 83
12. मुनि श्री विजय सागर : अभिमत, क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-135
13. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : गागर में सागर, पृष्ठ-22
14. वही, पृष्ठ-25
15. वही, पृष्ठ-44
16. वही, पृष्ठ-54
17. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-13
18. वही, पृष्ठ-33
19. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-3
20. वही, पृष्ठ-5-6
21. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-13-14
22. वही, पृष्ठ-16
23. वही, पृष्ठ-51
24. वही, पृष्ठ-122
25. वही, पृष्ठ-144
26. वही, पृष्ठ-175
27. वही, पृष्ठ-184
28. पाटनी नेमीचंद : प्रकाशकीय, वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका, पृष्ठ-2-3

29. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका, पृष्ठ-9
30. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : अहिंसा: महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ-8
31. आचार्य अमृतचन्द्र : पुरुषार्थसिद्धयुपाय, श्लोक-44
32. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : अहिंसा : महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ-36
33. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : निमित्तोपादन, पृष्ठ-7
34. वही, पृष्ठ-53-54
35. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-32
36. वही, पृष्ठ-52
37. वही, पृष्ठ-63
38. वही, पृष्ठ-90
39. वही, पृष्ठ-130
40. वही, पृष्ठ-168
41. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आचार्य कुंदकुंद और उनके पंच परमागम, पृष्ठ-52
42. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आचार्य कुंदकुंद और उनके परमागम, पृष्ठ-98
43. पाटनी नेमीचंद : प्रकाशकीय, समयसार अनुशीलन, भाग-1, पृष्ठ-2
44. वही, पृष्ठ 36-41
45. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : सत्य की खोज, पृष्ठ-80
46. वही, (अपनी बात), पृष्ठ-1
47. वही, पृष्ठ-19
48. वही, पृष्ठ-135
49. वही, पृष्ठ - 144
50. वही, पृष्ठ-221
51. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बारहभावना : एक अनुशीलन, पृष्ठ-17
52. पाटनी नेमीचन्द : प्रकाशकीय, बारहभावना : एक अनुशीलन, पृष्ठ-1
53. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पृष्ठ-4
54. वही, पृष्ठ-39
55. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आप कुछ भी कहो, पृष्ठ -27
56. वही, पृष्ठ-31
57. वही, पृष्ठ-32
58. वही, पृष्ठ-34

59. वही, पृष्ठ-36
60. वही, पृष्ठ-39
61. वही, पृष्ठ-49
62. वही, पृष्ठ-57
63. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-84
64. वही, पृष्ठ-90
65. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : चैतन्य-चमत्कार, पृष्ठ-29
66. वही, पृष्ठ-35
67. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर, पृष्ठ-5
68. वही, पृष्ठ-7
69. वही, पृष्ठ-15
70. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-34
71. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बिखरे मोती, पृष्ठ-6
72. वही, पृष्ठ-55
73. वही, पृष्ठ-59-60
74. वही, पृष्ठ-25
75. वही, पृष्ठ-31
76. ब्र. यशपाल : संपादकीय, बिखरे मोती, पृष्ठ-2
77. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बिखरे मोती, पृष्ठ-96
78. वही, पृष्ठ-99
79. वही, पृष्ठ-179
80. वही, पृष्ठ-193
81. वही, पृष्ठ-217
82. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बारहभावना : एक अनुशीलन, अपनी बात, पृष्ठ-9
83. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बारहभावना, छन्द-3, पृष्ठ-5
84. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बारहभावना, छन्द-16, पृष्ठ-11
85. वही, छन्द-39, पृष्ठ-23
86. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : जिनेन्द्र-वंदना, छन्द-22, पृष्ठ-15
87. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : अर्चना, पृष्ठ-8
88. वही, पृष्ठ-15

89. वही, पृष्ठ-23-24
90. वही, पृष्ठ-32
91. वही, पृष्ठ-32
92. वही, पृष्ठ-6
93. वही, पृष्ठ-8
94. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : (जिनेन्द्र वंदना), पृष्ठ-16
95. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : बिखरे मोती, पृष्ठ-30
96. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : गरीब की दीवाली (अप्रकाशित)
97. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : ये हैं मेरी पूज्य माताएँ (अप्रकाशित)
98. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : ये हैं मेरी नारियाँ (अप्रकाशित)
99. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : ये हैं मेरी नारियाँ (अप्रकाशित)
100. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : पश्चाताप, (अप्रकाशित), पृष्ठ-2-3
101. वही, छन्द-15, पृष्ठ-8
102. वही, छन्द-26, पृष्ठ-12
103. वही, छन्द-51, पृष्ठ-18
104. वही, छन्द-89, पृष्ठ-27
105. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : पश्चाताप, (अप्रकाशित), छन्द-98, पृष्ठ-30
106. वही, छन्द-99, 100 पृष्ठ-30
107. वही, छन्द-(समर्पण) पृष्ठ-1
108. गुप्त मैथिलीशरण - साकेत
109. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : पश्चाताप हूँ छन्द-99, पृष्ठ-30
110. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : वैराग्य सर्ग, प्रथम, पृष्ठ-5 (अप्रकाशित)
111. वही, सर्ग-अष्टम, पृष्ठ-54
112. वही, सर्ग-नवम, पृष्ठ-57
113. वही, सर्ग-दसम, पृष्ठ-64
114. वही, सर्ग-एकादश, पृष्ठ-74
115. वही, सर्ग-द्वादश, पृष्ठ-84
116. वही, सर्ग-द्वादश, पृष्ठ-86
117. वही, सर्ग-त्रयोदश, पृष्ठ-96
118. भारिल्ल डॉ. हुकमचन्द : कविता संग्रह, पृष्ठ-6 (अप्रकाशित)